Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रीजैनग्रन्थप्रकाशकसभाग्रन्थाङ्कौ ५७-५८

आसन्नोपकारिणे श्रीमहावीरस्वामिने नमः ॥ ॐ अर्हं नमः ॥ सकललब्धिसम्पन्नश्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-जगद्गुरु-तपागच्छाधिपति-प्रौढप्रभावशालि-प्रभूततीर्थोद्धारक-जगदुपकृति-विहितानेकग्रन्थसन्दर्भ-भट्टारकाचार्यमहाराजाधिराजश्रीविजयनेमिसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

निजप्रतिभावदातसंस्मारितातीतपूर्वश्रुतकेवलिभगवद् न्यायविशारद-न्यायाचार्य-कूर्चालसरस्वती-पूर्वधरासन्नकालवर्ति-चतुश्चत्वारिंश-दुत्तरचतुर्दशशतसंख्यभवविरहाङ्कग्रन्थप्रासादसूत्रधार श्रीहरिभद्रसूरिपुङ्गव लघुबान्धवप्रभृति विशदविरुदावलीविभूषित—

तार्किकशिरोरत्नमहामहोपाध्याय-श्रीयशोविजयगणिप्रणीते

॥ सविवरणं श्रीज्ञानार्णवप्रकरणं-श्रीज्ञानबिन्दुप्रकरणञ्च ॥

सविवरणं श्रीज्ञानार्णवप्रकरणमिदं दुष्प्राप्यखण्डितावस्थैकपुस्तकत एव प्रकाशतामानीतं, ते चेमे प्रकरणे राजनगरस्थश्रीजैनग्रन्थ-प्रकाशकसभाकार्यवाहकश्रेष्ठि-ईश्वरदासमूलचन्द्रेण भावनगरस्थ श्रीआनन्दनाम्नि मुद्रणालये तदधिपति श्रेष्ठिगुलाबचन्द्रदेवचन्द्रद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशिते ।

वीर सं. २४७२ प्रतयः ७५० सन् १९४६ अक्षयतृतीया विक्रम सं. २८०२

॥ मूल्यं रूप्यकपञ्चकम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

" गाथानुक्रमणिकाना पत्र पछीनुं अनुसंधान छे . "

गाथादिपाद	गाथांक	पत्र	पंक्ति
अणुसमयमणंतरियं	३६८	७९	२
गहणावेक्खाए तओ	३६९	७९	३
निसिरिज्जइ नागहियं	३७०	७९	४
गहणं मोक्खो भासासमयं	३७१	७९	१६
गहणं मोक्खो भासागहण	३७२	७९	१६
गहणनिसग्गपयत्ता	३७३	७९	२७
तिविहम्मि सरीरम्मि	३७४	८०	५
ओरालियवेउव्विय	३७५	८०	६
सच्चा हिया सतामिह	३७६	८०	१२
अणहिगया जा तीसु वि	३७७	८०	१३
कइहिं समयेहिं लोगो	३७८	८०	१९
चउहिं समयेहिं लोगो	३७९	८०	२०
कोइ मंदपयत्तो	३८०	८१	२
गंतुमसंखेज्जाओ	३८१	८१	३
भिन्नाइं सुहुमयाये	३८२	८१	४
जइणसमुग्घायगइए	३८३	८१	१३
पठमसमये च्चिय जओ	३८४	८१	१४
मंथंतरेहि तइये	३८५	८१	१५
दिसिवाट्ठियस्स पढमो	३८६	८१	२१
होइ असंखेज्जइभे	३९०	८२	३
कत्थइ देसग्गहणं	३८८	८३	८
चउसमयमज्झगहणे	३८७	८३	११
चउसमयविग्गहे सति	३८९	८३	१३
आपूरियम्मि लोगे	३९१	८८	१३
भासासमसेढीओ	३५१	८३	२५
न समुग्घायगइये	३९२	८४	१०
जइणेण पराघाओ	३९३	८४	११
बंधो वि वीससाए	३९४	८४	१२
एगदिसमाइसमये	३९५	८४	२७
ईहा अपोह वीमंसा	३९६	८५	६
होइ अपोहोऽवाओ	३९७	८५	८
मइपन्नाभिणिबोहिय	३९८	८५२	१
सव्वं वाभिणिबोहिय	३९९	८५	२४
उग्गहणमोहो त्ति य	४००	८६	४
अवगमणमवाओ त्ति य	४०१	८६	५
तं पुण चउव्विहं नेय	४०२	८६	१३
आएसोत्ति पगारो	४०३	८६	२७
खेत्तं लोगालोगं	४०४	८६	२८
आएसोत्ति व सुत्तं	४०५	८७	१

For Private And Personal Use Only

॥ सविवरण श्रीज्ञानार्णव तथा ज्ञानबिन्दु अंगे प्रकाशकीय निवेदन ॥

ज्ञानपीयूषपिपासु सहृदय सौजन्यशालि विद्वानोना करकमलमां प्राप्त थतो एक जैन ज्ञानकोषोना भूगर्भमां छुपाइ रहेल अणमोल रत्न तुल्य स्वोपज्ञ विवरण समेत श्री ज्ञानार्णव नामनो आ प्रकरणग्रंथ प्रतिभाप्रभावथी पूर्व श्रुतकेवली भगवंतोनी स्मृति करावनार अनेक लक्ष श्लोकोप्रमाण ग्रंथोना प्रणेता, भवविरहाङ्कविभूषित चौदसो चुम्मालीश ग्रंथप्रासादोना सूत्रधार भगवान् श्रीहरिभद्रसूरिजीना लघु बांधव तरीके ख्याति पामेला, न्यायविशारद, न्यायाचार्य, कूर्चालसरस्वती बिरुदधारक महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजे रचेलो छे. ते निर्विवादनिर्णीत सिद्ध वस्तु आ ग्रन्थने मंगलपद्य "ऐन्दवीं तां कलां स्मृत्वा, धीमान्न्यायविशारदः । ज्ञानार्णवसुधास्नानपवित्राः कुरुते गिरः ॥१॥" तथा प्रथम तरंगना अन्तिम प्रशस्तिपद्य 'प्रौढिं ये विबुधेषु जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरु–स्तत्सातीर्थ्यभृतो नयादिविजयप्राज्ञाः श्रयन्ति श्रियम् ॥ तेषां न्यायविशारदेन शिशुना ज्ञानार्णवे निर्मिते, पूर्णो भाष्यवचोमृतैरतितरामाद्यस्तरङ्गोऽभवत् ॥ २ ॥" तथा तेओश्रीना पोताना ज रचेला शास्त्रवार्तासमुच्चयवृत्ति,स्याद्वादकल्पलता, न्यायालोक, ज्ञानबिन्दु विगेरे अनेक ग्रन्थोमां "अधिकं मत्कृतज्ञानार्णवादवसेयं" इत्यादि वाक्यो पूर्ण साक्षि आपे छे. वळी प्रायः एकाद ग्रंथ अपवादरूप बाद करी तेओश्रीना सर्व ग्रंथोनो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रारंभ ऐंकार पद(सरस्वती बीजक)थी थाय छे तेम आ ग्रंथमां देखातुं होवाथी आ ग्रन्थ तेओश्रीनो ज छे ते निःसंदेह छे.

अर्णव-समुद्र जेम घणा तरंगोथी विभूषित होय छे तेम आ ज्ञानार्णवमां पण ग्रंथकार भगवंते अनेक तरंगोनी रचना करी छे, जो के आज ज्ञानार्णव नामनो एक ग्रंथ दिगम्बरीय साहित्यमां शुभचंद्राचार्ये रचेलो विद्यमान छे अने ते मुद्रित पण छे, परंतु तेमां कलिकालसर्वज्ञ भगवंत श्रीहेमचंद्रसूरिजीनिर्मित योगशास्त्रना प्रकाशोनी जेम मुख्यतया योगस्वरूप विगेरेनुं निरूपण होवाथी तेने योगार्णव–योगप्रदीप–ध्यानशास्त्र विगेरे नामोथी ओळखाववामां आव्यो छे, ज्यारे आ श्री ज्ञानार्णव प्रकरणनुं ग्रन्थान्तर्गत अभिधेयने अनुसरतुं ज निःशंक यथार्थ नाम राखवामां आव्युं छे. प्रस्तुत ग्रन्थकारे एक ज्ञानबिन्दु नामनुं प्रकरण पण रच्युं छे, जे आ साथे संयुक्त छे तेमां सामान्यतः चार ज्ञानोनुं निरूपण करी मुख्यत्वे केवळज्ञान केवळदर्शनना विषयमां सम्मति गाथाओना अनुसारे अभेदपक्षनुं समर्थन कर्या बाद नयभेदथी विचारो आपतां शासनप्रभावक धुरंधर श्री सिद्धसेन दिवाकरजी, श्रीमल्लवादिजी, श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणजी ए त्रणेय प्रभावक आचार्यभगवंतोना विचारोनो समन्वय कर्यो छे. आ ज्ञानार्णवमां पांचेय ज्ञानोनो यथार्थ तत्त्वरूप केवळ अमृत प्रवाहज भरेलो छे. आ ज्ञानार्णव ग्रंथनुं अगाध गांभीर्य माहात्म्य यथार्थ वर्णववुं ते विशाल अटवीनो पगथी चाली पार लेवा इच्छता पांगळा माणसनी जेम अमो पामरनी बुद्धिने अगोचर छे. आ ग्रंथनुं अगाध अर्थ गांभीर्य स्वरूप जाणी पोतेज स्वोपज्ञ विवरण रच्युं छे.

परम खेदनो विषय तो एटलो ज के आ ग्रंथ वचमां वचमां तेमज अंतभागमां त्रुटितरूपे उपलब्ध थयो छे. साथे परम हर्ष स्थान ए छे के–हजु पण भव्यजीवोना परमभाग्योदये शासनस्तंभ समा पूर्वना महापुरुषोए रचेला जगदुपकारक शासन-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रभावक अबाधित ग्रंथो विश्वमां विद्यमान छे जेना आलम्बनथी पुण्यात्माओ आत्मकल्याणना मार्गे प्रवर्ती रह्या छे.

हालमां यावदुपलब्ध सविवरण आ प्रकरण प्रकाशित कर्युं छे. आ ज्ञानार्णवनो प्रथम तरंग जे पत्र २७ मे पूर्ण थयो छे ते तो श्री संघना प्रबळ पुण्योदये परिपूर्ण अखंड छे, बीजा तरंगना सविवरण १६ पद्यो सुधी पण अखंड छे. सत्तरमा पद्यना विवरणांशथी २४ मा पद्यना विवरणांश सुधी खंडित छे. सहृदय सुज्ञ वांचकोने अर्थानुसंधानमां क्षति न थाय ते खातर तेमना प्रणीत न्यायालोक ग्रंथ विगेरेथी ते भाग संयोजित करी यथामति संगत कर्यों छे, जे संयोजित पाठ ३५ मा पत्रना बीजा पृष्ठनी पंक्ति अग्यारथी ३७ मा पत्रना प्रथम पृष्ठनी बीजी पंक्ति सुधी [ ] आवा काटखुण कौंसथी चिन्हित करी आ पुस्तकमां छपायेल छे तेवीज रीते ज्यां ज्यां संयोजित पाठो जोडवामां आव्या छे त्यां त्यां सर्वत्र ते ज प्रमाणे काटखूण कौंसमां दाखल कर्या छे तेज बीजा तरंगना चालीसमा पद्यना चोथा चरणना 'यद्दृष्टं' ए पदथी प्रारंभी बीजो आखोय तरंग अने त्रीजा तरंगना चोथा पद्यना विवरणांश सुधीनो खंडित भाग विशेषावश्यक महाभाष्यनी गाथाओ तथा तेना विवरणानुसारे योजित कर्यों छे ते भाग ४७ मा पत्रना प्रथम पृष्ठनी आठमी पंक्तिथी प्रारंभी ६० मा पत्रना प्रथम पृष्ठनी बारमी पंक्ति सुधी जोडवामां आव्यो छे. वळी त्रीजा तरंगना २० मा पद्यना विवरणांशथी २९ मी गाथाना विवरणांश सुधी खंडित छे ते पण एकोतेरमा पत्रना प्रथम पृष्ठनी बारमी पंक्तिथी प्रारंभी न्याशीमा पत्रना प्रथम पृष्ठनी आठमी पंक्ति सुधी जोडयो छे. ते पछी तेत्रीशमा पद्यना विवरणांशथी आगळनो सर्व ग्रंथ खंडितज छे ते स्थाने दिशासूचन मात्र पंचाशीमा पत्रना बीजा पृष्ठनी नवमी पंक्तिथी प्रारंभी सत्याशीमा पत्रना प्रथम पृष्ठ संपूर्ण सुधी अर्थसूचक पाठ जोड्यो छे. कुल ६० पृष्ठप्रमाण योजित पाठ छे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आ मुद्रित ८७ पत्र एटले १७४ पृष्ठ प्रमाण ग्रंथ भागमां मतिज्ञान प्ररूपणा पण अधूरी रही छे. शेष श्रुतज्ञानादि प्ररूपणानो तो अव्यक्त गंध पण आवी शक्यो नथी जेथी तेना जिज्ञासुओनी तत्त्वबोधेच्छा पूर्ण करवाने पूज्यचरण तेओश्रीनुं प्रणीत ज्ञानार्णव पीयूषना बिन्दुतुल्य (आपणा माटे तो ते पण अर्णवांशज छे) ज्ञानबिन्दु नामनुं प्रकरण जोडवामां आव्युं छे. आ बेउ ग्रंथमां आवतो विषय प्रतिपृष्ठ आपेल होवाथी जुदो प्रयास कर्यो नथी. मात्र एकज प्रति उपरथी छपाएल आ ग्रन्थोना संशोधनमां पूज्य मुनिमहाराजश्री शिवानन्दविजयजी विगेरेए यथाक्षयोपशम प्रयास कर्यो छे. शुद्धिपत्रक आप्युं छे. छतां पण छद्मस्थ जीवोने भूल थवी सुलभज छे, विगेरे कारणोथी टाइपोना वर्णोना स्थानथी खसी जवाना कारणथी, ह्रस्व, दीर्घ, इकार, एकार, ऐकार, ओकार, औकार रेफ विगेरेनी उपरनी पांखडीओ खसी जवाथी तेम ज व+ध,–प+ष–ब-व–म+भ–य–थ विगेरे प्रायः समान आकृतिवाळा वर्णोना फेरफार थई जवा विगेरे कारणोथी थएली अशुद्धिओ विद्वान् पुरुषो सुधारी वांचशे अने ते बदल अमोने श्री संघ क्षमा आपशे, तेम श्री श्रमण संघ पासे नम्रभावे क्षमा प्रार्थनापूर्वक आ निवेदन पूर्ण करवामां आवे छे.

लि. श्रीसंघचरणकमलोपासिका

श्री जैन ग्रंथप्रकाशक सभा–राजनगर

(अमदावाद)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानार्णववृत्तिगतानां योजितपाठगतानां च साक्ष्योद्धृतानां भाष्यगाथानामनुक्रमः ।

(पंक्तिसंख्यांकः द्वयोः पृष्ठयोः सम्मील्य कृतः ॥)

गाथादिपाद	गाथांक	पत्र	पंक्ति	गाथादिपाद	गाथांक	पत्र	पंक्ति	गाथादिपाद	गाथांक	पत्र	पंक्ति
जं सामिकालकारण	८५	१	१२	जमभिणिबुज्झइतमभिणि	९८	६	२२	कज्जतया णउ कमसो	११०	९	९
मइपुव्वं जेण सुयं	८६	१	२१	सुयकारणं जओ सो	९९	६	२४	दव्वसुअं मइपुव्वं	१११	९	२२
कालत्रिवज्जयसामि	८७	१	२२	जइ सुअअक्खणमेयं	१०१	७	१३	दव्वसुअं बुद्धीओ	११२	९	२५
अंते केवलमुत्तम	८८	१	२३	भावसुयं भासासाय	१०२	७	१५	भावसुअं मइपुव्वं	११२	१०	२
जीवो अक्खो अत्थव्वा	८९	२	३	जह सुहमं भाविंदिय	१०३	७	१७	सुअविन्नाणप्पभवं	११३	१०	८
केसिं चि इंदियाइं	९१	२	१०	एवं सव्वपसंगो	१०४	७	२८	अविसेसिया मइच्चिय	११४	१०	२२
उवलद्धा तत्थाया	९२	२	१२	मइपुव्वं सुयमुत्तं	१०५	८	२०	सदसदविसेसणाओ	११५	११	३
इंदियमणोणिमित्तं	९३	२	१७	पूरिज्जइ पाविज्जइ	१०६	८	२२	भेयकयं च विसेसण	११६	१२	१०
एगंतेण परोक्खं	९५	४	४	नाणाणण्णाणाणिय	१०७	८	२८	इंदियविभागओ वा	११६	१२	१४
सामित्ताइविसेसा	९६	५	३	इह लद्धिमइसुयाइं	१०८	९	१	सोइंदिओवलद्धी होइ	११७	१२	१५
इंदियमणोनिमित्तं जं	१००	५	९	सोऊण जा मई भे	१०९	९	७	(पूर्वगत गाथा)			

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सो ओवलद्धि जइ सुयं	११८	१२	२४
सोइंदिओवलद्धी चेव	१२२	१३	१
केई बिंतस्स सुयं	११९	१३	५
किंवा नाणेहिगये	१२०	१३	१०
भणओ सुणओ व सुअं	१२१	१३	११
तु समुच्चयवयणाओ	१२३	१३	२६
पत्ताइगयं सुयका	१२४	१४	३
भावसुअमक्खराणं	१२५	१४	१३
जइ सुअमक्खरलाभो	१२५	१४	१६
सो वि हु सुअक्खराणं	१२६	१५	६
दव्वसुअं भावसुअं	१२७	१५	८
बुद्धिद्दिट्ठे अत्थे	१२८	१५	१३
(पूर्वगतगाथा)			

जे सुअबुद्धिद्दिट्ठ	१२९	१५	२१
इयरत्थवि होज्ज सुअं	१२८	१६	१
इयरत्थवि भावसुये	१३०	१६	४
सह उवलद्धीए वा	१३१	१६	९
केइ बुद्धिद्दिट्ठे	१३२	१६	१७
किं सद्दो मइरुभयं	१३२	१६	२४
सद्दो ता दव्वसुअं	१३३	१६	२५
भासापरिणइकाले	१३४	१७	१
इयरत्थ वि मइनाणे	१३५	१७	११
अहव मइ दव्वसुअ	१३६	१७	१७
इयरम्मि वि महनाणे	१३७	१७	१९
कह मइसुओवलद्धा	१३८	१८	१०
तीरंति ण वोत्तुं जे	१३९	१८	११

कत्तो एत्तियभेत्ता	१४०	१८	१४
पण्णवणिज्जा भावा	१४१	१८	१६
जं चोद्दसपुव्वधरा	१४२	१८	२५
अक्खरलंभेण समा	१४३	१८	२७
जे अक्खराणुसारेण	१४४	१९	१
केइ अ भासेज्जंता	१४५	१९	१२
किह मइसुअनाणविउ	१४६	१९	१२
सामन्ना वा बुद्धी	१४७	१९	२४
मइसहियं भावसुअं	१४८	१९	२५
जे भासइ एयं तअं	१४९	२०	६
एवं घणिपरिमाणं	१५०	२०	७
इयरं ति मइन्नाणं	१५१	२०	१३
अभिलप्पाणभिलप्पा	१५२	२०	१५

For Private And Personal Use Only

जं भासइ तंपि जओ	१५३	२०	१७
अन्ने मन्नंति मइ	१५४	२२	१४
भावसुआभावाओ	१५५	२२	१६
कप्पेज्ज व सो भाव	१५६	२२	२३
असुयक्खरपरिणामा	१५७	२२	२४
इह इं जेणाहिगओ	१५८	२२	२६
ण य दव्वभावमेत्तेवि	१५८	२३	४
जह वग्गा सुंबत्तण	१५९	३३	५
अह उवयारो कीरइ	१६०	२३	७
भावसुयं तेण मइ	१६१	२३	९
अन्ने अणक्खरक्खर	१६२	२३	२५
जइ मइरणक्खरच्चिय	१६३	२३	२७
सुयनिस्सियषयणाओ	१६४	२४	५
अह सुयओ वि विवेगं	१६५	२४	२०
मइकाले वि जइ सुयं	१६६	२४	२२
जइ सुयनिस्सियमक्खर	१६७	२४	२४
भरनित्थरणसमत्था	९४३	२४	२८
जइ तं सुयेण ण तओ	१६८	२५	५
पुव्विं सुयपरिकम्मिअ	१६९	२५	७
उभयं भावक्खरओ	१७०	२५	१६
सपरपज्जायणओ	१७१	२६	३
सुयकारणं ति सद्दो	१७२	२६	५
न परप्पबोहयाइं	१७३	२६	६
दव्वसुअयसाहारण	१७४	२६	२७
सा वा सद्दत्थो च्चिय	१७५	२६	२८
मइसुअनाणविसेसो	१७६	२७	२४
उग्गहइहवाओ य	१७८	२८	७
अत्थाणं उग्गहणं	१७९	२८	१५
सामण्णत्थावग्गहण	१८०	२८	१७
सामन्नविसेसस्स वि	१८१	२८	२५
ईहा संसयमेत्तं	१८२	२९	२
जमणेगत्थालंबण	१८३	२९	५
तं चिय सयत्थहेऊ	१८४	२९	६
केइ तयन्नविसेसा	१८५	२९	२७
कासइ तयन्नवइरेग	१८६	३०	३
सव्वो वि य सोवाओ	१८७	३०	४
काणुवओगंमि धिई	१८८	३०	२८
नणु साऽवायब्भहिया	१८९	३१	९
तं इच्छंतस्स तुहं	१९०	३१	१२

तुज्झं बहुअरभेया	१९१	३१	१९
ता भिन्नलक्खणा वि हु	१९२	३१	१७
तत्थोग्गहो दुरूवो	१९३	३१	२४
वंजिज्जइ जेणत्थो	१९४	३२	२
अन्नाणं सो बहिरा	१९५	३२	६
तक्कालंमि वि नाणं	१९६	३२	९
जइ वन्नाणमसंखेज्ज	२००	३२	१४
जं सव्वहा ण वीसुं	२०१	३२	१६
समुदाये जइ नाणं	२०२	३२	२१
तंतू पडोवयारी	२०३	३२	२२
कहमव्वत्तं नाणं	१९७	३३	१
लक्खिज्जइ तं सिमिणा	१९८	३३	३
जग्गंतो वि न याणइ	१९९	३३	६
नयणमणोवज्जिंदिय	२०४	३३	१४
जुज्जइ पत्तविसयया	२०५	३३	२३
पावंति सद्दगंधा	२०५	३३	२५
जं ते पोग्गलमइया	२०६	३४	२
धूमोव्व संहरणओ	२०७	३४	२
गेण्हंति पत्तमत्थं	२०८	३४	२६
लोयणमपत्तविसयं	२०९	३५	८
डज्झेज्ज पाविउं रवि	२१०	३५	९
गंतुं ण रूवदेसं	२११	३५	१०
जइ पत्तं गेण्हेज्जउ	२१२	३६	१५
गंतुं नेएण मणो	२१३	३७	४
नाणुग्गहोवघाया	२१४	३७	६
दव्वं भावमणो वा	२१५	३७	११
सव्वगओ त्ति य बुद्धी	२१६	३७	१९
सव्वासव्वग्गहण	२१६	३९	९
दव्वमणो विन्नाणा	२१७	४२	७
करणत्तणओ तणुसं	२१८	४२	९
नज्जइ उवघाओ से	२१९	४२	१४
जइ दव्वमणोतिबलो	२२०	४२	१८
नीउं आगरिसिउं वा	२२२	४२	२२
सो पुण सयमुवघायण	२२३	४२	२४
इट्ठाणिट्ठाहार	२२१	४३	८
सिमिणो ण तहारूवो	२२४	४३	१७
इह पासुत्तो पेच्छइ	२२५	४३	१८
दीसन्ति कासइ फुडं	२२६	४४	१
न सिमिणविन्नाणाओ	२२७	४४	३

सिमिणे वि सुरयसंगम	२२८	४४	९
सो अज्झवसाणकओ	२२९	४४	११
सुरयपडिवत्ति रइसुह	२३०	४४	१२
नणु सिमिणगओ वि कोइ	२३१	४४	२०
जं पुण विन्नाणं तप्फलं	२३२	४४	२२
देहप्फुरणं सहसोइयं च	२३३	४४	२५
सिमिणमिव मन्नमाणस्स	२३४	४५	६
पोग्गलमोअगदन्ते	२३५	४७	१
जह देहत्थं चक्खु	२३६	४७	५
विसयमसंपत्तस्स वि	२३७	४७	१९
समयेसु मणोदव्वाइं	२३८	४७	२०
देहादणिग्गयस्स वि	२३९	४७	२७
गिज्झस्स वंजणाणं	२४०	४८	३
तद्देसचिंतणे होज्ज	२४१	४८	१३
समये समये गिण्हइ	२४२	४८	२१
होइ मणोवावारो	२४३	४८	२३
नेयाउ च्चिय जं सो	२४४	४९	१२
जह नयणिंदियमपत्त	२४५	४९	२१
विसयपरिमाणमनियय	२४६	४९	२६
अत्थगहणेसु मुज्झइ	२४७	५०	६
कम्मोदयओ व सहा	२४८	५०	११
सामत्थाभावाओ	२४९	५०	१९
तोए ण मज्झगं पिव	२५०	५०	२८
दव्वं भाणं पूरिय	२५१	५१	५
सामन्नमणिद्देसं	२५२	५१	११
सद्दे त्ति भणइ वत्ता	२५३	५१	२०
जइ सद्दबुद्धिमेत्तय	२५४	५२	१
थोवमियं नावाओ	२५५	५२	१३
इय सुवहुणावि काले	२५६	५२	१८
किं सद्दो किमसद्दो	२५७	५२	२४
किं तं पुव्वं गहियं	२५८	५३	१
अत्थोग्गहओ पुव्वं	२५९	५३	६
जइ सद्दोत्ति न गहियं	२६०	५३	१५
सव्वत्थ देसयंतो	२६१	५३	२०
अहवसुए च्चिय भणियं	२६२	५३	२४
अहव मइपुव्वं चिय	२६३	५४	३
अत्थि तयं अव्वत्तं	२६४	५४	७
अत्थोत्ति विसयगहणं	२६५	५४	१३
जेणत्थोग्गहकाले	२६६	५४	२०

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामण्णतयण्णविसे	२६७	९४	२४
अण्णे सामण्णग्गह	२६८	९९	१
तदवत्थमेव तं पुव्व	२६९	९९	९
अत्योग्गहो न समयं	२७०	९९	११
एगो वाऽवाओ च्चिय	२७१	९९	१२
सामण्णं च विसेसो	२७२	९९	१३
केइदिहालोयणपुव्व	२७३	९६	२
तं वंजणोग्गहाओ	२७४	९६	९
अत्थोग्गहो वि जंवं	२७९	९६	१९
तं च समालोयणम	२७६	९६	२१
आलोयणत्ति नामं	२७७	९६	२६
गहियं व होउ तहियं	२७८	९७	३
अत्थावग्गहसमये	२७९	९७	७
खिप्पेयराइभेओ	२८०	९७	१६
स किमोग्गहोत्ति भण्णइ	२८१	९७	२७
सामण्णमेत्तगहणं	२८२	९८	११
सो पुणरीहावाया	२८३	९८	१२
तत्तोणंतरमीहा	२८४	९८	१३
सव्वत्थेहावाया	२८९	९८	२३
तरतमजोगाभावे	२८६	९९	१
सद्दोत्ति य सुयभणियं	२८७	९९	९
खिप्पेयराइभेओ	२८८	९९	८
इय सामण्णग्गहणा	२८९	९९	२०
महुराइगुणत्तणओ	२९०	६०	१
वयणंतरं तयत्था	२९१	६०	६
सेसेसु वि इवाइसु	२९२	६२	११
थाणुपुरिसाइकुट्टु	२९३	६२	१९
एवं चिय सिमिणाइसु	२९४	६३	१३
उक्कमओऽइक्कमओ	२९९	६३	११
ईहिज्जइ णागहियं	२९६	६३	१३
एत्तो च्चिय ते सव्वे	२९७	६३	१९
अब्भत्थेवाओ च्चिय	२९८	६३	१८
उप्पलदलसयवेहे व्व	२९९	६४	१
सोइंदियाइभेएण	३००	६४	९
अट्ठावीसइभेयं एयं	३०१	६४	१०
केइत्तु वंजणोग्गह	३०१	६४	२०
अस्सुयणिस्सियभेयं	३०२	६४	२०
चउवइरित्ताभावा	३०३	६४	२२
किह पडिकुक्कुडहीणो	३०४	६४	२४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जह उग्गहाइसामा	३०५	६५	२
अट्ठावीसइभेयं सुय	३०६	६५	८
जं बहुबहुविहखिप्पा	३०७	६५	१८
नाणासद्दसमूहं	३०८	६६	१५
खिप्पमचिरेण तं चिय	३०९	६६	१६
एत्तो च्चिय पडिवक्खं	३१०	६६	१८
निस्सिये विसेसो वा	३१०	६६	२०
एवं बज्झब्भंतर	३११	६७	४
इह संसयादणंत	३१२	६७	१०
नणु संदिद्धे संसय	३१३	६७	११
इह सज्झमोग्गहाइ	३१४	६७	२३
तहविणाम अब्भुव	३१४	६८	१०
वत्थुस्स देसगमग	३१५	६८	१०
इह वत्थुमत्थवयणा	३१६	६८	११
अहवा ण सव्वधम्मा	३१७	६८	१२
जइ एवं तेण तुह	३१८	६८	१९
एगं जाणं सव्वं	३२०	६९	१
जे संसयाइगम्मा	३२१	६९	१२
पज्जायमासयन्तो	३२२	६९	१३
निण्णयकाले वि जओ	३२३	६९	१८
कट्ठयरं वन्नाणं	३२४	६९	२०
अहवा जहिंदनाणो	३२५	७०	१५
तुच्छमिणं मिच्छस्स वि	३२६	७०	१९
जं निण्णओवओगे वि	३२७	७०	२०
अहवा जह सुयनाणा	३२८	७०	२८
एसा सम्माणुगया	३२९	७१	३
विवरीयवत्थुगहणे	३३०	७१	८
जइ सो वि तस्स धम्मो	३३१	७१	१९
जोग्गाजोग्गविसेसं	३३२	७१	२०
काले सिक्खइ नाणं (वृत्ति)	१	७१	२४
काले य भत्तपाणं	,, २	७१	२५
एवं समायरन्तो	,, ३	७१	२५
सयलसुरासुरपणमिय	,, ४	७१	२६
सत्तट्ठभवग्गहण	,, ५	७१	२७
तत्थ य जरजम्मणमरण	,, ६	७१	२८
उग्गहो एक्कं समयं	३३३	७२	९
अत्थोग्गहो जहन्नो	३३४	७२	१२
सोत्ताइणं पत्ताइ	३३५	७२	२२
पुट्ठं सुणेइ सद्दं	३३६	७२	२३

For Private And Personal Use Only

पुट्टं रेणुं व तणुंमि	३३७	७२	२४
बहुसुहुमभावुगाइ	३३८	७२	२५
फरिसाणंतरमत्त	३३९	७२	२६
जेणं जया मणूसा	(टीका)१	७३	५
परमाणू तसरेणू	,, २	७३	६
उस्सेहंगुलमेगं	,, ३	७३	७
आयंगुलेण वत्थुं	,, ४	७३	८
अप्पत्तकारि नयणं	३४०	७३	१२
नणु भणियमुस्सयंगुल	३४१	७३	१७
जं तेण पंचधणुसय	३४२	७३	२७
इंदियमाणे वि तयं	३४३	७४	५
तणुमाणं चिय तेणं	३४४	७४	१२
सीयालीससहस्सा	(टीका)१	७४	१६
एगवीसं खलु लक्खा	,, २	७४	१९
इति नयणविसयमाणं	,, ३	७४	२०
लक्खेहिं एक्कवीसाए	३४५	७४	२६
नयणिंदियस्स तम्हा	३४६	७४	२७
जं जइ सुत्ते भणियं	१(टी०)	७५	५
सुत्ताभिप्पाओऽयं	३४७	७५	७
बारसहिंतो सोत्तं	३४८	७५	१४
दव्वाणमंतरपरिणा	३४९	७५	१९
संखेज्जइभागाओ	३५०	७५	२०
भासासमसेढीओ	३५१	७६	७
सेढी पएसपंतो	३५२	७६	९
भासासमसेढिओ	३५३	७६	९
अणुसेढिगमणाओ	३५४	७६	१२
गिण्हइ य काइएणं	३५५	७६	१६
गिण्हिज्ज काइएणं	३५६	७६	१७
वाया न जीवजोगो	३५७	७६	१८
अह सो तणुसंरंभो	३५८	७६	१९
किं पुण तणुसंरंभेण	३५९	७७	१२
तणुजोगो च्चिय मणवइ	३६०	७७	१५
तुज्झे तणुजोगत्ते	३६१	७७	२४
कायकिरियाइरित्तं	३६२	७७	२४
अहवा तणुजोगाहिय	३६३	७८	४
तह तणुवावाराहिय	३६४	७८	५
जह गामाओ गामो	३६५	८८	१०
केइ एगंतरियं	३६६	७८	१५
आह सुये च्चिय निसिरइ	३६७	७९	२

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

—: શ્રી જૈન ગ્રન્થ પ્રકાશક સભા પ્રકાશિત ગ્રન્થો :—

૧ હરિભદ્રાષ્ટકવૃત્તિ ૩૩૧ સંવાદ–પાઠયુક્ત-વૃત્તિ ડ્રેઈમપેપર	૩–૦
” ગ્લેઝપેપર	૨–૮
૨ સંબોધ પ્રકરણ	૩–૦
૩ હરિભદ્રસૂરિગ્રન્થસંગ્રહ	૩–૦
૪ હારિભદ્રાષ્ટક પ્રકરણ [મૂલ]	૦–૪
૫ સ્યાદ્વાદરહસ્ય પત્ર સટીક	૦–૧૨
૬ ન્યાયાલોક સટીક	૫–૦
૭ અષ્ટસહસ્રીતાત્પર્યવિવરણ	૧૦–૦
૮ સમુદ્ઘાતતત્ત્વ	૦–૬
૯ જૈન ન્યાય મુક્તાવલી સટીક	૧–૦
” ” સમુ. ભેગા	૧–૪
૧૦ નવ તત્વ વિસ્તરાર્થ	૩–૦
૧૧ દંડક વિસ્તરાર્થ	૧–૦
૧૨ હૈમધાતુમાલા	૪–૦
૧૩ જૈનતત્ત્વ પરીક્ષા	૦–૪
૧૪ સ્તોત્રભાનુ	૦–૪
૨૪–૨૫ યોગદૃષ્ટિ યોગબિન્દુ સટીક	૨–૮
૨૬ ૧૨૫–૧૫૦–૩૫૦ ગાથાનાં વિગેરે સ્તવનો, દ્રવ્યગુણપર્યાયરાસ, સમ્યક્ત્વ યોગદૃષ્ટિ, સંયમશ્રેણિ સજ્ઝાય, સ્તવન વિચારાદિ સયંત્રશ્રેણિયંત્રાદિ વિવિધ સંગ્રહ	૦–૮
૨૭ પારમર્ષ સ્વાધ્યાય સંગ્રહ [બુક]	૦–૬
૨૮ પારમર્ષ સ્વાધ્યાય ગ્રન્થ સંગ્રહ ૯ ગ્રન્થો પત્રાકારે	૦–૮
૨૯ સમ્મતિતર્કપ્રકરણ સટીક, પ્રથમો વિભાગ	૫–૦
૩૦ યોગદૃષ્ટ્યાદિનવગ્રન્થપત્રાકારાદિ	૦–૬
૩૧ થી ૩૪ ભાષારહસ્ય પ્રકરણ સટીક, યોગવિંશિકા વ્યાખ્યા, તત્ત્વવિવેકવિવરણ સમેત-કૂપદૃષ્ટાન્તવિશદીકરણ પ્રકરણ, નિશાભક્તે સ્વરૂપતો દૂષિતત્વવિચાર	૨–૦
૩૫ જ્ઞાનાર્ણવ પ્રકરણ મૂલ	૦–૪
૩૬ થી ૪૬ શ્રી યશોવિજયવાચક ગ્રન્થસંગ્રહ, પાતંજલયોગદર્શનવિવરણ, નયરહસ્ય, સપ્તભંગીનયનપ્રદીપાદિ ૧૧ ગ્રન્થો	૨–૦
૪૭ સવિવરણ ધર્મપરીક્ષા ટિપ્પણયુક્ત	૪–૦
૪૮ અનેકાન્તવ્યવસ્થા પ્રકરણ જૈન તર્ક	૪–૦
૪૯ થી ૫૨. ઉત્પાદાદિસિદ્ધિવિવરણ વાદમાલાદિ ૪ ગ્રન્થ સંગ્રહ	૧–૮
૫૩ જગત્કર્તૃત્વ મીમાંસા	૦–૧૨

૫૪ પંજિકાયુક્ત મયૂરદૂત ૧–૪, ૫૫ પારમર્ષ વ્યાખ્યાનમાલા ભેટ, ૫૬ વૃદ્ધિનેમિ જૈન સ્તવનાદિ સંગ્રહ ૦–૮, ૫૭–૫૮ જ્ઞાનાર્ણવ સટીકઃ–જ્ઞાનબિન્દુશ્ચ (૨) ૫–૦, ૫૯–૬૦ માર્ગપરિશુદ્ધિઃ–યતિલક્ષણસમુચ્ચયઃ સંસ્કૃત છાયા સહિત ૦–૮ ૬૧ ધૂર્તાખ્યાન સંસ્કૃત ૦–૧૨

પ્રાપ્તિસ્થાનઃ–શેઠ ઇશ્વરદાસ મૂલચંદ ફીકાભટ્ટની પોળ–અમદાવાદ.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ स्याद्वादकल्पलतान्तर्गतस्याद्वादमाहात्म्यतपद्यकुसुमाञ्जलिः ॥

व्यालाश्चेद् गरुडं प्रसर्पिगरलज्वाला जयेयुर्जवाद्, गृह्णीयुर्द्विरदाश्च यद्यतिहठात् कण्ठेन कण्ठीरवम् ।
सूरं चेत् तिमिरोत्कराः स्थगयितुं व्यापारयेयुर्बलं बध्नीयुर्बत दुर्नयाः प्रसृमराः स्याद्वादविद्यां तदा ॥ १ ॥
नयाः परेषां पृथगेकदेशाः, क्लेशाय नैवार्हतशासनस्य । सप्तार्चिषः किं प्रसृताः स्फुलिङ्गा, भवन्ति तस्यैव पराभवाय ॥ २ ॥
एकश्छेकधिया न गम्यत इह न्यायेषु बाह्येषु यो, देशप्रेक्षिषु यश्च कश्चन रसः स्याद्वादविद्याश्रयः ।
यः प्रोन्मीलितमालतीपरिमलोद्गारः समुज्जृम्भते, स स्वैरं पिचुमन्दकन्दनिकरक्षोदाद् न मोहावहः ॥ ३ ॥
अभ्यास एकः प्रसरद्विवेकः स्याद्वादतत्त्वस्य परिच्छिदाप्यः । कषोपलाद् नैव परः परस्य निवेदयत्यत्र सुवर्णशुद्धिम् ॥ ४ ॥
माध्यस्थ्यमास्थाय परीक्ष्यमाणाः क्षणं परे लक्षणमस्य किञ्चित् । जानन्ति तानन्तिमदुर्नयोत्था कुवासना द्राक् कुटिलीकरोति ॥५॥
अतो गुरूणां चरणार्चनेन कुवासनाविभ्रमपास्य शश्वत् । स्याद्वादचिन्तामणिलब्धिलुब्धः प्राज्ञः प्रवर्तेत यथोपदेशम् ॥ ६ ॥
चार्वाकीयमतावकेशिषु फलं नैवास्ति बौद्धोक्तयः, कर्कन्धूपमितास्तु कण्टकशतैरत्यन्तदुःखप्रदाः ।
उन्मादं दधते रसैः पुनरमी वेदान्ततालद्रुमाः, गीर्वाणद्रुम एव(ष) तेन सुधिया जैनागमः सेव्यताम् ॥ ७ ॥
न काकैश्चार्वाकैः सुगततनयैर्नापि शशकैर्बकैर्नाद्वैतज्ञैरपि च महिमा यस्य विदितः ।
मरालाः सेवन्ते तमिह समयं जैनयतयः, सरोजं स्याद्वादप्रकरमकरन्दं कृतधियः ॥ ८ ॥
क्वचिद् भेदच्छेदः क्वचिदपि हताऽभेदरचना क्वचिद् नात्मख्यातिः क्वचिदपि कृपास्फातिविरहाः ।
कलङ्कानां शङ्का न परसमये कुत्र ? तदहो ! श्रिता यत् स्याद्वादं सुकृतपरिणामः स विपुलः ॥ ९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

॥ अनन्तलब्धिनिधानाय सकलविघ्नविच्छिदे श्रीगौतमस्वामिने नमो नमः ॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-जगद्गुरु-तपागच्छाधिपति-प्रौढप्रभावशालि-प्रभूततीर्थोद्धारक-भट्टारक-आचार्यमहाराजाधिराजश्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमो नमः ॥

प्रौढप्रतिभावदातसंस्मारितातीतपूर्वश्रुतकेवलिभगवद्-न्यायविशारद-न्यायाचार्य-कूर्चालसरस्वती-पूर्वधरनिकटकालवर्तिश्रीहरिभद्रसूरिपुङ्गवलघुबान्धवप्रभृत्यनेकविशदबिरुदावलीविभूषित-महामहोपाध्याय-श्रीयशोविजयगणिसन्दृब्धं स्वोपज्ञविवरणसमलङ्कृतम्

॥ श्रीज्ञानार्णवप्रकरणम् ॥

मङ्गलाचरणम्

ऐन्दवीं तां कलां स्मृत्वा, धीमान्न्यायविशारदः ॥ ज्ञानार्णवसुधास्नान-पवित्राः कुरुते गिरः ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥ तत्र पूर्वं ज्ञानानि निरूपयितुं तद्विभागमाह—

मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलभेदेन ज्ञानस्य पञ्चविधत्वं मतिश्रुतयोरादावुपन्यासे हेतुकथनं तत्र भाष्यसम्मतिश्च ॥

ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं, मतिः श्रुतमथावधिः ॥ मनःपर्यवसंज्ञं च, केवलं चेति नामतः ॥ २ ॥

अत्र स्वाम्यादिनिरूपणसाम्यात् तद्भाव एव शेषज्ञानोत्पत्तेश्चादौ मतिश्रुतयोरुपन्यासः । यदाह भाष्यकारः—"जं सामिकालकारण-विसयपरोक्खत्तणेहिं तुल्लाइं । तब्भावे सेसाणि य, तेणाईए मइसुआइं ॥ ८५ ॥ ति" [यत्स्वामिकालकारण—

For Private And Personal Use Only

विषयपरोक्षत्वैस्तुल्यानि ॥ तद्भावे शेषाणि च, तेनादौ मतिश्रुते]। अत्र प्राच्यो हेतुरेकत्रोपन्यासेऽन्त्यस्त्वादावुपन्यासे इति ध्येयम्। स्वाम्यादिसाम्यं चैवम्। मतिश्रुतयोः स्वामी तावदेक एव। 'जत्थ मइनाणं तत्थ सुअनाणं।' इति वचनात् कालोऽप्यनयोर्नानाजीवापेक्षयाऽनाद्यनन्तः, एकजीवापेक्षया च नैरन्तर्येण सातिरेकषट्षष्टिसागरोपमप्रमाणस्तुल्य एव। कारण-मपीन्द्रियमनःक्षयोपशमादिरूपं द्वयोस्तुल्यम्। सर्वद्रव्यविषयत्व–परनिमित्तत्वाभ्यां विषय–परोक्षत्वयोरपि तुल्यतेति॥ततः कालेनोक्तरूपेण, विपर्ययेणाज्ञानापत्तिरूपेण, स्वामित्वेन स्वस्वामिनोरभेदाश्रयणादेकस्वामिकत्वेन, लाभेन च युगपत्त्रयाणा-मपि लाभसम्भवेन साधर्म्याद्वधेः ॥ ततश्छद्मस्थस्वामिकत्व–पुद्गलमात्रविषयकत्व–क्षायोपशमिकत्वादिसाधर्म्यान्मनः–पर्यवज्ञानस्य ॥ तत उत्तमयतिस्वामित्वसाम्यादवसान एव लाभाच्चान्ते केवलज्ञानस्योपन्यासः ॥ आह च–"मइपुव्वं जेण सुयं, तेणाईए मई, विसिट्ठो वा ॥ मइभेओ चेव सुयं, तो मइसमणंतरं भणियं ॥ ८६ ॥ काल–विवज्जय–सामित्त–लाभसाहम्मओ वही तत्तो ॥ माणसमित्तो छउमत्थ–विसय–भावादिसामन्ना ॥ ८७॥ अंते केवलमुत्तम–जइसामित्तावसाणलाभाओ ॥ एत्थं च मइसुयाइं, परोक्खमियरं च पच्चक्खं ॥ ८८ ॥" [मतिपूर्वं येन श्रुतं तेनादौ मतिः ॥ विशिष्टो वा मतिभेद एव श्रुतं, ततो मतिसमनन्तरं भणितम् ॥ कालविपर्ययस्वामित्वलाभसाधर्म्यतोऽवधिस्ततः ॥ मानसमितश्छद्मस्थविषयभावादिसामान्यात् ॥ अन्ते केवलमुत्तमयतिस्वामित्वावसानलाभात् ॥ अत्र च मतिश्रुते परोक्षमितरच्च प्रत्यक्षम् ॥] इदञ्च पूर्वानुपूर्व्या निरूपणप्रयो-जकेच्छया विषयोपवर्णनं, अन्यथेच्छाविशेषेण पश्चानुपूर्व्यादिनापि निरूपणसम्भवादत्र चान्यथा निरूपणस्यासाम्प्रदायि-कत्वेनानिष्टसाधनत्वान्नान्यादृशेच्छया तदिति ध्येयम् ॥ २ ॥ अथ प्रत्यक्षत्वपरोक्षत्वाभ्यां तद्विलक्षणव्यवस्थामाह—

भाष्यस-म्मत्या मतिश्रुतयो-राद्युपन्यास-हेत्वादिनि-रूप्य क्रमे-ण चावधि-मनःपर्यव-केवलानामु-पन्यासे बीजं दर्शितं, मति-श्रुतयोः परो-क्षत्वमन्येषां प्रत्यक्षत्वञ्च॥
॥ १ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्प्रत्यक्षं परोक्षं च, प्रत्यक्षं त्वक्षमात्रजम् ॥ यत्त्विन्द्रियोपलब्धिस्त–त्तन्न, यत् स्पष्टतैव सा ॥ ३ ॥

तद् ज्ञानं द्वेधा,प्रत्यक्षं परोक्षं चेति,तत्राश्नुते व्याप्नोति ज्ञानात्मना सर्वार्थान् , अश्नाति स्वःसमृद्ध्यादीन्, पालयति भुङ्क्ते वेति 'उणादिनिपातनाद्'अक्षो जीवस्तं प्रति साक्षाद्गतमिन्द्रियनिरपेक्षं वर्त्तते यत् तत्प्रत्यक्षम् । आह च–"जीवो अक्खो अत्थव्वावणभोअणगुणन्निओ जेण ॥ तं पइ वट्टइ नाणं, जं पच्चक्खं तयं तिविहं ॥ ८९ ॥ ति ॥"[जीवोऽक्षोऽर्थव्यापन–भोजनगुणान्वितो येन ॥ तं प्रति वर्तते ज्ञानं, यत्प्रत्यक्षं तत्त्रिविधम्]। इत्थं चेदं व्युत्पत्तिनिमित्तमेव । नैश्चयिकं प्रवृत्तिनिमित्तं तदेव च लक्षणम्, 'उत्पत्ताविन्द्रियमनोनिरपेक्षत्वम्' पर्यवस्यति। तेनावध्यादेः क्षयोपशमभावापन्नकर्मपुद्गलजन्यत्वेऽपि तस्य न क्षतिर्वस्तुतस्तद्धेतोरितिन्यायात्स्वाभिन्नगुणजन्यत्वमेव तस्य । तेन न वक्ष्यमाणपरोक्षलक्षणातिव्याप्तिरिति ॥ एवं च 'आत्ममात्रजन्यत्वम्'इति यथाश्रुतमेव ज्यायः। न च सांव्यवहारिकप्रत्यक्षेऽव्याप्तिस्तस्यालक्ष्यत्वात्तत्रोपचारेणैव प्रत्यक्षत्वव्यवहाराद्, न हि वाहीको गोव्यवहाराद् गौरेव॥यत्त्विन्द्रियोपलब्धिः प्रत्यक्षमित्यक्षपादमतानुयायिनः प्रचक्षते तन्न, इन्द्रियाणामचेतनत्वेनोपलब्ध्यभावात्तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थस्मरणेनात्मन एव ज्ञातृत्वात् ॥ उक्तश्च–"केसिंचि इंदिआइं, अक्खाइं तदुवलद्धि पच्चक्खं ॥तन्नो ताइं जमचेअणाइं, जाणंति ण घडो व्व" ॥९१॥ [केषाञ्चिदिन्द्रियाणि, अक्षाणि तदुपलब्धिः प्रत्यक्षम् ॥ तन्न तानि यदचेतनानि, जानन्ति न घट इव]'उवलद्धा तत्थाया, तव्विगमे तदुवलद्धसरणाओ॥गेहगवक्खोवरमेवि तदुवलद्धाणुसरियाव॥९२॥त्ति'[उपलब्धा तत्रात्मा,तद्विगमे तदुपलब्धस्मरणात्॥ गेहगवाक्षोपरमेऽपि,तदुपलब्धानुस्मर्तेव] अथेन्द्रियजन्यज्ञानमेव प्रत्यक्षमिति तदपि न समीचीनम्, तस्य परजन्यत्वेनाऽतथात्वात्, न चेन्द्रियजन्यज्ञानत्वमेव प्रत्यक्षत्वं अवध्यादौ तु तदौपचारिकमिति वाच्यम्, लिङ्गाद्यजन्य-

प्रत्यक्षपरोक्षभेदेन ज्ञानद्वैविध्यं, व्युत्पत्त्यनुसारेण प्रत्यक्षलक्षणम्, गौतमसम्मताया इन्द्रियोपलब्धेः तत्त्वं खंडितम् एवामिन्द्रियजन्यज्ञानत्वस्य च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वेन तस्य प्रत्यक्षत्वावश्यकत्वात्प्रत्यक्षपरोक्षातिरिक्तज्ञानस्यालीकत्वात्॥अपि चेन्द्रियमनोनिमित्तं ज्ञानं परोक्षं संशयविपर्ययानध्यवसायसम्भवाद्विनिश्चयसम्भवाद्वा साभासानुमानवत्सम्यगनुमानवच्चेति हेतोस्तस्य परोक्षत्वसिद्धौ न प्रत्यक्षत्वम् ॥ आह च–
"इंदिअमणोणिमित्तं, परोक्खमिह संसयादिभावाओ। तक्कारणं परोक्खं, जहेह साभासमणुमाणं॥९३॥ ति" [इन्द्रियमनोनिमित्तं,परोक्षमिह संशयादिभावात् ॥ तत्कारणं परोक्षं, यथेह साभासमनुमानम्]। एवं च संशयादिप्रतिबन्धकतावच्छेदकतया सिद्धं प्रत्यक्षत्वमवध्यादिष्वेव व्यवस्थितमिति भावः। ननु तद्वत्ताज्ञानं प्रति तद्विरुद्धनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकताऽसिद्धविरुद्धानैकान्तिकैश्चानुमितिरेव प्रतिबद्ध्यते न त्वनुमित्यनन्तरं सन्देह एवाधीयत इति चेत्,न, तथापि साक्षात्कृतेऽर्थे सन्देहसामग्र्या एवानवतारादित्याशय इत्याहुः॥ वस्तुतइन्द्रियजन्यज्ञानत्वं न प्रत्यक्षत्वं,तन्मते ज्ञानमात्रस्य मनोरूपेन्द्रियजन्यत्वात्,न चेन्द्रियत्वेनेन्द्रियजन्यत्वं विवक्षितं इन्द्रियत्वस्य प्रत्यक्षघटितत्वेन तेन रूपेणाहेतुत्वात्पृथिवीत्वादिना साङ्कर्येण तस्याजातित्वादीश्वरज्ञानेऽव्याप्तेश्च,नापि ज्ञानाकरणकज्ञानत्वं जन्यप्रत्यक्षस्याऽदृष्टद्वाराऽस्मदादिज्ञानस्येश्वरज्ञानस्य वा जन्यत्वेनाव्याप्तिवारणायादृष्टाद्वारकत्वविशेषणदानस्याऽऽवश्यकत्वेऽपि निदिध्यासनद्वारा मननजन्ये तत्त्वज्ञानेऽव्याप्तेः,विजातीयादृष्टद्वारा मननस्य तद्धेतुत्वापेक्षया विजातीयनिदिध्यासनद्वारैव तद्धेतुत्वौचित्यात्,नापि जन्यधीजन्यमात्रवृत्तिजातिशून्यज्ञानत्वं जन्यधीमात्रस्यादृष्टद्वारा जन्यधीजन्यत्वात्,साक्षात्तज्जन्यत्वाविवक्षणे च स्मृतावतिव्याप्तेरदृष्टाद्वारकत्वविशेषणे जन्यपदवैयर्थ्यात्, अनुमित्यादेरप्यदृष्टद्वारा हविर्विषयकव्याप्तिज्ञानादिजन्यत्वाच्च,अदृष्टव्यापारानिरूपितजन्यधीजन्यतावन्मात्रवृत्तिजातिमत्त्वविवक्षणेऽपि जन्यधीमात्रस्य कालिकेन जन्यधीजन्यत्वात्,सामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या जन्यत्वविवक्षावश्यकत्वे जन्यपदवैयर्थ्यात्। किञ्चैतानि लक्षणानीतरभेदोपयोगीनि न तु व्यवहारोपयोगीनि,अथोभयोपयोगिसाक्षात्कारित्वमेव

इन्द्रियमनोजन्यज्ञाने परोक्षत्वेऽनुमानं दर्शितं, इन्द्रियजन्यज्ञानत्वस्य प्रत्यक्षलक्षणत्वे दोषोपदर्शनं, ज्ञानाकरणकज्ञानत्वादीनां प्रत्यक्षलक्षणानां खंडनम् ॥ ॥ २ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तल्लक्षणमस्तु, तच्च साक्षात्करोमीतिप्रतीतिसिद्धो जातिविशेषो निर्विकल्पकेश्वरज्ञानयोश्च धर्मिग्राहकमानासिद्धं तदिति चेत्, नूनं स्पष्टतैव तत् साक्षात्करोमि स्पष्टमवैमीतिप्रतीत्योरेकाकारत्वात्केवलं कपर्धनभ्युपगमाद् ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषजन्यतावच्छेदकत्वेन तत्क्षयजन्यतावच्छेदकत्वेन च स्पष्टताद्वयासिद्धिः । स्पष्टतात्वेनानुगतीकृता च स्पष्टता तल्लक्षणमिति ॥ न च प्रत्याभिज्ञायामतिव्याप्तिः, तस्याः केवलेन्द्रियसंस्काराजन्यत्वेन स्मृतिव्यावृत्तपरोक्षधीरूपत्वादिति वाच्यम् , तस्या अस्पष्टत्वादिदन्तोल्लेखमात्रे स्पष्टताया अनियामकत्वात्, उक्तश्च–" भवति च परोक्षस्यापि साक्षादिवाध्यवसाये प्रत्यक्षसर्वनाम्ना परामर्श इति । " स्पष्टत्वेन तत्प्रतीतिस्तु सन्निहितविषयत्वादिकमवगाहते, यत्त्विन्द्रियजन्यत्वेन तस्याः प्रत्यक्षत्वमेव लाघवादिन्द्रियजन्यत्वस्यैव प्रत्यक्षत्वप्रयोजकत्वात्, न च संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वापत्तिः, विशिष्टानुभवं प्रत्यव्यवहितविशेषणज्ञानस्य हेतुत्वेन प्रत्यभिज्ञायाः पूर्वं नियमतस्तत्तास्मृतिकल्पनेन तस्याः संस्काराजन्यत्वादिति, तदसत्, तत्र नानास्मृतिकल्पनापेक्षया विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकप्रत्यक्षत्वाभावस्यैव कल्पयितुमुचितत्वात् प्रत्यभिजानामीत्यनुगतप्रतीतिसाक्षिकजातिविशेषस्य च चाक्षुषत्व–त्वाचत्वादिना साङ्कर्यभिया प्रत्यक्षव्यावृत्तत्वाच्च, अस्माकं तु तत्तांशे उपनय इतरांशे च सन्निकर्षो हेतुरिति प्रत्यभिज्ञायां न कारणान्तरकल्पनागौरवम्, भवतां तु प्रत्यभिज्ञात्वावच्छेदेन कारणान्तरकल्पनागौरवम्,तत्तासंस्कारस्यैव तत्तोपनायकत्वाच्च नोक्तनानास्मृतिकल्पनागौरवमपि, इन्द्रियनिरपेक्षसंस्कारजन्यत्वस्यैव स्मृतित्वप्रयोजकत्वात्, प्रयोजककल्पनायाः कारणविशेषकल्पनानुपजीव्यत्वेन तद्गौरवस्यादोषत्वादिति चेत्, न, स्मृतिप्रत्याभिज्ञयोर्विषयतावैलक्षण्यस्य कारणवैलक्षण्याधीनत्वेन तत्र विलक्षणहेतुकल्पनावश्यकत्वात्, अत एवाऽसन्निकृष्टेऽपि विषये स एव वह्निरनुमीयते स एवार्थः कथ्यत इत्यादि प्रत्यभिज्ञानम्, एवं चेन्द्रियार्थ-

साक्षात्कारित्वस्य स्पष्टतास्वरूपस्य प्रत्यक्षलक्षणत्वं प्रत्यभिज्ञाया अस्पष्टत्वात्परोक्षत्वं, तत्र प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमः परस्य खण्डितः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सन्निकर्षोऽपि तत्र संस्कारोद्बोधकसदृशदर्शनादिहेतुतयोपक्षीयते, तदिदमभिप्रेत्योक्तं " अनुभूततया परोक्षमप्येकं साक्षादिवाध्यवस्यतः पश्यतश्चापरं प्रत्यभिज्ञैवेयमिति "। अन्यथा प्रत्यक्षत्वपरोक्षत्वयोः साङ्कर्यप्रसङ्गाज्जातेरव्याप्यवृत्तित्वे स्पष्टताया विषयताविशेषरूपत्वे वा किञ्चिदंशे परोक्षत्वं किञ्चिदंशे च तस्याः प्रत्यक्षत्वम्, साक्षादिवेत्यस्य साक्षात्कारसामग्रीसम्पत्ताविवेत्यर्थः, अनुमानादेः सर्वथा परोक्षत्वं चासन्निकृष्टांश एव, एवं च प्रत्यभिज्ञात्वमपि तदेवेति विषयताविशेष एव मिथोऽन्तर्भावानन्तर्भावौ च विवक्षाधीनावित्यपि वदन्ति । ननु तथापि संशयादीनां लक्ष्यत्वे संशयानध्यवसाययोरस्पष्टयोरव्याप्तिः, अलक्ष्यत्वे च स्पष्टे भ्रमेऽतिव्याप्तिरिति चेत्, न, प्रतिनियतवर्णसंस्थानाद्याकाराभिव्यङ्ग्यायाः स्पष्टतायास्तत्राभावात्तत्र स्पष्टताप्रतीतेर्भ्रमत्वात्, न च भ्रान्तभ्रान्तिज्ञसाङ्कर्यम्, भ्रान्तिज्ञानस्य तत् स्पष्टतांशे भ्रमत्वेऽपि विषयांशेऽतथात्वात्, न च सांव्यवहारिकावग्रहेऽव्याप्तिस्तत्र प्रतिनियतमनुष्यत्वाद्याकाराभिव्यङ्ग्यस्पष्टताया निरपायत्वात् । नन्वेवं सांव्यवहारिकत्वं यदि व्यवहारनयाभिमतत्वं तदाऽतिप्रसङ्गोऽवध्यादावपि स्पष्टत्वेन तद्व्यवहारात्, अथापारमार्थिकत्वं तदपि तथा कार्त्स्न्येनास्पष्टत्वरूपस्य तस्य विकलप्रत्यक्षेऽभावात् क्षायोपशमिकत्वरूपस्यापि तस्य तथात्वात् परजन्यत्वस्यापि तथात्वाद् । वस्तुतोऽवध्यादेर्गुणजन्यत्वे च मतिश्रुतयोरपि लब्धीन्द्रियगुणजन्यत्वात्पारमार्थिकगुणजन्यत्वाभावस्योभयत्र तुल्यत्वात् । अथेन्द्रियव्यवहितात्मजन्यत्वं तदिति चेत्, न, कुड्यादेर्घटस्येवेन्द्रियस्यात्मनोऽव्यवधायकत्वादिति चेत्, न, इन्द्रियजन्यस्य सांव्यवहारिकत्वेनावधिमनःपर्याययोस्तु विकलप्रत्यक्षत्वेन परिभाषणात्, कथमित्थमिति चेत्, न, स्वतन्त्रपरिभाषाया अपर्यनुयोज्यत्वादाभोगकरणे परानपेक्षत्वं वाऽपारमार्थिकत्वविवक्षायां तन्त्रमिति दिग् ॥३॥ परोक्षलक्षणमाह—

स्पष्टतालक्षणस्य भ्रमेऽतिव्याप्तेरवग्रहेऽव्याप्तेश्च परिहारः सांव्यवहारिकत्वस्य प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां निर्णयः ॥ ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परोक्षं च परापेक्ष-मनुमानादि सर्वथा ॥ येन संव्यहारेणा-ध्यक्षमैन्द्रियकं स्मृतम् (जगुः) ॥ ४ ॥

परापेक्षं परोक्षं, तत्त्वं चात्मातिरिक्तजन्यत्वं उत्पत्ताविन्द्रियाद्यपेक्षत्वं वाऽस्पष्टत्वं तदिति तु व्यावहारिकाः, तच्चोक्तस्पष्टत्वाभावो विषयताविशेषो वेत्यन्यदेतत्, नियतवर्णाद्याकारेणाप्रतिभानमिति तु प्राञ्चः, तत्रैकान्ततः परोक्षमनुमानादिकम्, इन्द्रियजन्यज्ञानस्य सांव्यवहारिकप्रत्यक्षत्वेनातथात्वात्, एवञ्चैकान्ततः प्रत्यक्षमप्यवध्यादिकमेवेति स्थितम् । आह च-"एगंतेण परोक्खं लिंगिअ-मोहाइअं च पच्चक्खं ॥ इंदिअमणोभवं जं, तं संववहारपच्चक्खं ॥ ९५ ॥ ति" [एकान्तेन परोक्षं लैङ्गिकं, अवध्यादिकं च प्रत्यक्षं । इन्द्रियमनोभवं यत्तत्संव्यवहारप्रत्यक्षम्]। नन्वस्मदादिसाक्षात्कारस्य कुतो नैकान्ततः प्रत्यक्षत्वं विवक्षामात्रस्य वस्तुस्वभावस्याकर्तुमन्यथाकर्तुं वाऽशक्यत्वादिति चेत्, न, अत्र प्रत्यक्षपरोक्षपदयोस्तद्व्यवहारविषयपरत्वात्, न च निश्चयस्य न व्यवहारोपयोगित्वमिति वाच्यम्, शब्दाभिलापरूपव्यवहारे तस्याप्युपयोगित्वात्, यत्तु व्यवहारनिश्चयाभ्यामेवास्य स्पष्टास्पष्टत्वं भेदाभेदवदिति, तदसत्, सतोरेव भेदाभेदयोस्ताभ्यामवगाहनात्तयोरसत्करणाक्षमत्वात्, अन्यथा विकल्पव्यवहारेण शशशृङ्गमपि सिद्ध्येत्, सिद्ध्येदेवेति चेत्, न, खण्डशः प्रसिद्धेरेव तत्र तत्र सिद्ध्यर्थत्वात्, अन्यथा "असतो णत्थि णिसेहो" इत्यादि भाष्यविरोधप्रसङ्गादिति वयमुत्पश्यामः ॥ यदि व्यवहारेण न स्पष्टतासिद्धिरपि तु संशयाद्यनवतारनियामकत्वेन तदाप्यस्यैकान्तपरोक्षत्वमुक्तरीतिं विना न निवारयितुं शक्यम्, एतेन 'वस्तुस्वभावो निश्चयाधीनो व्यवहारस्तु व्यवहाराधीन' इत्युक्तावपि न क्षतिः ॥ नन्वैन्द्रियकज्ञानस्य परोक्षत्वप्रतिपादनमुत्सूत्रं, सूत्रे तस्य प्रत्यक्षत्वेनैव प्रतिपादनाद् । यदार्षम्-" पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तम् । तं जहा-इन्दियपच्चक्खं णोइन्दियपच्चक्खं चेति," तन्न, " परोक्खं दुविहं पण्णत्तम् । तं जहा-आभिणिबोहिअनाणपरोक्खं सुअनाणपरोक्खं चेति" ॥

परोक्षस्य लक्षणम्, एकान्तेन परोक्षत्वमनुमानादेः अवध्यादेरेकान्तेन प्रत्यक्षत्वं परोक्षस्यापोन्द्रियमनोजन्यज्ञानस्य संव्यवहारेण प्रत्यक्षत्वं॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं । तद्यथा–इन्द्रियप्रत्यक्षं च नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च ॥] [परोक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं । तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं श्रुतज्ञानपरोक्षं चेति ॥] प्रदेशान्तरे तस्य परोक्षत्वेनापि प्रतिपादनात्,न चाभिनिबोधकत्वस्य सामानाधिकरण्येन परोक्षत्वप्रतिपादनान्न सूत्रविरोधः, ऐन्द्रियकस्य तस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि लैङ्गिकस्य तस्य परोक्षत्वात् । एवं हि 'इंदिअपच्चक्खं'-इत्यत्र प्रत्यक्षपदे न लक्षणाऽक्षप्रतिगतत्वस्य व्युत्पत्तिनिमित्तत्वेऽपि स्पष्टताया एव प्रत्यक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्, अत एवाक्षपदस्येन्द्रियार्थकत्वेऽपि न क्षतिः, प्रतिपूर्वादक्षिशब्दात्त्वव्ययीभावापत्त्यैव न तादृशं रूपं 'अर्श आदेरचोऽसार्वत्रिकत्वात्'इत्याहुः । ज्ञानस्य स्वसंविदितत्वेन प्रत्यक्षेऽपि प्रत्यक्षवृत्तेस्तदृपीष्टमित्यन्ये, विषयताया वृत्त्यनियामकत्वादिदमयुक्तमित्यपरे, तादृशादपि प्रत्यक्षशब्दात् प्रत्ययान्तरमिच्छन्त्येके, न च लक्षणबाधाल्लक्षणाऽऽवश्यकी, लक्षणासिद्धौ लक्षणबाधस्तात्सिद्धौ च सेत्यन्योन्याश्रयादिति चेत्, न, व्यवहारेण तथाबोधसम्भवेऽपि व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तं व्यवस्थापयता निश्चयेन तथाबोधाऽसम्भवादुक्तव्यवस्थयैव सूत्रोपपत्तेः,तदिदमभिप्रेत्योक्तं 'तथा च सति मतिश्रुतयोः परोक्षत्वे तस्यापि पारमार्थिकं परोक्षत्वमेवेति' सामानाधिकरण्येन बाधानवताराच्च न सामाधिकरण्येन बोधकल्पनापीति प्रतिभाति। यत्तु नोइन्द्रियप्रत्यक्षमित्यत्र नोइन्द्रियपदस्य मनोर्थकत्वात्तन्निमित्तकं ज्ञानं प्रत्यक्षमेवेति, तदनागमिकं, तत्र नोइन्द्रियपदस्येन्द्रियाभावार्थकत्वादन्यथाऽपर्याप्तावस्थायामपि भाविनोऽवधिज्ञानस्यामनस्कप्रत्यक्षस्य चासङ्ग्रहप्रसङ्गादिति ॥ ४ ॥

नन्वेवं कृता सप्रसङ्गं विभागव्यवस्था, न चेयमुपपत्तिमती मतिश्रुतयोः स्वाम्यादिसाधर्म्यप्रतिपादनेन तदभेदशङ्काया एवोदयात्, न च भेदगर्भसाधर्म्यज्ञानान्न तदुदय इति वाच्यम्, असाधारणधर्मज्ञानेन तदुदयादित्यत आह—

इन्द्रियज्ञानस्य परोक्षत्वकथनमुत्सूत्रमिति प्रश्नप्रतिविधानम् , तत्रान्यदपि शङ्कासमाधानाभ्यां चर्चितम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भिन्ने स्वाम्यादिसाधर्म्या–न्न यद्यपि मतिश्रुते ॥ लक्षणादिकृतो भेद–स्तथापि स्फुटमेतयोः ॥ ५ ॥

साधर्म्यं खल्वभेदो वैधर्म्यं च भेदः, न चानयोरसमावेशः, प्रमेयत्वादिना सर्वेषां साधर्म्येऽपि मिथो भेददर्शनात्, एवं च मतिश्रुतयोः स्वाम्यादिसाम्येऽपि लक्षणभेदादविरुद्धो भेदः। उक्तञ्च–"सामित्ताइविसेसा–भावाओ मइसुएगया णाम॥ लक्खणभेआइकयं, णाणत्तं तयविसेसेवि ॥ ९६ ॥" [स्वामित्वादिविशेषाभावाद्मतिश्रुतैकता नाम। लक्षणभेदादिकृतं नानात्वं तदविशेषेऽपि] अथ भेदे लक्षणादिकृतत्वं तज्ज्ञानज्ञाप्यत्वं साध्यसाधनयोरभेदे न सम्भवतीति चेत्, न, श्रुतलक्षणेन श्रुते मतिवैधर्म्यरूपस्य तस्य मत्यवृत्तिधर्मत्वेन साध्यत्वे तदविशेषाच्छ्रुते श्रुतत्वग्रहेऽपि मत्यवृत्तित्वेन तदग्रहेसिद्धसाधनानवकाशादिति॥५॥ अथ लक्षणादयश्च लक्षण–हेतु–फल–भाव–भेदे–न्द्रियविभाग–वल्का–ऽक्षर–मूकेतराणि, तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात्प्रथमं लक्षणभेदमेवाह —

श्रुतं श्रुतानुसारि स्या–न्मतिरन्यत्परोक्षजम् ॥ श्रुतं शब्दात्मकं गौणं, व्युत्पत्त्यर्थात्तु (र्थे तु) लक्षणे ॥६॥

श्रुतानुसारि ज्ञानं श्रुतं, तदननुसारित्वे सतीन्द्रियमनोजन्यं च ज्ञानं मतिः। एवं च–"इन्दियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुआणुसारेणं ॥ णिययत्थुत्तिसमत्थं, तं भावसुअं मई सेसं ॥१००॥" [इन्द्रियमनोनिमित्तं, यद्विज्ञानं श्रुतानुसारेण ॥ निजकार्थोक्तिसमर्थं, तद्भावश्रुतं मतिः शेषम् ॥] इत्यत्र इन्द्रियमनोनिमित्तमिति विशेषणं शेषमित्यत्र योज्यं, श्रुतानुसारित्वस्यैव श्रुतलक्षणत्वे निजकार्थोक्तिसमर्थत्ववत्तस्य स्वरूपविशेषणत्वेनाऽव्यावर्त्तकत्वात्, श्रुताननुसारित्वस्यावध्यादावतिप्रसक्तत्वेन तद्वारणाय मतिलक्षणे तु तदुपयुक्तमिति, अथ किं तत् श्रुतानुसारित्वं न तावच्छब्दजन्यत्वं शब्दावग्रहादीनामपि तथात्वात्, नापि तद्धीजन्यत्वं तदनुव्यवसायेऽतिव्याप्तेः, नाऽपि पदजन्यपदार्थोपस्थितिजन्यत्वं शाब्दातिरिक्तश्रुतज्ञानाऽव्याप्तेः,

भाष्यसंवादेन मतिश्रुतयोः स्वाम्यादिसाधर्म्यादभेदेऽपि लक्षणादिकृतो भेदः, मतिश्रुतयोर्लक्षणभेदनिरूपणं, श्रुतानुसारित्वे प्रश्नश्च ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाऽपि पदधीजन्यत्वाव्यभिचारिजातिमत्त्वं, शाब्दोपमित्यतिरिक्ताव्याप्तेः, श्रुतनिश्रितमतिज्ञानेऽतिव्याप्तेश्च । स्यादेतत्, श्रुतत्वजातिः साक्षात्परम्परया वा पदधीजन्यत्वं न व्यभिचरति, अभिलापप्लावितानां घटत्वादीनामपि पद्मरागत्वादेरिवोपदेशसहकृतेन्द्रियवेद्यत्वात्, अन्यथा कदाचिदप्यनाकलितघटपदसङ्केतानां घटत्वादिग्रहप्रसङ्गात्, अथ पद्मरागत्वादिकमप्युपदेशासहकृतेन्द्रियवेद्यमेव 'कान्तिविशेषवान्मणिः पद्मराग' इत्युपदेशस्तु पद्मरागपदवाच्यत्वोपमितावुपयुज्यत इति चेत्, न, एवं सत्यनाकलितोपदेशानां पद्मरागमहं वेद्मीत्यनुव्यवसायप्रसङ्गात्पद्मरागपदाभिलापप्रसङ्गाच्च, मतिज्ञानं तु न तथेति न तत्रातिव्याप्तिः । न च तथापि पदधीजन्यत्वाव्यभिचारिश्रुतनिश्रितत्वजातिमति मतिज्ञानेऽतिव्याप्तिस्तस्य सङ्केतग्रहशाब्दबोधप्रसूतसंस्कारजन्यत्वनियमात्संस्काराद्वारकजन्यत्वविवक्षणे शब्दानुभूतस्मरणाव्याप्तेरिति वाच्यम्, जातिपदस्य ज्ञानत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिपरत्वे दोषाभावात्, श्रुतनिश्रितस्यापि संस्कारद्वारा श्रुताजन्यत्वाच्च, अन्यथा तस्य स्मृतित्वापत्तेः, अथ "पुव्विं सुअपरिकम्मिअ–मइस्स जं संपयं सुआईअं । तं सुअनिस्सिअं" इत्यागमेन व्यवहारकाले श्रुताननुसारित्वे सति श्रुताभ्यासपाटवप्रसूतत्वस्य निश्रार्थत्वे मतेर्दृढतरसंस्कारद्वारा श्रुतजन्यत्वं तस्य निर्बाधमिति चेत्, न, तत्राऽभ्यासपाटवपदस्य क्षयोपशमपाटवार्थकत्वात्, अन्यथा संस्कारस्यानुभूतमात्रोपनायकतया श्रुतनिश्रिते श्रुताननुभूतानां नानाधर्माणामभानप्रसङ्गाद्, एवं सूत्रेऽपि परिकर्मितपदं पटूकृतपरं, मतिपदं मतिलब्धिपरमिति न कोऽपि दोषः, अन्यथा तत्र श्रुतातीतत्वस्यानुक्तिसहत्वात्कालव्यवधानस्य विविच्य दुर्ग्रहत्वात्, मैवं, पदधीप्रयोजकविवक्षारूपश्रुतज्ञानस्य पदज्ञानाजन्यत्वेन श्रुतत्वस्य पदधीजन्यत्वव्यभिचारित्वात्पद्मरागत्वादिग्रह इव घटत्वादिग्रहेऽप्युपदेशानपेक्षणाच्च, नापि साभिलापत्वं, तद्धि साकारत्वं वा शब्दविषयत्वं वाऽभिलाप-

तत्र शब्दज-न्यत्वशब्द धीजन्यत्व-पदजन्यपदार्थोऽपस्थितिजन्यत्व-पदधीजन्यत्वाव्यभिचारिजातिमत्त्वानां श्रुतानुसारित्वरूपतायाः खण्डनम् ॥

॥ ५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योग्यत्वं वा, त्रितयस्य तस्य साकारत्वाच्छब्दविषयत्वादभिलापयोग्यत्वादिदमवग्रहादावतिव्याप्तं भाषावर्गणादिमतोऽभिलाप्यज्ञानस्यैवाभिलाप्यप्रयोजकत्वाच्च, अथ शब्दोपरागेणार्थावगाहित्वं तत्, तदुपरागश्च संज्ञास्मृतिजन्यतावच्छेदको विषयताविशेषः स च नावग्रहादौ तस्य स्मृत्यजन्यत्वाद्, अस्ति च श्रुतज्ञाने सर्वत्र सः पूर्वं शब्दार्थयोः सङ्केतग्रहादर्थदर्शनोद्बुद्धसंस्कारेण प्रतिसम्बन्धिशब्दस्मरणोत्तरमेव तदभ्युगमात्, अत एव घटमनुभवामीति शब्दोपरागेणैव तदनुव्यवसाय इति चेत्, न, ईहादिरूपमतिज्ञानातिव्याप्तेः, संज्ञास्मरणाजन्यशाब्दबोधादावव्याप्तेरवग्रहोत्तरं संज्ञास्मरणविलम्बेनैवेहादिदर्शनाच्च, एतेन 'शब्दानुपरागेणाऽर्थावग्राह्यवृत्तिज्ञानत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं तत्' इत्यपि निरस्तमिति चेत्, अत्रोच्यते, पदधीविषयकधीजन्यत्वाव्यभिचारिजातिमत्त्वं तत्, विवक्षारूपश्रुतस्यापि पदेष्टसाधनताधीरूपपदविषयकधीजन्यत्वादुपदेशनिरपेक्षेन्द्रियजन्यज्ञानस्य च मतिज्ञानरूपत्वेनालक्ष्यत्वात् यद्वा व्यक्तश्रुतस्यैव लक्ष्यत्वेनाऽव्यक्तश्रुताव्याप्त्यभावात्, अथवा शब्दानुपरागेणार्थावग्राह्यवृतिज्ञानत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं तद्, अस्ति हि सर्वत्र श्रुतेऽर्थदर्शनोद्बुद्धसंस्कारप्रसूतशब्दोपरागशालित्वम्, न तु मतिज्ञानादौ, अवग्रहादिरूपे तत्र तदभावात्, न च संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वापत्तिः, प्रत्यभिज्ञाया इव संस्कारजन्यस्यापि श्रुतविशेषस्यातथात्वसम्भवात्, न च संस्कारेणेहाद्युत्पत्तिकाले स्मृत्युत्पत्त्यापत्तिः स्मृतिसामग्र्यपेक्षयाऽनुभवसामग्र्या बलवत्त्वाद्, अथवा श्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमप्रयोज्य एव सर्वत्र श्रुते शब्दोपरागः, अत एवैकेन्द्रियाणां तादृशसंस्कारविरहेऽपि न क्षतिरिति। अर्थावभासिनि श्रुते समानसंवित्संवेद्यतयैव पदोपराग इत्यपरे, प्रत्यक्षे विद्यमानत्वमिव श्रुतज्ञाने पदवाच्यत्वं संसर्गतयैव भासते स एव शब्दोपराग इत्यन्ये, यत्तु शब्दानुविद्धं ज्ञानमेव नास्ति। तदुक्तं–" न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके,

साकारत्वशब्दविषयत्वाभिलापयोग्यत्वशब्दोपरागेणार्थावगाहित्वैतदन्यतमरूपस्य साभिलापत्वस्य श्रुतानुसारित्वरूपतायाः, खण्डनं तत्प्रतिविधानं च।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यः शब्दानुगमादृते ॥ अनुविद्धमिव ज्ञानं, सर्वं शब्देन गम्यते-॥ १ ॥ " इति वैयाकरणमतं तदसत्, केवलार्थदर्शनं विना संस्कारोद्बोधाभावेन शब्दानिर्भासादर्थभासकसामग्र्यैव शब्दावभासाभ्युपगमे चाव्युत्पन्नानामपि तदवभासप्रसङ्गात्, व्युत्पन्नानां विविच्य पदोपरागेणार्थप्रत्ययोऽव्युत्पन्नानां तु सामान्यत इति चेत्, अर्थविशेषे भासमाने शब्दविशेषनिर्भासस्यैव प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति दिग्। ननु यद्येते मतिश्रुतलक्षणे तदा, 'अभिणिबुज्झइत्ति आभिणिबोहिअं, सुणेइ त्ति सुअं'ति सूत्रोक्ते लक्षणे कथं समंगसातामिति चेत्, अत्रासाधारणधर्मरूपलक्षणोक्तेस्तत्र च व्युत्पत्तिनिमित्तरूपतदुक्तेः, तथापि श्रूयत इति श्रुतमिति कर्मव्युत्पत्त्या शब्द एव श्रुतं स्यात्, न चायमात्मभाव इति चेत्, वक्तृमुखनिर्गतस्य तस्य श्रोतृश्रुतज्ञानकारणत्वेन वक्तृश्रुतोपयोगस्य च व्याख्यानादौ शब्दकारणत्वेनोपचारादेव तस्य श्रुतत्वाभिधानात्, परमार्थतस्तु शृणोतीति श्रुतमिति कर्तृव्युत्पत्त्या जीवानन्यश्रुतोपयोगस्यैव श्रुतपदप्रवृत्तिनिमित्ताक्रान्तत्वात् ॥ आह च-"जमभिणिबुज्झइ तमभिणिबोहो जं सुणइ तं सुअं भणिअं ॥ सद्दं सुणइ जइ तओ नाणं तो नाऽऽयभावो तं ॥ ९८ ॥ [यदभिनिबुध्यते तदभिनिबोधो यत् शृणोति तत् श्रुतं भणितं ॥ शब्दं शृणोति यदि सको ज्ञानं ततो नात्मभावस्तत्] सुअकारणं जओ सो सुअं च तक्कारणं ति तो तम्मि ॥ कीरइ सुओवआरो, सुअं तु परमत्थओ जीवो ॥ ९९ ॥ " [श्रुतकारणं यतः स श्रुतं च तत्कारणमिति ततस्तस्मिन् ॥ क्रियते श्रुतोपचारः श्रुतं तु परमार्थतो जीवः]त्ति ॥ अत्रापि व्युत्पत्त्यर्थमुपजीव्य जातिगर्भलक्षणे न दोषः ॥ ६ ॥

यथाश्रुतं लक्षणमव्याप्तिप्रसङ्गपरिहाराभ्यां समर्थयति ॥

कथमेकेन्द्रियाणां तद्, नूनं सुप्तयतेरिव ॥ भाषाश्रोत्राद्यभावेऽपि, क्षयोपशमसम्भवम् ॥ ७ ॥

शब्दाननुविद्धं ज्ञानमेव नास्तीति वैयाकरणमतस्य खण्डनम्, प्रकृतमतिश्रुतलक्षणविलक्षणसूत्रोक्तलक्षणसङ्गतत्वोपवर्णनं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यद्यप्येकेन्द्रियाणामव्यक्तं श्रुतं नोक्तलक्षणाक्रान्तं तथापि सुप्तयतिश्रुतस्योक्तजातिगर्भलक्षणाक्रान्तत्वाद् व्यक्तश्रुतस्यैव लक्ष्यत्वाद्वा न दोषः ॥ न चाव्यक्तश्रुते मानाभावः ?, स्वापाद्यवस्थोत्तरमपि व्यक्तीभवद् भावश्रुतं दृष्ट्वा पयसि सर्पिष इव प्रागप्यव्यक्तश्रुतस्यानुमानात्, इति सम्प्रदायः॥ ननु भावश्रुतव्यक्तीभावस्य न तज्जातीयशक्त्यनुमापकत्वं पर्यायव्यक्तेर्द्रव्यरूपशक्तेरेव व्याप्यत्वात्,तावतैव सदसत्कार्यवादनिर्वाहात्,अन्यथाऽस्मदादीनामपि केवलज्ञानव्यक्तिजातीयतच्छक्तिप्रसङ्गात्,इति चेत्, न, भावश्रुतेन तदा स्वकारणक्षयोपशमानुमाने तेन तत्कार्याव्यक्तश्रुतानुमानमित्याशयाद्, वस्तुतः सुषुप्ताद्यवस्थायामपि श्वासप्रश्वासादिसन्तानोऽव्यक्तचैतन्यप्रयुक्त एवेति तेन तदनुमानम्, अत एव सुप्तमूर्च्छितादीनां जलसेकादिप्रातिकारेणाऽव्यक्तचैतन्यमेवाभिव्यज्यत इति अनुभवः, सुषुप्तोत्थितस्य 'सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषम्'इत्यनुभवस्तु नाकिञ्चित्पदोपरागेणाऽव्यक्तज्ञानमेवावगाहते। स्यादेतत्, इन्द्रियवृत्तिनिरोधेन सुषुप्तौ ज्ञानमनुपपन्नं, न च तदैवाघ्राणोपनीतकुसुमगन्धादिभानापत्तिः, जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति त्वङ्मनोयोगस्य विजातीयात्ममनोयोगस्य वा हेतुत्वेन तदानीं तदभावे जन्यज्ञानमात्रस्यैवानुपपत्तेरिति, मैवं, द्रव्येन्द्रियोपरोधेऽपि तदानीं भावेन्द्रियज्ञानसम्भवाद्दर्शनावरणकर्मप्रकृतिविशेषरूपायाः सुषुप्तेर्व्यक्तचक्षुर्दर्शनादेरेवोपघातित्वात्,अत एव 'भाषाश्रोत्रलब्धिविरहेण सुप्तयतेरिवैकेन्द्रियाणां भावश्रुतं न भवति'इत्यपि परास्तं,द्रव्येन्द्रियोपरोधेऽपि भावेन्द्रियज्ञानवद् भाषाश्रोत्रलब्धिद्रव्यश्रुतादिवैकल्येऽपि तेषां भावश्रुतसम्भवाद्, वृद्धिसङ्कोचनादिनिधानमूलनिधानकामिनीस्पर्शजनितातिशयलिङ्गकाहारभयपरिग्रहमैथुनसञ्ज्ञानां तेषु साक्षादुपलम्भाच्च॥ आह च भाष्यकारः–"जइ सुअलक्खणमेयं, तो न तमेगिंदिआण संभवइ ॥ दव्वसुआभावम्मि वि, भावसुअं सुत्तजइणो व्व ॥१०१॥" [यदि श्रुतलक्षणमेतत्ततो न तदेकेन्द्रियाणां

लक्षणभेदान्मतिश्रुतयोर्भेदप्रसङ्गे श्रुतोक्तलक्षणस्याव्याप्त्यादिपरिहारेण निष्टङ्कनं, एकेन्द्रियेष्वपि श्रुतसिद्धिश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सम्भवति ॥ द्रव्यश्रुताभावेऽपि, भावश्रुतं सुप्तयतेरिव] “ भावसुअं भासासो–अलद्धिणो जुज्जए ण इयरस्स ॥ भासाभिमुहस्स जयं, सोऊण य जं हवेज्जाहि ॥१०२॥ ” [भावश्रुतं भाषाश्रोत्र–लब्धेर्युज्यते नेतरस्य ॥ भाषाभिमुखस्य यत्, श्रुत्वा च यद् भवेत्] “ जह सुहुमं भाविंदिअ–नाणं दव्विंदिआवरोहे वि ॥ तह दव्वसुआभावे, भावसुअं पत्थिवाईणं ॥ १०३ ॥ ” [यथा सूक्ष्मं भावेन्द्रियज्ञानं द्रव्येन्द्रियावरोधेऽपि ॥ तथा द्रव्यश्रुताभावे, भावश्रुतं पृथिव्यादीनाम्] त्ति ॥ **परममुनिवचनप्रामाण्या**च्चेदमित्थमवगन्तव्यम् । यत्त्वर्थग्रहणशक्तिरूपस्य लब्धीन्द्रियस्यार्थग्रहणे व्यापाररूपेणोपयोगेन्द्रियेण व्यवधानादहेतुत्वम्, आकरे व्यवस्थापितं च सुषुप्तौ ज्ञानानुत्पत्तिनिर्व्वाहायार्थग्रहणव्यापाररूपत्वमुपयोगस्य, तत्प्रमाणनिरूपणप्रस्तावाद् व्यक्तज्ञानमाश्रित्यावसेयम्, अन्यथा सामग्रीसत्त्वे उपयोगाभावोऽपि तदानीं कुत इत्यत्र किमभिधानीयं स्याद् विना क्षयोपशमवृत्त्यलाभं, तदभावे तु क्षयोपशमविशेषस्यैवोपयोगहेतुतया ‘तद्धेतोः’ इति न्यायेनान्ततस्तद्द्वारार्थग्रहणहेतुत्वकल्पनौचित्यात् ॥ स्वत एव केवलिनो विहाय शेषसंसारिणां तारतम्येन द्रव्येन्द्रियेष्वसत्स्वपि लब्धीन्द्रियपञ्चकावरणक्षयोपशमनिष्पन्ना मतिरस्त्येवेति **परममुनिवचनम्** ॥ ७ ॥

नन्वेवमेकेन्द्रियाणामव्यक्तमतिश्रुते इव विनिगमनाविरहादव्यक्तावध्यादिप्रसङ्ग इत्याशङ्कायामाह—

न चावध्यादिकं तत् स्या–दागमानुपदेशतः ॥ तत्कारणगुणाभावा–दक्षजन्यतया तथा ॥ ८ ॥

न खल्वेकेन्द्रियाणामव्यक्तं ज्ञानमवध्यादिकं भवितुमर्हति, केवलज्ञानस्य तावत् क्षायिकत्वाद्, अवधिमनःपर्याययोश्च क्षयोपशमस्य तत्कार्यादर्शनेन तेष्वनुपदेशात्, उक्तञ्च–“एवं सव्वपसंगो, न तदावरणाणमक्खओवसमा ॥ मइसुअनाणावरण–

एकेन्द्रियेष्वव्यक्तमतिश्रुतसमर्थनं, तेषु च मतिश्रुतवदव-ध्यादिसंभ-वाशंकानिरासश्च ॥

॥ ७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्त्रओवसमओ मइसुआइं ॥ १०४ ॥ ” [एवं सर्वप्रसङ्गः न–तदावरणानामक्षयोपशमात् ॥ मतिश्रुतज्ञानावरण–क्षयोपशमतो मतिश्रुते] त्ति ॥ अपि चावध्यादौ गुणस्य हेतुत्वात्, तद्विरहादेव नैकेन्द्रियेषु तदुत्पत्तिसम्भवः, व्यक्तावधित्वादेर्गुणजन्यतावच्छेदकत्वकल्पने चातिगौरवात्, न च व्यक्तमत्यादिकल्पनेऽपि व्यक्तमत्यादाविन्द्रियादिहेतुत्वकल्पने समानं गौरवमिति वाच्यम्, मतिलब्ध्यादावनुगतप्रत्यासत्तिविरहेण, इन्द्रियत्वादिनाऽहेतुत्वे विशिष्यतद्धेतुत्वावश्यकत्वात्, अत्र चानुगतस्य गुणस्य हेतुत्वेन तदसाम्यात्, स्यादेतद्, अवधिज्ञानस्य भवप्रत्ययकत्व–गुणप्रत्ययकत्वाभ्यां द्वैविध्यात्, विजातीयावधिज्ञान एव गुणस्य हेतुत्वात्, तद्विजातीयमव्यक्तं तदेकेन्द्रियाणां भविष्यति, युक्तं चैतत्, मतिश्रुतयोर्द्वयोरव्यक्तत्वकल्पनापेक्षयैकस्यैवावधेस्तत्त्वकल्पनौचित्यात्, मैवम्, भवप्रत्ययिकेऽपि तत्र गुणस्य हेतुत्वात्तत्र भवनिमित्ततामात्रेणैव तत्प्रत्ययकत्वव्यवहाराद्, भवस्य हेतुत्वेऽपि देवभवादेर्विशिष्यैव हेतुत्वात्, प्रत्येकमादायोक्तगौरवस्याविशेषाच्च, किञ्चावध्यादेरात्ममात्रजन्यत्वं व्यवस्थितम्, न चैकेन्द्रियाणां ज्ञानोत्पत्तावात्ममात्राधिकार इति न तेषामवध्यादिकमित्याद्यूहनीयम् ॥ ८ ॥

एकेन्द्रियेष्ववध्यादिज्ञानाभावसमर्थनं, हेतुफलभावान्मतिश्रुतयोर्भेदोपदर्शनोपक्रमश्च ॥

उक्तो लक्षणभेदान्मतिश्रुतयोर्भेदः, अथ हेतुफलभावात्तद्भेदमुपदर्शयति–

श्रुतस्य मतिपूर्वत्वं, श्रुतमित्यनयोर्भिदा ॥ यौगपद्यं तु तल्लब्ध्यो–रिष्टमेवोपयोगयोः ॥ ९ ॥

‘मइपुव्वगं सुतम्’इत्यागमेन हि श्रुतस्य मतिहेतुकत्वं प्रतिपाद्यते, पूर्वपदस्य हेतुत्वार्थकत्वात्, ‘सम्यग्ज्ञानपूर्विका पुरुषार्थसिद्धिः’ इत्यादौ तथादर्शनात्, पृधात्वर्थस्य कारण एवान्वयात्, तथाहि कारणेनैव सताऽनुप्रेक्षादिकालीनोहापरपर्यायेण मतिज्ञानेन श्रुतज्ञानं पूर्यते वृद्धिं नीयत इति यावत्, एवञ्च दृढस्मृतिरूपश्रुतज्ञाने ऊहस्य हेतुत्वं पर्यवस्यति, तथाभूतमत्यैव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चान्यतस्तत्प्राप्यते, गृह्यते परोपदेशश्रवणादिरूपमतेरेव तदाहितसंस्कारद्वारा श्रुतहेतुत्वाद्, एवं च श्रुतमात्र एव द्रव्यश्रुतग्रहणस्य हेतुत्वं लभ्यते, तथाभूतयैव च तयाऽन्यस्मै तद् दीयते व्याख्यायते, एवञ्च व्याख्यानुकूलश्रुतसङ्कल्पे तदिष्टसाधनतामतेर्हेतुत्वं व्यज्यते तथाभूतयैव च मत्या परावर्त्तनाचिन्तनद्वारा गृहीतं श्रुतं स्थिरीक्रियते, इत्थं चाविस्मृत्यनुकूलधारणाव्यापाररूपाया मतेरुत्तरकालिकपरिस्फूर्त्तिरूपश्रुतहेतुत्वं व्यवस्थाप्यते, यद्यपि 'पृपालनपूरणयोः' इतिपाठात्प्राप्त्यादेर्नैतद्धात्वर्थत्वम्, तथापि प्राप्तिदानयोः पूरणविशेषत्वाद् न किञ्चिदनुपपन्नम्, एवञ्च मतिश्रुते कार्यकारणभावादेव परस्परं भिद्येते ॥ अभेदे सव्येतरगोविषाणयोरिव कार्यकारणभावाभावात्, आह च–“मइपुव्वं सुअमुत्तं, ण मई सुयपुव्विआ विसेसोयं ॥ पुव्विं पालणपूरण-भावाओ जं मई तस्स ॥ १०५ ॥” [मतिपूर्वं श्रुतमुक्तं, न मतिः श्रुतपूर्विका विशेषोऽयम् ॥ पूर्वं पालनपूरण–भावात् यन्मतिस्तस्य] “ पूरिज्जइ पाविज्जइ, दिज्जइ वा जं मईइ नाऽमइणा ॥ पालिज्जइ अ मईए, गहियं इहरा पणस्सेज्जा ॥१०६॥ ” [पूर्यते प्राप्यते दीयते वा यन्मत्या नाऽमत्या ॥ पाल्यते च मत्या गृहीतं, इतरथा प्रणश्येत् ॥] यद्यपि प्रागभावावच्छिन्नकालसम्बन्ध एव पूर्वपदार्थो नतु कारणत्वं गौरवात्, अकारणेऽपि पूर्वपदव्यवहाराच्च, तथाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां मतेः श्रुतहेतुत्वावधारणादत्र पूर्वपदस्य कारणत्वे लक्षणा, न चाऽत्र बीजाभावस्तात्पर्यान्यथानुपपत्तेरेवैतद्बीजत्वात्, तथातात्पर्यं विनैतदभिधानस्य निष्प्रयोजनत्वात्, ननु ज्ञानाज्ञानरूपयोर्मतिश्रुतयोः पृथक् समकालमेव लाभोपदेशात् कथं तयोर्हेतुहेतुमद्भावः, अन्यथाप्रतिपत्तौ तु मतिज्ञानलाभकाले श्रुतज्ञानालाभात्, श्रुताज्ञानानिवृत्तिप्रसङ्गादन्यज्ञानस्याज्ञानानिवर्त्तकत्वादिति चेत्, लब्धिरूपमतिश्रुतयोर्लाभस्यैव यौगपद्योक्तेः, उपयोगयोस्तु तथास्वाभाव्यात्क्रमोत्पत्तेरेव व्यवस्थितत्वात्, आह च–“नाणाण-

हेतुफलभावान्मतिश्रुतयोर्भेदोपदर्शनं तत्र पृधात्वर्थप्रपञ्चनं तत्र भाष्यसंवादः पूर्वपदस्य कारणत्वे लक्षणायां बीजप्रदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णाणाणि य, समकालाइं जओ मइसुआइं ॥ तो न सुअं मइपुव्वं, मइनाणे वा सुअन्नाणं॥१०७॥ इह लद्धिमइसुआइं, समकालाइं, नतूवओगो सिं ॥ मइपुव्वं सुअमिह पुण, सुओवओगो मइप्पभवो ॥ १०८ ॥ त्ति ॥ [ज्ञाने अज्ञाने च समकाले यतो मतिश्रुते। ततो न श्रुतं मतिपूर्वं मतिज्ञाने वा श्रुताऽज्ञानम् ॥ इह लब्धिमतिश्रुते समकाले, नतूपयोगोऽनयोः । मतिपूर्वं श्रुतमिह पुनः, श्रुतोपयोगो मतिप्रभवः] ॥ ९ ॥ अथ श्रुतस्य मतिपूर्वत्वमिव मतेरपि श्रवणजन्यायाः श्रुतपूर्वत्वमस्तीत्यविशेषं निराकर्तुमाह—

न भावश्रुतजन्यापि, द्रव्यश्रुतभवा मतिः ॥ न तस्यामस्ति वैजात्य–मुत्कर्षो वा पुरस्कृतः ॥ १० ॥

परस्माच्छब्दं श्रुत्वा प्रादुर्भवन्ती मतिर्न भावश्रुतजन्या किं तु द्रव्यश्रुतप्रभवैव, श्रवणानुकूलक्षयोपशमोद्बोधकस्य शब्दस्यैव तद्धेतुत्वाद्, अन्यादृशश्रुतपूर्वत्वं तु मतेर्न वारयामः श्रुतोपयोगाच्च्युतस्य मत्युपयोग एवावस्थानाद् ॥ आह च–"सोऊण जा मई भे, सा सुअपुव्व त्ति तेण ण विसेसो ॥ सा दव्वसुअप्पभवा, भावसुआओ मई णत्थि ॥१०९॥"[श्रुत्वा या मतिर्भवतां, सा श्रुतपूर्वेति तेन न विशेषः॥ सा द्रव्यश्रुतप्रभवा, भावश्रुतान्मतिर्नास्ति॥]"कज्जतया ण उ कमसो, कमेण को वा मइं णिवारेइ?॥ जं तत्थावत्थाणं, चुअस्स सुत्तोवओगाओ ॥११०॥" [कार्यतया न तु क्रमशः, क्रमेण को वा मतिं निवारयति ॥ यत्तत्रावस्थानं, च्युतस्य श्रुतोपयोगात् ॥]त्ति ॥ यद्यप्यनयोरविशिष्टमपि पौर्वापर्यं भेदकमेव, तथापि वस्तुगत्यनुरोधेनायं प्रयास इति ऋजवः, एकजातीयत्वेऽपि व्यक्तिपौर्वापर्यसम्भवाज्जात्यैव पौर्वापर्यस्य भेदकत्वात् तन्निर्वाहककार्यकारणभावव्यवस्थापनं, तन्निर्वाहाय च विशेषसमर्थनं सफलमिति यौक्तिकाः ॥ कार्यकारणभावेन भेदनिरूपणौपयिकप्रासङ्गिकसूत्रसमर्थनायेदमिति साम्प्रदायिकाः॥ ननु मतिर्न श्रुतजन्येत्यसङ्गतं श्रुतनिश्रितमतिज्ञानस्य श्रुतजन्यत्वात्, इति चेत्,न, श्रुतप्रसूतक्षयोपशमविशेषस्यैव तद्धेतु-

मतिश्रुतलब्ध्योः समकालत्वेन तयोरित्यत्र भाष्यसंवादः

मतेः भावश्रुतजन्यत्वशङ्काऽपाकरणम् द्रव्यश्रुतजत्वे सम्मतिः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वात्, श्रुतजन्यतावच्छेदकजातिकल्पने मानाभावाद्, अस्तु वा तत्र तद्धेतुत्वम्, तथाप्यत्र सामान्यतो हेतुत्वलक्षण उत्कर्ष एव सामान्यतो भेदोपयोगितया ग्राह्यः, अन्यथा सामानाधिकरण्येन भेदग्रहेऽपि सामान्यतो भेदाग्रहेण न्यूनत्वप्रसङ्गाद्, अपि च पौर्वापर्येण निरूपणौपयिकोऽपि सामान्यत एवोपजीव्योपजीवकभाव इत्युक्तसूत्रौपयिकतयाप्युक्तोत्कर्ष एव ग्राह्य इति दिग् ॥१०॥ मतिपूर्वं श्रुतमित्यत्र व्याख्यान्तरं विदधतां केषाञ्चिन्मते दूषणमाह—

केचिद् द्रव्यश्रुतं प्राहु-र्मतिपूर्वं न चापरम् ॥ तेषां भावश्रुताभावो, निर्बीजा कल्पना पुनः ॥ ११ ॥

मतिपूर्वं श्रुतमित्यत्र श्रुतपदं द्रव्यश्रुतपरं 'न ह्यविवक्षितं कोऽपि भाषते,' यच्च विवक्षाज्ञानं तत्किल मतिरित्येतन्मतिजन्यत्वं द्रव्यश्रुतस्यैव व्यवतिष्ठत इति केषाञ्चिदाशयः,तेषां विवक्षाज्ञाने प्राप्तमपि भावश्रुतलक्षणमुपेक्षमाणानामन्यत्रापि तदपेक्षाया अन्याय्यतया भावश्रुताभाव एव प्रसजेत्,इति निमग्नाऽनयोर्विशेषचिन्ता॥आह च—"दव्वसुअं मइपुव्वं,भासइ जंनाविचिन्तियं केइ॥ भावसुअस्साभावो, पावइ तेसिं ण य विसेसो ॥१११॥" [द्रव्यश्रुतं मतिपूर्वं, भाषते यद् नाऽविचिन्तितं कोचित् ॥ भावश्रुतस्याभावः प्राप्नोति तेषां न च विशेषः॥] न च मतिशब्दयोरेवात्र भेदचिन्ता सतामौचितीमञ्चति तद्भेदस्यासान्दिग्धत्वेनाचिन्तनीयत्वात्, न च मतिपूर्वतया द्रव्यश्रुतस्य ततो भेदोऽपि, मतेरपि शब्दपूर्वत्वेनाविशेषाद् ॥आह च—"दव्वसुअं बुद्धीओ, सा वि तओ जमविसेसओ तम्हत्ति [द्रव्यश्रुतं बुद्धेः सापि ततो यदविशेषतस्तस्मात्॥] वस्तुतोऽनयोः सामान्यतो हेतुहेतुमद्भावाभावेन सामान्यतो भेदाऽसाधनान्न्यूनत्वमपि, तस्माद् भावश्रुतं मतिपूर्वमित्येव व्याख्यानं सम्यग्, अन्यथा श्रुतपदस्य शब्दे लक्षणा निर्बीजा स्यात्, तथाहि किमत्रान्वयानुपपत्त्या लक्षणाऽऽश्रीयते, तात्पर्यानुपपत्त्या वा, नाद्यो भावश्रुते जन्यत्वान्वयस्याऽबाधात्, न द्वितीयः,

मतौ श्रुतजन्यतावच्छेदकवैजात्याभावः मतिपूर्वं श्रुतमित्यत्रोत्कर्षविशेषादरः व्याख्यान्तरे दूषणं तत्र भाष्यसम्मतिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'सुणेइ त्ति सुअं'इत्यत्र व्युत्पत्त्यर्थगृहीते शब्दे मतिजन्यत्वतात्पर्यानुपपत्त्या तदाश्रयणस्य वक्तुमयुक्तत्वाद्, भेदचिन्ताया अप्रस्तुतत्वेन तत्र तज्जन्यत्वतात्पर्यानाकलनात्, स्यादेतत्, मत्यादीयमानस्य श्रुतस्य शब्दद्वारैव मतिजन्यत्वात्तत्र तत्पूर्वत्वं प्रतिपाद्यमानं श्रुत एव पर्यवस्यतीति, मैवम्, एतादृशमतिपूर्वत्वस्य सर्वत्रासम्भवात्, एतेन द्रव्यश्रुते मतिपूर्वत्वप्रतिपादनस्य भावश्रुतभेदचिन्तौपयिकतया नार्थान्तरत्वमित्युक्तावपि न क्षतिः, नन्वेवमत्र द्रव्यश्रुते व्युत्पत्त्यर्थानुसरणमप्ययुक्तमनौपयिकत्वात्, इति चेत्, न, भावश्रुतलक्षणत्वेन तस्योपादेयत्वाद् ॥आह च–"भावसुअं मइपुव्वं, दव्वसुअं लक्खणं तस्स॥११२॥[भावश्रुतं मतिपूर्वं, द्रव्यश्रुतं लक्षणं तस्य] अत्र लक्ष्यते गम्यतेऽनेनेति लक्षणं लिङ्गमित्यर्थ इत्याहुः, वस्तुतो लक्षणं लक्षणघटकमित्यर्थोऽपि प्रागुक्तरीत्याऽनुसरणीयः, एवञ्च कार्यीभूतेन लक्षणघटकेन वा शब्देन स्वकारणीभूतस्य स्वघटितलक्षणलक्ष्यस्य वा विवक्षारूपस्य भावश्रुतस्यैव लक्षणात्, तत्र मतित्वप्रतिपादनं परेषां विपरीतमिति ध्येयम् ॥ आह च–"सुअविन्नाणप्पभवं, दव्वसुअमियं जओ विचिन्तेउं ॥ पुव्विं पच्छा भासइ, लक्खिज्जइ तेण भावसुअं ॥११३॥" [श्रुतविज्ञानप्रभवं द्रव्यश्रुतामिदं यतो विचिन्त्य ॥ पूर्वं पश्चाद् भाषते, लक्ष्यते तेन भावश्रुतम् ॥]॥११॥ अथ नन्द्यध्ययने मतिश्रुतयोः कार्यकारणभावेन भेदप्रतिपादनानन्तरं स्वस्थाने सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिग्रहात्तयोर्भेदप्रतिपादनायेदं सूत्रमस्ति, तद्यथा ॥ "अविसेसिआ मई मइनाणं मइअन्नाणं च, विसेसिआ मई सम्मद्दिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छादिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं ॥ अविसेसिअं सुअं सुअनाणं सुअअन्नाणं च, विसेसिअं सुयं सम्मद्दिट्ठिस्स सुअं सुअनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुअं सुअअन्नाणंति" [अविशेषिता मतिर्मतिज्ञानं च मत्यज्ञानं च ॥ विशेषिता मतिः सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानं, मिथ्यादृष्टेर्मतिर्मत्यज्ञानं ॥ एवं अविशेषितं श्रुतं श्रुतज्ञानं श्रुताज्ञानं च, विशेषितं श्रुतं सम्यग्दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः

व्याख्यान्तरे श्रुतपदस्य द्रव्यश्रुते लक्षणाबीजाभावः व्युत्पत्त्यर्थानुसरणौपधिकफले भाप्यसंवादः, तयोः सम्यक्त्वमिथ्यात्वे विवेचिते नन्दिसूत्रसंवादात् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुतं श्रुताज्ञानम्] अतोऽत्राप्येनमर्थं भाष्यसम्प्रदायमनुरुन्धानोऽनुविवदिषुराह—

मतिश्रुते निर्विशेषे, ज्ञानाज्ञाने विशेषिते ॥ सम्यग्दृशां हि ते ज्ञाने, अज्ञाने कुदृशां पुनः ॥ १२ ॥

सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिभावेनाऽविशेषिता मतिरेवोच्यते न तु मतिज्ञानं मत्यज्ञानं वा, सामान्यपदेन विशेषानभिधानात्, विशेषाऽभाने सामान्यस्याप्यभानापत्तिः,इति चेत्,न,तथापि सामान्यरूपेण विशेषभानेऽपि विशेषरूपेण तदभानाद्, एवं चाविशेषिता मतिरित्यस्य विशेषबोधकसमभिव्याहारविनिर्मुक्तमतिपदजन्यबोधविषयो मतिरित्यर्थः, न च मतिज्ञानमत्यज्ञानयोरपि वस्तुतस्तादृशबोधविषयत्वात्,अविशेषितमतिव्यवहारापत्तिरित्याशङ्क्यम्,मतिज्ञानमविशेषिता मतिरिति व्यवहारो मतिज्ञानत्वावच्छेदेनाताद्दशबोधविषयत्वमवगाहते तस्यासम्भवादिति तत्त्वम्, एवं सम्यग्दृष्टित्वविशेषिता मतिर्मतिज्ञानम्, मिथ्यादृष्टित्वविशेषिता च मत्यज्ञानं, एवं श्रुतेऽपि ज्ञेयम्॥ आह च—"अविसेसिया मइच्चिय, सम्मद्दिट्ठिस्स सा मइन्नाणं॥ मइअन्नाणं मिच्छा–दिट्ठिस्स सुअं पि एमेव ॥ ११४ ॥"[अविशेषिता मतिरेव सम्यग्दृष्टेः सा मतिज्ञानम् ॥ मत्यज्ञानं मिथ्यादृष्टेः श्रुतमप्येवमेव ॥] अत्र मतिज्ञानमत्यज्ञानयोर्मतिरिति सामान्यसंज्ञा, मतिज्ञानं मत्यज्ञानञ्चेति विशेषसंज्ञा द्रष्टव्या ॥ १२ ॥ ननु यथैव मतिश्रुताभ्यां सम्यग्दृष्टिर्घटादिकं जानीते व्यवहरति च तथा मिथ्यादृष्टिरपीति कथमेकस्य ज्ञानमपरस्य चाज्ञानमिति व्यवस्थेत्यत्राह—

अविशेषात्सदसतो–र्भवहेतुतया तथा ॥ यादृच्छिकतयाऽज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः फलं विना ॥ १३ ॥

मिथ्यादृष्टिज्ञानं हि सदसतोर्विशेषं न प्रतिपद्यते,सर्वथा घट एवायामित्यवधारणे पटगतानामपि प्रमेयत्वादीनामतथात्वेनाध्यवसायात्, अन्यथा पटगतधर्मद्वारा पटरूपताया अपि तत्र सम्भवे 'सर्वथा घट एव' इत्यवधारणानुपपत्तेः, एवं सर्वप्रकारैर्घटोऽस्त्ये-

अविशेषितमतिश्रुतयोर्मतिश्रुतत्वे विशेषितयोश्च तयोः सम्यग्दृष्टेर्मतिश्रुतज्ञानत्वे मिथ्यादृष्टेर्मत्यज्ञानश्रुताज्ञानत्वे च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेत्यवधारणे तत्राऽसतामपि पटत्वादीनामध्यवसायः, अन्यथा सर्वथापदत्यागप्रसङ्गाद्, एवं विपर्यस्तत्वादेव भवकारणं तत्, भवहेतुषु हिंसादिषु मोक्षहेतुत्वाध्यवसायात्, मोक्षहेतुषु वाऽहिंसादिषु भवहेतुत्वाध्यवसायाद्, यादृच्छिकोपलम्भरूपं च तद्, विरतिलक्षणं फलं विना फलशून्यं च, इत्येतैर्हेतुभिरज्ञानमेवेदम् ॥ आह च–"सदसदविसेसणाओ, भवहेउजदिच्छिओवलंभाओ ॥ नाणफलाभावाओ, मिच्छदिट्ठिस्स अन्नाणं ॥ ११५ ॥" [सदसदविशेषणाद् भवहेतुत्वाद्यदृच्छोपलंभात् । ज्ञानफलाभावाद् मिथ्यादृष्टेरज्ञानम् ॥] त्ति ॥ १३ ॥ ननु घट एवायं घटोऽस्त्येवेत्येवमेवाध्यवसायः परेषामपि ननु सर्वथेत्याकारस्तत्र च विशेषणक्रियासङ्गतैवकाराभ्यामन्ययोगव्यवच्छेदात्यन्तायोगव्यवच्छेदयोरेव लाभात्क सदसदविशेष इति चेद् ?, उच्यते ।

सर्वथाऽनुपरागेण, घटधीर्ज्ञानमेव नः ॥ कथञ्चित्परसत्ताया, आपत्तौ चेन्न तद्ग्रहः ॥ १४ ॥

यदि हि घटे कथञ्चिदन्ययोगव्यवच्छेदः कथञ्चिदेव चास्तित्वात्यन्तायोगव्यवच्छेदोऽध्यवसीयते तदा ज्ञानमेव तत्, अन्यथा त्वज्ञानमेव, नहि घटभिन्ने पटादौ प्रमेयत्वादिनापि योगो घटे व्यवच्छिद्यते, न वा पटास्तित्वादेरपि घटेऽत्यन्तायोगव्यवच्छेद इति । अथ घटे घटभिन्ननिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्त्वमन्ययोगव्यवच्छेदः, अस्तित्वे च घटनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वमत्यन्तायोगव्यवच्छेदः सर्वथास्त्येव, नहि तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं तदभावः, येन सर्वथात्वव्याघातः, किन्तु तादृशधर्मवत्त्वाभावः । न च तादृशधर्मवति तादृशधर्माभावो विरोधादप्रतीतेश्च, न च सर्वैः प्रकारैरिति सर्वथार्थः, किन्तु तदभावानधिकरणत्वे सतीति चेत्,न, प्रतियोगिमत्यपि पररूपेण तदभावात्,विशेषग्रहे च कथञ्चित्पक्षप्रसङ्गाद्, अधिकः स्याद्वादरहस्ये विस्तरः ॥१४॥ ननु तत्रापि कथमेतदज्ञानम्, कथञ्चित्पक्षग्रहात्,किञ्चैवमप्यवधारणाविनिर्मुक्तं निर्विकल्पकादिकं कथं मिथ्यादृशां न ज्ञानं,

मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुतयोरज्ञानत्वे हेतवो निरूपिताः सर्वथाऽनुपरागे ज्ञानत्वमन्यथा त्वज्ञानत्वमिति दर्शितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न च स्यात्पदविनिर्मोकात्तस्याज्ञानत्वं नाम, सम्यग्दृशामपि स्यात्पदविनिर्मोकेण क्वचिदज्ञानदर्शनात्संसर्गतया स्यात्पदार्थविषयतायास्त्वन्यत्राऽप्यनिवारणीयत्वात्, सम्यग्दर्शनस्यैव तादृशसंसर्गकज्ञानहेतुत्वम्, इति चेत्, न, तथापि सम्यग्दृष्टिसम्बन्धिनोऽसंसर्गकस्यावग्रहस्याज्ञानत्वप्रसङ्गात्, किञ्च संवादिप्रवृत्तिजनकतावच्छेदकं 'तद्वति तत्प्रकारकत्वलक्षणं' प्रामाण्यं मिथ्यादृशां ज्ञानेऽतिव्याप्तं, अव्याप्तं च सम्यग्दृष्टिसम्बन्धिसंशयादौ, इति चेद्, उच्यते–

ज्ञानं तदपि संवादि–प्रवृत्तिजनकं यतः ॥ अज्ञानं बन्धहेतुत्वा–न्मोक्षाऽहेतुतयाऽथवा ॥ १५ ॥

व्यवहारौपयिकं हि ज्ञानत्वं मिथ्यादृशां ज्ञानेऽस्त्येव, तथापि निश्चयतो बन्धहेतुतावच्छेदकमज्ञानत्वमपि तत्राऽस्तीति ज्ञानमपि तदज्ञानमित्येव निश्चीयते, ननु ज्ञानेऽज्ञानत्वकल्पने मानाभावो मिथ्यादर्शनविशिष्टज्ञानत्वेनैव विशिष्टबन्धहेतुत्वसम्भवात्, इति चेत्, न, मिथ्यादर्शनविशिष्टज्ञानत्वेन ज्ञानविशिष्टमिथ्यादर्शनत्वेन वा हेतुतेत्यत्र विनिगमकाभावाद्, मिथ्यादर्शनज्ञानत्वयोः सम्बन्धभेदेन व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकताऽसम्भवात्, अन्यथा दण्डविशिष्टचक्रत्वादिनाऽपि हेतुत्वप्रसङ्गात्, न च ज्ञानत्वाज्ञानत्वयोरसमावेशो पृथग्धर्मयोस्तयोः समावेशाज्जातिसाङ्कर्यस्यापि क्वचिददोषत्वाद्, ननु मिथ्यादर्शनाविरतिकषाययोगानामेव तत्तद्बन्धहेतुत्वोपदेशात्सामान्यतो बन्धविशेषे मिथ्यादर्शनत्वेन मिथ्यादर्शनजन्यतावच्छेदकजातिव्याप्यजात्यवच्छिन्नं प्रति च 'मिथ्यादर्शनविशेषत्वेनैव हेतुता प्रामाणिकी 'यत्सामान्ययोः' इति न्यायात्, ज्ञानं तु तत्सहभूततया तत्राऽन्यथासिद्धमेवेति' न तस्याज्ञानत्वेन तद्धेतुतेति चेत्, न, मिथ्यादर्शनद्वाराऽज्ञानस्य हेतुत्वे द्वयोर्हेतुत्वसमर्थनात्, अथवा मिथ्यादृष्टिज्ञाने सम्यक्प्रवृत्त्यादिद्वारा मोक्षहेतुतावच्छेदकज्ञानत्वाभाव एवाज्ञानत्वं, न चोक्तज्ञानत्वव्याप्यत्वमस्यास्त्विति वाच्यम्, सम्यग्दृष्टिसंशयादौ व्यभिचारात्, न चैकवि-

मिथ्यादृष्टिज्ञाने व्यवहारौपयिकं ज्ञानत्वं निश्चयतोऽज्ञानत्वम्, परप्रश्नप्रतिविधानञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शेषवति विशेषान्तराभावेन सामान्याभावाभ्युपगमेऽतिप्रसङ्ग इति वाच्यम्, एकसामान्यवति सामान्यान्तराभावस्यैव स्वीकाराद्, द्वयोः सामान्ययोरेकपदवाच्यतायामेव नयविभागाद्यत्सामान्यवत्येतत्सामान्याभावस्तत्सामान्यमेव मिथ्यात्वोदयजन्यतावच्छेदकं, बन्धहेतुतावच्छेदकञ्चाज्ञानत्वमेवेति प्राच्यपक्ष एव युक्त इति चेत्,न, अज्ञानत्वेन बन्धाहेतुतायामेतत्पक्षस्यैव युक्तत्वात्, इति दिग्।। इत्थमेव बन्धहेतुत्वादयो हेतवो ज्ञानत्वगमकाः सम्भवेयुरिति सर्वमवदातम् ॥ १५ ॥

उक्तो हेतुफलभावान्मतिश्रुतयोर्भेदः, अथ भेदभेदात्तमभिधातुमाह—

वक्ष्यमाणभिदाभाजो–रेतयोरथवा भिदा ॥ विशेषनिश्चये जाति–भेदानुमितिगोचरः ॥ १६ ॥

मतिज्ञानस्यावग्रहादयोऽष्टाविंशतिर्भेदाः, श्रुतज्ञानस्य चाङ्गानङ्गप्रविष्टादयश्चतुर्दश वक्ष्यन्त इति भेदभेदादनयोर्भेदो घटितः, नन्ववान्तरभेदस्य न सामान्यभेदानुमापकत्वम्, अन्यथा पृथिव्याद्यन्यतमभेदस्य द्रव्यभेदानुमापकत्वप्रसङ्गात्, इतिचेत्, न, तत्र साध्याभाववति हेतुसन्देहादननुमितेः, अत्र तु साध्याभाववति हेत्वभावनिश्चयेनानुमित्यप्रतिरोधात् व्याप्तिग्राहकादागमादेव साध्यसिद्धावपि सिसाधयिषया तदग्रहदशायां वाऽनुमानावतारात्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन ॥ आह च–भेयकयं च विसेसण–मट्ठावीसइविहंगभेआई [भेदकृतं च विशेषणमष्टाविंशतिविधाङ्गभेदादि]त्ति ।।वैधर्म्यमसिद्धमेव साध्यत इत्यप्याहुः ।।१६।।

समर्थितो भेदभेदाद् भेदः, अथेन्द्रियभेदाद् भेदमभिधातुमाह–

अथवेन्द्रियभेदेन, भेदः सिध्येत्तयोर्द्वयोः ॥ श्रुतं पूर्वगते यस्मात् , तद्भेदप्रतिपादनम् ॥ १७ ॥

स्पष्टः ॥ आह च–“इंदिअविभागओ वा,मइसुअभेओ जओ भिहिअं।।११६।।” [इन्द्रियविभागतो वा मतिश्रुतभेदो यतोऽभि-

भेदभेदान्म-
तिश्रुतयो-
र्भेदाभिधानं,
इन्द्रियवि-
भागाद्भेदा-
भिधानोप-
क्रमश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हितम्]त्ति ॥पूर्वगताभिहितं चेदम्–"सोइंदिओवलद्धी, होइ सुअं सेसयं तु मइनाणं ॥ मोत्तूणं दव्वसुअं, अक्खरलंभो अ सेसेसु ॥११७॥ [श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिर्भवति श्रुतं शेषकं तु मतिज्ञानम् ॥ मुक्त्वा द्रव्यश्रुतं, अक्षरलंभश्च शेषेषु ॥] त्ति ॥ १७ ॥

इमामेव गाथां यथाभाष्यं सप्रसङ्गप्रबन्धेन [विवरीषुराह–]

श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धीति–पदार्थं व्याप्तिसिद्धये ॥ द्रव्यभावश्रुते ग्राह्ये, उचिताद्विग्रहद्वयात् ॥ १८ ॥

श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरित्यत्र श्रोत्रेन्द्रियेण श्रोत्रेन्द्रियस्य वा उपलब्धिः,इति तत्पुरुषेण भावश्रुतम्, श्रोत्रेन्द्रियादुपलब्धिर्यस्येति बहुव्रीह्याश्रयणेन च द्रव्यश्रुतं सङ्गृह्यते,एवमुपयुक्तस्य वदत उभयश्रुतमपि उभयविग्रहाश्रयणाद् ग्राह्यम् ॥१८॥

श्रोत्रेन्द्रियोलब्धिः श्रुतमित्यस्य सावधारणत्वाद्विपरीतावधारणमवबुध्यमानः शङ्कते—

श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिश्चेत्, श्रुतमेवावधार्यते ॥ तद्द्वारकं मतिज्ञान–मुच्छिद्येत तदा न किम् ? ॥ १९ ॥

यदि श्रुतमेव श्रोत्रोपलब्धिस्तदा तस्या मतिरूपत्वासम्भवात् श्रोत्रावग्रहाद्यभावेन मतेरष्टाविंशतिभेदाः समुच्छिद्येरन्, यदि च सा मतिस्तदैतदुक्त्यसङ्गतिः, उभयं चेत्सङ्करः। आह च–"सोओवलद्धि जइ सुअं,न णाम सोउग्गहादओ बुद्धी ॥ अह बुद्धी तो ण सुअं, अहोभयं सङ्करो णाम ॥११८॥ [श्रोत्रोपलब्धिर्यदि श्रुतं न नाम श्रोत्रावग्रहादयो बुद्धिः॥ अथ बुद्धिस्ततो न श्रुतं, अथोभयं संकरो नाम] ॥१९॥ अत्रोच्यते—

श्रोत्रोपलब्धिरेवात्र, श्रुतं न श्रुतमेव सा ॥ शब्दः सैवेत्यपव्याख्या, तद्भेदानधिकारतः ॥ २० ॥

अत्र हि गम्य एवकारो विशेषणेन सह योज्यते, तन्महिम्ना च 'चैत्रो धनुर्धरः', इत्यत्रेवायोगव्यवच्छेद एव प्रतीयत इति,

॥इन्द्रियाव-भागान्मति-श्रुतभेदाभि-धाने सा-क्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगा-थाया भा-ष्यानुसारि-विवरणम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रोत्रोपलब्धिरेव श्रुतमिति पर्यवसानेऽपि तस्या मतिरूपाया अपि सम्भवान्नोक्तदोषः ॥ आह च–"सोइन्दिओवलद्धी, चेव सुअं न उ तई सुअं चेव ॥ सोइन्दिओवलद्धी वि, काइ जम्हा मइन्नाणं॥१२२॥" [श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव, श्रुतं न तु सा श्रुतमेव ॥ श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि,काचिद्यस्मान्मतिज्ञानम्] केचित्तु 'श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरित्यत्र केवलबहुव्रीह्याश्रयणेन श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतमेव शब्द एव,स च ब्रुवतः श्रूयत इति श्रुतं, शृण्वतस्तु श्रोतुरवग्रहादिना मन्यत इति मतिरित्युभयमुपपन्नम्,उपपन्नाश्चाऽष्टाविंशतिरपि मतेर्भेदा' इत्याहुः, तत्र,धात्वर्थमात्रभेदेन शब्दस्य द्रव्यश्रुतमात्रत्वाप्रतिघाते द्वैविध्याभावात्, आह च–"केई बिन्तस्स सुअं, सद्दो सुणउ मइत्ति तं ण हवे ॥ जं सव्वोच्चिअ सद्दो, दव्वसुअं तस्स को भेओ ? ॥११९॥ "[केचिद्ब्रुवतः श्रुतं शब्दः शृण्वतो मतिरिति तद् न भवेत् ॥ यत्सर्व एव शब्दो, द्रव्यश्रुतं तस्य को भेदः ?] वस्तुतस्त्वेतदवधारणोक्तिर्न मतिश्रुतज्ञानयोर्भेदानिरूपणौपयिकी शब्दभेदनिरूपणं त्वनधिकृतमित्यर्थान्तरम्, यदि च श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिपदार्थः शब्दविज्ञानमेव कार्यतया चोपचाराच्छब्द एवेत्युच्यते तदापि वक्तृश्रोतृगतत्वेन तस्यातिशयाभिधानं श्रुत्वा ब्रुवतश्च सैव मतिः, तदेव च श्रुतमिति साङ्कर्यम्, पारम्पर्यश्रुतोच्छेदश्च स्यात्,आह च–"किं वा नाणेहिगए, सद्देणं जइ अ सद्दविन्नाणं ॥ गहिअंतो को भेओ,भणओ सुणओ च जो तस्स॥१२०॥" [किं वा ज्ञानेऽधिकृते ? शब्देन यदि च शब्दविज्ञानं ॥ गृहीतं ततः को भेदो, भणतः शृण्वतश्च यस्तस्य] " भणओ सुणओ व सुअं, तं जमिह सुआणुसारि विण्णाणं ॥ दोण्हं पि सुआईअं, जं विण्णाणं तयं बुद्धी ॥१२१॥ " [भणतः शृण्वतो वा श्रुतं, तद्यदिह श्रुतानुसारि विज्ञानं ॥ द्वयोरपि श्रुतातीतं, यद्विज्ञानं तद्बुद्धिः] किञ्च शब्दविज्ञप्तिः शब्द एवेत्युक्ते किं केन सङ्गतमिति श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेः शेषाक्षरलाभस्य च शब्दविज्ञानत्वप्रतिपादनेनैव फलतः श्रुतत्वप्रतिपादनमनाकाङ्क्षितमेव श्रोत्रेन्द्रियोपल-

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्धौ मतित्वविलक्षणश्रुतत्वसिद्धावेव शेषे मतिजिज्ञासाप्रवृत्तेः, अपि च श्रोत्रद्वारिकाप्युपलब्धिर्न शब्द एव, एककारणपरिशेषापातात् शब्दाजन्यत्वस्य निरभिलापत्वस्य वा व्यावृत्तिरेव श्रुतत्वव्यापिकाऽवधारणफलमेवेति चेत्,न, तथापि व्यापकधर्मपुरस्कारेण तद्धर्मवत्तानिश्चयस्याहत्य व्याप्यधर्मपुरस्कारेण तद्वत्तासंशयानिवर्तकत्वात्, अन्यथा इदं द्रव्यमेवेति निश्चये इयं पृथिवी न वेति संशयाभावप्रसङ्गात्, एवं च शेषेन्द्रियाक्षरलाभे मतित्वशङ्कापि न निवर्तेत तत्र तद्विलक्षणश्रुतत्वाप्रतिपादनात्स्वनियतशब्दजन्यत्वप्रतिपादने चोक्त एव दोषः, यत्तु श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिपदं साभिलापज्ञानपरम्, इति साभिलापज्ञानं श्रुतमेवेति तद्भिन्नं तु मतिरेवेत्यत्र तुशब्दस्यैवकारार्थकत्वोपपत्तिः, तन्नैतद्व्याख्यानस्येन्द्रियविभागानुपयोगित्वात्, न च तद्विभागलभ्याभिधानमेवेदम्, अर्थान्तरत्वात्, किञ्चैवं शेषेन्द्रियाक्षरलाभे मतित्वशङ्कानिवृत्तये 'अक्खरलम्भो अ सेसेसु' इत्यभिधानौचित्येऽपि शेषपदस्य यथावदर्थानुपपत्तेरित्यपव्याख्यानमेतत्, ॥२०॥ तुशब्दश्चात्र समुच्चयार्थक एवेति व्याचष्टे—

मतेरपि श्रोत्रधीत्वात्, तुशब्दोऽत्र समुच्चये ॥ नाऽवधारणवन्ध्यत्व-मेकत्रैवावधारणात् ॥ २१ ॥

श्रोत्रावग्रहादिरूपाया **मतेरपि** श्रोत्रोपलब्धिरूपत्वात्, तुशब्दोऽत्र समुच्चयार्थकः, तथा च श्रोत्रावग्रहादिकश्च श्रोत्रातिरिक्तेन्द्रियजन्यश्च ज्ञानं मतिः, इति पर्यवस्यति, न चात्रावधारणं सम्भवति सप्रयोजनं वा, एकत्रावधारणादेव विभागोपलम्भादेतादृशतुशब्दव्याख्यानादपि स मतिभेदभङ्गानापत्तिं समर्थयति ॥ आह च–"तुसमुच्चयवयणाओ व काई सोइंदिओवलद्धीवि ॥ मइरेवं सति सोउग्गाहादओ होन्ति मइभेआ ॥ ॥१२३॥" [तुसमुच्चयवचनाद्वा, काचिच्छ्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि ॥ मतिरेवं सति श्रोत्रावग्रहादयो भवन्ति मतिभेदाः] ॥ २१ ॥ ननु शेषं मतिज्ञानमित्युक्ते पत्रादिगतं अक्षरविन्यासरूपं मतिज्ञानं मा प्रसांक्षीदिति " मोत्तूणं

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दव्वसुअं" इत्युक्तं तत्र तस्य द्रव्यश्रुतत्वे किं मानं कथञ्च शेषेन्द्रियाक्षरलाभो न मतिरित्याशङ्कायामाह—

व्यञ्जनाक्षरवद् द्रव्य-श्रुतं लिप्यक्षरं मतम् ॥ भावश्रुतं वर्णलाभः, शेषं तु मतिरिष्यते ॥ २२ ॥

लिप्यक्षरं द्रव्यश्रुतं व्यञ्जनाक्षरवदित्यत्र भावश्रुतकारणत्वात्, इतिहेतुर्गम्यः ॥ यदाह–"पत्ताइगयं सुअकारणं ति, सद्दो व्व तेण दव्वसुअं ॥ भावसुयमक्खराणं, लाभो सेसं मइन्नाणं ॥१२४॥ [पत्रादिगतं श्रुतकारणमिति शब्द इव तेन द्रव्यश्रुतम् ॥ भावश्रुतमक्षराणां, लाभः शेषं मतिज्ञानम्] ननु द्रव्यश्रुतत्वमत्र साध्यम्, तच्च भावश्रुतकारणश्रुतत्वमेवेति हेतुसाध्ययोरभेद इति चेत्, न, द्रव्यश्रुतव्यवहारिविषयत्वस्यैव साध्यत्वाद्, हेतौ कारणपदस्य नियतान्वयव्यतिरेकप्रतियोगित्वपरत्वाद्वा, ननु भावश्रुतप्रयोजकत्वमात्रं, व्यभिचारि व्यञ्जनाक्षरसाधारणं, परम्परया च न लिप्यक्षरस्य शाब्दज्ञानानुकूलत्वं तादृशानुपूर्व्वीकलिप्यक्षरज्ञानाजन्यतादृशानुपूर्व्वीकव्यञ्जनाक्षरज्ञानोत्तरमेव पदार्थोपस्थित्या शाब्दबोधोदयाद्, न च व्यञ्जनाक्षरेणेव लिप्यक्षरेणाऽपि सममर्थस्य सम्बन्धग्रहात्ततोऽप्याहत्य तदुपस्थितिरिति वाच्यम्, अर्थाव्युत्पन्नानां ततः शब्दस्यैवोपस्थित्याऽन्यत्रापि तदुपस्थितिद्वारैव तस्यार्थोपस्थापकत्वात्, साधुत्वाद्यभावेन तस्य शाब्दवोधाहेतुत्वाच्चेति चेत्, न, व्यञ्जनाक्षरादिव लिप्यक्षरादपि पट्वाकलितसङ्केतानां झटित्येवार्थोपस्थितेः, साधुत्वस्य सर्वत्रातन्त्रत्वादर्थोपस्थितिकारणतत्कारणसाधारणप्रयोजकत्वस्यैव वा व्यवहारानुकूलत्वात्सम्प्रदायभङ्गस्य विपक्षबाधकतर्कत्वादित्याद्यूहनीयम्, लब्ध्यक्षरं तु श्रुतानुसारित्वात्, भावश्रुतं न मतिरिति शेषं मतिज्ञानमिति सुव्यवस्थितम् ॥ आह च–"भावसुअमक्खराणं लाभो सेसं मइन्नाणं ॥" [भावश्रुतमक्षराणां लाभः शेषं मतिज्ञानम् ॥] त्ति ॥२२॥ ननु यदि शेषाक्षरलाभोऽपि श्रुतं तर्हि श्रुतं श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेवेत्यवधारणं भग्नामित्यत आह–

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुतत्वं न जहात्येव, लब्धिरक्षरगर्भिणी ॥ श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः सा, यतो योग्यतया स्मृता ॥ २३ ॥

शेषेन्द्रियद्वारकज्ञानेऽपि प्रतिभासमानमक्षरं श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धियोग्यमिति श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव तत् । आह च–"जइ सुअमक्खरलाभो, न णाम सोओवलद्धिरेव सुअं ॥ सोओवलद्धिरेवक्खराइं सुइसम्भवाओ" त्ति ॥१२५॥ ॥ [यदि श्रुतमक्षरलाभो न नाम श्रोत्रोपलब्धिरेव श्रुतम् ॥ श्रोत्रोपलब्धिरेवाक्षराणि श्रुतिसंभवादिति]॥२३॥ नन्वेवं द्रव्यश्रुतस्योपलब्धिविषयस्य तथात्वसमर्थनेऽप्यक्षरोपलब्धेस्तथात्वमसमर्थितं न खलु सापि श्रोत्रग्रहणयोग्या, न चाभिलापस्य तथात्वे तदाकारपरिणतज्ञानस्यापि तथात्वम्, परिणामपरिणामिनोः सर्वथैकत्वाभावात्, एवं सति केवलबहुव्रीह्याश्रयणप्रसङ्गाच्च, इति चेत्, उच्यते–शेषाक्षरलाभोऽपि श्रुतानुसारितया सङ्केतग्रहमपेक्षमाणः साक्षात्परम्परया वा तदनुकूलां श्रोत्रजन्यां पदधियमुपजीवतीति श्रोत्रद्वारिकोपलब्धिरेव सा, न चेन्द्रियान्तरमपि तत्र द्वारमित्यवधारणानुपपत्तिः, श्रोत्राद्वारकत्वव्यावृत्तेरेव तत्फलत्वादस्मादेवावधारणादिन्द्रियविभागः सङ्गच्छते, अन्यथा द्वयोरपि मतिश्रुतयोः सर्वेन्द्रियापेक्षाया अविशेषादित्याशयेनाह–

अवधारणमाश्रित्ये–न्द्रियभेदोऽपि युज्यते ॥ उपेक्ष्यमेव व्याख्यान–मतो निरवधारणम् ॥ २४ ॥

तथाविधविरुद्धधर्माध्यासलक्षणभेदौपयिकाऽवधारणेनैव हि मतिश्रुतयोरिन्द्रियभेदो युज्यते, विनाऽवधारणं तदलाभात्, अथ श्रुतं श्रोत्रोपलब्धिरेवेति सावधारणव्याख्याने शेषाक्षरलाभासङ्ग्रहेणाऽनन्वयात् श्रोत्रोपलब्धिपदस्य तद्योग्यत्वार्थकतया 'अक्खरलंभोसेसेसु' इत्यभिधानानुपपत्तेः, न च तत्रोत्सर्गव्याप्तं मतित्वमपोदितुं तदभिधानं, प्रथमार्थानुपपत्तेः, न चाक्षरलाभे श्रुताभेदान्वयादेव तदपवादो, वाक्यभेदप्रसङ्गात्, न च द्वितीयार्थ एवेयं प्रथमा, अक्षरलाभपदस्य श्रुतानुसार्यक्षरलाभपरतया द्रव्यश्रुत इव तत्रापि

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुक्त्वेत्यन्वयसम्भवेऽप्यप्रामाणिकाविभक्तिव्यत्ययकल्पनानौचित्यात्, तस्मान्निरवधारणव्याख्यानमेव सम्यक् फलतोऽवधारणलाभाच्चेन्द्रियविभागोपपत्तिरिति चेत्, न, एकाऽवधारणलाभेऽन्यभजनाशङ्कया तदभिधानात्, अत एवोभयाव्यभिचारस्थलेऽपि नियमद्वयाभिधानं तत्र तत्रोपवीक्ष्यते॥२४॥ ननु यदि शेषाक्षरलाभः सर्वोऽपि श्रुतं तर्हि अवग्रहरूपैव मतिः स्यात्, इत्यत आह–

भावः श्रुताक्षराणां यः, स एव श्रुतमिष्यते । ईहादयो मतेर्भेदा, नोच्छिद्येरन् कुतोऽन्यथा ॥ २५ ॥

यदि सर्वोऽप्यक्षरलाभः श्रुतं तर्ह्यक्षरानुविद्धा ईहादयोऽपि श्रुतरूपा एव प्रसजेयुरित्यवग्रहैकमूर्तिरेव मतिः पर्यवस्येत्, तस्माच्छ्रुतानुसार्यक्षरलाभ एव श्रुतमिति ॥ आह च–"सोऽवि हु सुअक्खराणं, जो लाभो तं सुअं मई सेसा ॥ जइ वा अणक्खरचिअ, सा सव्वा ण प्पवत्तेज्जा॥१२६॥" [सोऽपि खलु श्रुताक्षराणां यो लाभस्तच्छ्रुतं मतिः शेषा॥ यदि वाऽनक्षरैव, सा सर्वा न प्रवर्तेत] इत्थं व्याख्याता 'सोइंदिओवलध्धीति' पूर्वगतगाथा॥२५॥ अथाग्रिमपूर्वगतगाथासम्बन्धाय "दव्वसुअं भावसुअं,उभयं वा किं कहं व होज्जत्ति॥ को वा भावसुअंसो, दव्वाइसुअं परिणमेज्ज ॥१२७॥" [द्रव्यश्रुतं भावश्रुतं, उभयं वा किं कथं वा भवेदिति॥ को वा भावश्रुतांशो द्रव्यादिश्रुतं परिणमेत] त्ति ॥ भाष्योक्तां सङ्गतिमनुवदति ।

द्रव्यभावश्रुते युग्मं, किं कथं वा भवेदिति ॥ कियान् भावश्रुतस्यांशो–द्रव्यादीत्यनुभाषते ॥ २६ ॥

द्रव्यश्रुतं भावश्रुतमुभयश्रुतं वा किं कथं च तद्भवेत्कियान्वा भावश्रुतस्य भागो द्रव्यश्रुतमुभयश्रुतं वेत्यनुभाषितुमिमां गाथामाह–पूर्वगतप्रणयनप्रवणः–"बुद्धिद्दिट्ठे अत्थे, जे भासइ तं सुअं मईसहिअं ॥ इयरत्थवि होज्ज सुअं, उवलद्धिसमं जइ भणेज्जा ॥१२८॥[बुद्धिदृष्टेऽर्थे यान्भाषते तत्श्रुतं मतिसहितम्॥ इतरत्रापि भवेत् श्रुतं, उपलब्धिसमं यदि भणेत्]॥२६॥ इमामेव व्याचष्टे–

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः "सोइंदिओवलद्धीति" पूर्वगतगाथाया विवरणसमाप्तिः भाष्योक्ताग्रिमपूर्वगतगाथासङ्गतिश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बुद्ध्या बुद्धिगतानर्थान्, वदतो ह्युभयश्रुतम् ॥ द्रव्यतोऽनुपयुक्तस्य, भावतो जानतः परम् ॥ २७ ॥

बुद्ध्या दृष्टानर्थान् मतिसहितान् यान् भाषते तद्द्रव्यभावलक्षणमुभयश्रुतम्, अत्र बुद्धिशब्दो मतिशब्दश्च श्रुततात्पर्यकः, निरूपणप्रयोजकविवक्षारूपज्ञानस्य प्रयोगसमकालीनोपयोगस्य च मतिरूपस्यासम्भवात्, उभयत्वं चाऽत्र प्रयोगोपयोगाभ्यां बोध्यम्, न तु विवक्षया, तया सहैकविशिष्टापरत्वरूपोभयत्वासम्भवात्, अनुपयुक्तस्यैव वदतो द्रव्यश्रुतम्, अथानुपयुक्तस्यैव प्रयोगो भवति नोपयुक्तस्य, प्रयोगकाल एव तदधीनार्थोपयोगस्यासम्भवात्, तथा च कथमयं विभाग इति चेत्, न, सोपयोगप्रयोगाभिधित्सया केवलप्रयोगाभिधित्सया च प्रयोगद्वैविध्यसम्भवाद्वर्णार्थादिषुच्छिन्नज्वालादृष्टान्तेनैव वोपयोग इति व्यक्तमध्यात्ममतपरीक्षायाम्, तदिदमाभिप्रेत्याह–"जे सुअबुद्धिदिट्ठे सुअमइसहिओ पभासई भावे॥ तं उभयसुअं भण्णइ, दव्वसुअं जेउ अणुवउत्तो॥१२९॥"[यान् श्रुतबुद्धिदृष्टान्,श्रुतमतिसहितः प्रभाषते भावान्॥तदुभयश्रुतं भण्यते, द्रव्यश्रुतं यांस्त्वनुपयुक्तः] अत्राभाषमाणस्यैव श्रुतबुद्ध्या पर्यालोचयतस्तु भावश्रुतमेवेति सामर्थ्यगम्यं, सामर्थ्यं च न तत् भावश्रुतमेवेति साध्ये द्रव्योभयश्रुताभिन्नत्वे सति श्रुतत्वम्, एवकारेण साध्यार्थस्यापि तादृशस्य पर्यवसाने हेतुसाध्याभेदप्रसङ्गात्, किन्तु प्रयोगाकालीनश्रुतत्वमेवेति बोध्यम् ॥ सूत्रे तु श्रुतपदस्योभयश्रुतपरतयाऽनुपयुक्तस्य वदतो द्रव्यश्रुतमेवेत्यपि सामर्थ्यगम्यमेव, एवञ्च द्रव्यश्रुतं भावश्रुतमुभयश्रुतं वा किं कथञ्च भवेदित्याकांक्षाः पूरिताः ॥२७॥ अथ द्रव्यश्रुतमुभयश्रुतं वा भावश्रुतस्य कियानंश इत्याकांक्षापूरणौपयिकमुत्तरार्धं व्याख्यायते तात्पर्यतः–

केवलश्रुतकालेऽपि, तदाऽऽत्मन्युभयश्रुतम् । भवेद्यद्युपलब्धार्थान्, सर्वान् वक्तुं क्षमेत सः ॥ २८ ॥

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने 'बुद्धिदिट्ठे अत्थे' इति पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिपूर्वार्धविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

" इयरत्थ वि होज्ज सुअं उवलद्धिसमं जइ भणिज्जा ॥१२८॥" इत्यस्यायमर्थः, इतरत्र भावश्रुते, भवेद्द्रव्यश्रुतमुभयश्रुतं वा, यद्युपलब्धिसमं भणेत् प्राकृतशैल्या सहस्य समभावनिपातनात्समशब्दस्य तुल्यार्थकत्वात्समकालार्थकत्वाद्वोपलब्ध्या सहोपलब्धितुल्यमुपलब्धिसमकालं वा भणेद्, अत्राद्यन्तयोः सहभावयौगपद्ययोः सामान्येन ग्रहणादीप्सितार्थसिद्धिः, तदिदमाह–" इयरत्थवि भावसुए, होज्ज तयं तस्समं जइ भणिज्जा ॥ ण य तरइ तत्तियं सो, जमणेगगुणं तयं तत्तो ॥१३०॥"[इतरत्रापि भावश्रुते, भवेत्तत्तत्समं यदि भणेत् ॥ न च तरति, तावत्सःयदनेकगुणं तत्ततः] " सह उवलध्धीए वा, उवलध्धिसमं तया व जं तुल्लं ॥ जं तस्समकालं वा, ण सव्वहा तरइ वोत्तुं जे ॥१३१॥"[सहोपलब्ध्या वोपलब्धिसमं तदा वा यत्तुल्यम् ॥ यत्तत्समकालं वा न सर्वथा तरति वक्तुम्] एवञ्च द्रव्यश्रुतादुभयश्रुताच्चानन्तगुणं भावश्रुतं प्राप्तमिति सम्प्रदायः ॥ व्यक्तीभविष्यति चेदमुपरिष्टात्, भावश्रुते द्रव्यश्रुतमप्रसक्तमिति सूत्रे श्रुतपदं प्रागुक्तश्रुतपदसमानार्थकमुभयश्रुतपरमेव, न चैवं तच्छब्देन तस्य परामर्शो युज्येत, सूत्रकृतांगतेर्विचित्रत्वात्, न चैकविशेषे विशेषान्तरमापादनार्हमिति, इतरत्रेत्यस्य केवलभावश्रुतोत्पत्तिकाल इत्यर्थः । एवञ्च तदा भावश्रुतसामग्रीसत्त्वेऽपि द्रव्यश्रुतसामग्र्यभावादुभयश्रुताभावो, न ह्युभयमतिरिक्तमस्ति, प्रत्येकातिरिक्तसमुदायाभावादित्येतत्तात्पर्यम् ॥२८॥ अथाऽत्र केषाञ्चिन्मतिश्रुतभेदोपयिकं पूर्वार्द्धव्याख्याकौशलमपहस्तयितुमुद्भावयति–

इन्द्रियविभामान्मतिश्रुतभेदाभिधाने उक्तपूर्वगतगाथोत्तरार्द्धस्य भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

मत्या सह तया दृष्टान्, ब्रुवतो ह्युभयश्रुतम् ॥ द्रव्यतोऽनुपयुक्तस्य, तदेकालोचनं मतिः ॥ २९ ॥

' बुद्धिदिट्ठे ' इत्यत्र बुद्धया मत्या दृष्टेष्वर्थेषु मध्ये अत्र ' वर्णेषु क्षत्रियः शूर ' इत्यत्रेव मध्यार्थे सप्तमी, एकवचनं बहु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वचनार्थकं जात्यभिप्रायकं वा, बुद्ध्या मत्या दृष्टान् यानर्थान् मतिसहितान् भाषत इति सम्मुखीनैव व्याख्या, तच्छ्रुतमुपयोगप्रयोगाभ्यामुभयश्रुतं भवति। ननु मतिसाहित्यं कथमर्थानां विशेषणमनन्वयादिति चेत्, अत्राहुः–मईसहियमित्यत्र मत्युपयोगे वर्त्तमानस्य वक्तुर्ग्रहणात्, तस्य मत्युपयोगसाहित्येनार्थानामपि तदुपचर्यत इति। अत एवाह–"केई बुद्धिद्दिट्ठे, मइसहिए भासओ सुअं ति॥"[केचिद् बुद्धिदृष्टान् मतिसहितान्माषमाणस्य श्रुतम् ॥] इदं च भाष्यानुरोधादुक्तम्, सूत्रे तु मइसहियमित्यत्र मतिसाहित्यस्य क्रियाविशेषणत्वलाभान्मत्युपयोगसहितम्, मतिदृष्टार्थभाषणं श्रुतमिति सम्मुखोऽर्थ एव युक्तो, नहि मतिसहिता भाष्यमाणा अर्थास्तत्, अपि तु तादृशः शब्द इति ॥ अत एवाह–तत्साहितं यथा भवत्येवं यान् भावान् भाषते इति अनुपक्तस्यैव वदतो द्रव्यश्रुतं, अभाषमाणस्य पदार्थमात्रपर्यालोचनं तु मतिः,इति मतिश्रुतयोर्भेद इति ॥२९॥ तदेतद्दूषयति—

केचिदाहुरिदं, तन्नो, युक्तं भावश्रुतव्ययात् ॥ नाधिक्यं नान्यथात्वं वा, भाषाव्यापारतो मतेः ॥ ३० ॥

तदिदं व्याख्यानमयुक्तं भावश्रुतोच्छेदप्रसङ्गात्, नहि प्रयुज्यमानः शब्दो मतिज्ञानं वा तद्, अत एव नोभयं प्रत्येकाभावे समुदायाभावाद्, आह च–"तत्थ ॥ किं सद्दो मइरुभयं, भावसुअं सव्वहाऽजुत्तं ॥१३२॥ [तत्र किं शब्दो मतिरुभयं, भावश्रुतं सर्वथाऽयुक्तम्] " सद्दो ता दव्वसुअं, मइराभिनि–बोहिअं न वा उभयं ॥ जुत्तं, उभयाभावे भावसुअं कत्थ तं किं वा ॥१३३॥ [शब्दस्तावद्द्रव्यश्रुतं मतिराभिनिबोधिकं नवा उभयं॥ युक्तं, उभयाभावे, भावश्रुतं कुत्र तत्किं वा] न च भाषापरिणतिकाले मतेराधिक्यमुपक्षयो वा जायते, न वा भाषारम्भ एवात्र विशेषस्तस्य तत्स्वरूपपरावृत्त्यसहत्वात्, अन्यथा धावनवल्गनादिक्रियानन्त्यान्मतेरानन्त्यप्रसङ्गात्, अथ द्रव्यश्रुतसामग्र्या एव भावश्रुतसामग्रीत्वान्मतिदृष्टार्थप्रयोगसमानकालीन उपयोगः श्रुतमेव

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने उक्तपूर्वगतगाथाव्याख्यानान्तरस्य खण्डनं भाष्यानुसारेण ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तस्य च मतिजन्यतया मतित्वं श्रुतत्वं चेत्युभयमप्यविरुद्धमिति चेत्, न,एवं सति श्रुतोहाद्यभिलापस्थलेऽवध्यादिमूलकाभिलापस्थले च तत्प्रसङ्गात्, तदिदमभिप्रेत्याह–"भासापरिणइकाले, मईए किमहियमहवन्नहत्तं वा–भासासंकप्पविसेसमेत्तओ वा सुअमजुत्तं ॥ १३४ ॥" [भाषापरिणतिकाले मतेः किमधिकमथवाऽन्यथात्वं वा ॥ भाषासंकल्पविशेषमात्रतो वा श्रुतमयुक्तम् ॥] ॥३०॥ ननु मतेः श्रुतहेतुत्वात् नावध्यादिस्थले तत्प्रसङ्गः, श्रुतानुसाराभावाच्च नाश्रुताभिलापस्थलेऽपीत्यत आह—

मत्या श्रुतानुसारस्या–श्रयणाज्जन्यते श्रुतम् ॥ इति चेच्छ्रुतसङ्कल्पः, श्रुतमेवावधार्यताम् ॥ ३१ ॥

श्रुतमनुसृत्य मतिज्ञानेन यदि श्रुतज्ञानं जन्यते तर्हि भाषासङ्कल्पोऽपि श्रुतानुसारितया श्रुतमेव स्यात्, न तु मतिरिति बुद्ध्या मतिज्ञानेनेति व्याख्यानमनुपपन्नम् ॥३१ ॥केषाञ्चिदेवोत्तरार्द्धव्याख्यानमधरयति—

इतरोत्पत्तिकाले च, श्रुतं स्यादिति दुर्वचम् ॥ भिन्नहेतुकतासिद्धेः, स्वस्वावरणभेदतः ॥ ३२ ॥

इतरत्र केवलमतिज्ञानोत्पत्तिकाले, तदा श्रुतं स्याद्यद्युपलब्धिसमं भणेदित्याद्यापादनानर्हं, तदा श्रुतज्ञानसामग्रीविरहनिश्चयेन तदनापत्तेः, भिन्नलक्षणावरणत्वेन द्वयोर्व्यवस्थितत्वात्, न च तदा श्रुतलब्धिसत्त्वात्तदापत्तिः, विशेषसामग्र्यभावेन तदभावात्सा च परोपदेशार्हद्वचनाद्यनुसाररूपा, अत एवाह–"इयरत्थवि मइनाणे, होज्ज सुअं ति किह तं सुअं होइ ॥ किह व सुअं होइ मई, सलक्खणावरणभेआओ ॥ १३५ ॥" [इतरत्रापि मतिज्ञाने भवेच्छ्रुतमिति कथं तच्छ्रुतं भवति ॥ कथं वा श्रुतं भवति मतिः, स्वलक्षणावरणभेदात् ॥] परव्याख्या बाधकत्व(बाधितार्थ)गोचरा भ्रान्तैव निसर्गात्,इति न किञ्चिदेतत्॥३२॥ श्रुतोपलब्धानां तु बहुत्वादेव कार्त्स्न्येन वक्तुमशक्यत्वं कौशलमादधानस्य मतिर्भावश्रुतं न स्यादेव द्रव्यश्रुतत्वं तु तत्र निगद्यमानं हृद्यमपीत्याशयेनाह–

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने उक्तपूर्वगाथोत्तरार्द्धव्याख्यानान्तरस्य भाष्यानुसारिखण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साम्प्रतं शब्दहेतुत्वा–न्मतिर्द्रव्यश्रुतं भवेत् ॥ शुद्धा तु सा तदा तत्स्याद्, यदि ज्ञप्तिसमं भणेत् ॥३३॥

मतिदृष्टानर्थान्मत्युपयोगेन भाषमाणस्य द्रव्यश्रुतरूपशब्दकारणतया मतिर्द्रव्यश्रुतत्वमास्कन्देदेव, प्रयोगानुकुला च मतिस्तु तथात्वमश्नुवीत, यदि नाम मतिमानुपलब्धिसमं भणितुं शक्नुयात्, आह च–"अहव मई दव्वसुअत्तमेउ, भावेण सा विरुज्झेज्जा॥ जो असुअक्खरलाभो, तं मइसहिओ पभासेज्जा ॥१३६॥" [अथवा मतिर्द्रव्यश्रुतत्वमेतु, भावेन सा विरुध्येत ॥ योऽश्रुताक्षरलाभस्तं मतिसहितः प्रभाषेत॥] "इयरम्मि वि मइनाणे, होज्ज तयं तस्समं जइ भणेज्जा ॥ ण य तरइ तत्तियं सो, जमणेगगुणं तयं तत्तो ॥ ॥ १३७ ॥" [इतरस्मिन्नपि मतिज्ञाने, भवेत्तत्समं यदि भणेत् ॥ न च तरति तावत्स यदनेकगुणं तत्ततः ॥] ननु शुद्धापि मतिः शब्दकारणत्वात्कुतो न द्रव्यश्रुतं, नहि कार्यमजनयतोऽपि कारणस्याकारणत्वं नाम, अरण्यस्थदण्डादेर्घटाहेतुत्वप्रसङ्गात्, किञ्चैतद्व्याख्यानस्याविरोधाभिधानसावधानत्वेन मतिद्रव्यश्रुतयोर्भेदनिरूपणोपयिकत्वेऽपि मतिश्रुतयोस्तन्निरूपणानौपयिकत्वमिति चेत्, न, सहकारियोग्यताया एव द्रव्यघटकत्वात्, उक्तातिदेशेन श्रुतेऽपि तद्भेदलाभेन प्रयोगभेदेन मतिश्रुतयोरपि भेदलाभाच्च [चानुना विप्रयोगेऽप्यात्मानमलभमानाः शब्दाः पार्वतिच्छायं]॥ [अत्राशुध्धमवभासते]। ननूपलब्धितुल्यं भाणितुमशक्यमित्यत्र को हेतुरित्यत आह—

अस्वाभाव्याद् बहुत्वाच्च, न सर्वत्र गिरां गतिः ॥ अपि प्रज्ञापनीयाना–मनन्तोंऽशो न्यबन्धि यत् ॥३४॥

मत्याद्युपलब्धार्थानामनभिलाप्यत्वस्वभावादेव वक्तुमशक्यत्वं, यद्यपि कतिपयास्तैरप्यभिलाप्या एव तथापि श्रुताविषयत्वेन तेषामनभिलाप्यत्वं बोध्यं, भाष्ये शेषोपलब्धिपदं वा श्रुतोपलब्ध्ययोग्यत्वपरम्, यत्तु कश्चिदाह न सन्त्येवानभिलाप्या भावा

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने उक्तपूर्वगतोत्तरार्धव्याख्यानविशेषस्यभाष्यानुसारिहृद्यतोषदर्शनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभिधेयत्वस्य केवलान्वयित्वात्, इति, तत्तुच्छं, सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यत्राभिधाविषयत्वस्य साध्यत्वे सिद्धसाधनादनभिलाप्यानामप्यनभिलाप्यपदाभिधेयत्वात्, तत्तत्पदबोध्यत्वप्रकारित्वावच्छिन्नेच्छाविषयत्वस्य साध्यत्वे क्वचिदेकस्येव सर्वस्यापि सङ्केतग्रहासम्भवेन विपक्षबाधकतर्कविरहेणाप्रयोजकत्वात्, न च विपक्षस्याऽभिधानानभिधानाभ्यां व्याघात एव तद्बाधकस्तर्कः, अनभिधानेऽपि वस्तुस्वरूपाप्रच्युतेः, अथ न सङ्केतमात्रमभिधा, आधुनिकसङ्केतितेष्वपि तत्प्रसङ्गात्, सर्गादौ वाऽस्मदादिसङ्केतानुत्थानाच्च, किन्त्वीश्वरेच्छैव सा, तस्याश्च नित्यतया न कारणविरहप्रयुक्तो विरह इति तद्विषयत्वमेव सार्वत्रिकमनुमेयमिति चेत्, न, शाब्दबोधानुकूलसङ्केतमात्रस्यार्थोपस्थापकत्वात्सर्गादेरसिद्धेरीश्वरस्याप्यसिद्धेस्तज्ज्ञानविषयत्वस्येव तदिच्छाविषयत्वस्य साध्यत्वेऽप्युद्देश्यासिद्धेस्तदिच्छाविशेषविषयत्वस्य साध्यत्वेऽप्रयोजकत्वाद्, अर्थानां बाहुल्येन शब्दानां चाल्पत्वेन सर्वत्र तदप्रसरात्, न हि तत्तत्क्षणेष्वेवानन्तेषु विशेषपदप्रयोगः सम्भवी, किमङ्ग शेषेषु भावेषु, न चोलब्धेष्वपि बहुत्वं हेतूभवितुमुत्सहते, तथापि फलाभावे स्वरूपायोग्यत्वमेव हेतुरिति तत्रास्वाभाव्यमेव हेतुरुक्तः, उपायस्योपायान्तरादूषकत्वाद्वा, तदिदमाह—"कह मइसुओवलद्धा, तीरंति न भासिउं बहुत्ताओ ॥ सव्वेण जीविएण वि, भासइ जमणंतभागं सो ॥१३८॥" [कथं मतिश्रुतोपलब्धास्तीर्यन्ते न भाषितुं बहुत्वात् ॥ सर्वेण जीवितेनापि, भाषते यदनन्तभागं सः॥] "तीरंति ण वोत्तुं जे, सुओबलद्धा बहुत्तभावाओ ॥ सेसोवलद्धभावा साभव्वबहुत्तओभिहिआ ॥१३९॥" [तीर्यन्ते न वक्तुं, श्रुतोपलब्धा बहुत्वभावात् ॥ शेषोपलब्धभावाः स्वाभाव्यबहुत्वतोऽभिहिताः]ननु मतिश्रुतोपलब्धार्थानां कथमीदृशं बहुत्वं यदनन्तभाग एव कृत्स्नेनायुषा भाष्यत इति चेत्, उच्यते, तदनन्तभागनिबन्धस्यैव सूत्रोक्तत्वात्, आह च-" कत्तो एत्तियमेत्ता, भावसुअमईण पज्जया जेसिं ॥

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने सर्वार्थानां वक्तुमयोग्यत्वं भाष्यानुसारिचर्चितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भासइ अणंतभागं, मण्णइ जम्हा सुए भणियं॥१४०॥"[कुत एतावन्मात्रा भावश्रुतमत्योः पर्याया येषाम् ॥ भाषतेऽनन्तभागं भण्यते यस्माच्छ्रुतेऽभिहितम्] "पणवणिज्जाभावा, अणंतभागो उ "अणभिलप्पाणं ॥ पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुअनिबद्धो" ॥१४१॥ [प्रज्ञापनीया भावा अनन्तभागस्त्वनभिलाप्यानाम् ॥ प्रज्ञापनयिानां, पुनरनन्तभागःश्रुतनिबद्धः ॥] एवं च भागकारेण गुणकारानुमानादनन्तगुणत्वं तेषां सिद्धमिति भावः ॥३४॥ उक्तमेवोपपादयितुमाह–

अत एव च पूर्वज्ञा, नूनं षट्स्थानगामिनः॥ समाक्षरा अप्यसमाः, श्रुताभ्यन्तरया धिया ॥ ३५ ॥

यतोऽभिलाप्यभावानामनन्तभाग एव सूत्रे निबद्धोऽत एव पूर्वज्ञानां॥ "अणंतभागहीणे वा, "असंखिज्जभागहीणे वा, संखिज्जभागहीणे वा, संखेज्जगुणहीणे वा, असंखेज्जगुणहीणे वा, अणंतगुणहीणे वा" इति सूत्रोक्तं हीनत्वघटितं, "अणंतभागब्भहिए वा, असंखेज्जभागब्भहिए वा, संखेज्जभागब्भहिए वा, संखेज्जगुणब्भहिए वा, असंखेज्जगुणब्भहिए वा, अणंतगुणब्भहिए वा" इति सूत्रोक्तं चाधिक्यघटितं षट्स्थानगामित्वं सङ्गच्छते। सर्वश्रुतार्थनिबन्धे च सर्वेषां साम्यापत्तिः॥ ननु हीनाधिकभावः कथं सर्वेषां चतुर्दशपूर्वविच्चे । उच्यते, तावदक्षरलाभाविशेषेऽपि तदभ्यन्तरमतिवैषम्यात्, नन्वेवमपि श्रुतापेक्षया न षट्स्थानोपनिपातोऽपि तु मत्यपेक्षयेति चेत्, न, श्रुताभ्यन्तरमतेरपि श्रुतानुसारितया श्रुतस्वरूपत्वात् ॥**तदिदमाह**–"जं चोद्दसपुव्वधरा, छट्ठाणगया परोप्परं होंति ॥ तेण उ अणंतभागो, पन्नवणिज्जाण जं सुत्तं ॥ १४२ ॥" [यच्चतुर्दशपूर्वधराः षट्स्थानगताः परस्परं भवन्ति । तेन त्वनन्तभागः, प्रज्ञापनीयानां यत्सूत्रं ॥] " अक्खरलंभेण समा ऊणहिआ हुंति मइविसेसेहिं ॥ ते उण(विय)मईविसेसे, सुअनाणब्भंतरे जाण ॥ १४३ ॥" [अक्षरलाभेन समा ऊनाधिका भवन्ति मतिविशेषैः ॥ तानपि च मतिविशेषान्, श्रुतज्ञानाभ्यन्तरे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जानीहि ॥] " जे अक्खराणुसारेण, मईविसेसा तयं सुअं सव्वं ॥ जे उण सुअणिरवेक्खा, सुद्धं चिय तं मइन्नाणं ॥१४४॥ " [येऽक्षरानुसारेण, मतिविशेषास्तच्छ्रुतं सर्वम् ॥ ये पुनः श्रुतनिरपेक्षाः, शुद्धमेव तन्मातिज्ञानम् ॥] अत्र ' सुअनाणं चेव जाणाहि ॥' [श्रुतज्ञानमेव जानीहि] इति पाठमुपेक्ष्य 'सुअनाणब्भंतरे जाण' [श्रुतज्ञानाभ्यन्तरे जानीहि] इति पाठकरणं चैवयोर्वैयर्थ्याच्छन्दोभङ्गभयादङ्गाभ्यन्तरादिपदवदभेदार्थकस्याभ्यन्तरपदस्यातिसान्निध्यव्यञ्जकत्वाच्छ्रुतपदस्य चतुर्दशपूर्वश्रुतार्थकत्वेऽभ्यन्तरपदस्य तज्जातीयत्वबोधकत्वाद्वेत्याहुः ॥ ३५ ॥ ननु पदजन्यं ज्ञानमेव श्रुतं, तदुपजीविज्ञानान्तरं तु मतिरेव, नहि तदुपजीवित्वेन तत्त्वं नाम, प्रत्यक्षोपजीवित्वेनानुमानस्यापि प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्, इति चेत्, उच्यते—

श्रुतानुसारिणी बुद्धि-र्मतिरेव यदीष्यते ॥ तदा षट्स्थानता भज्येत्, स्वस्थाने वा मिथस्तयोः ॥ ३६ ॥

यदि पदजन्यो बोध एव श्रुतं तदनुसारिविशेषभानं तु मनसोपनीयमानं मतिरेव, तर्हि श्रुतस्यापि मननलक्षणेन मतित्वात्तदुच्छेदप्रसङ्गे कथं मतिश्रुतयोः षट्स्थानानिवेशव्यवस्था,अस्तु वा तत् श्रुतं तथापि तस्य प्रयोगाधीनत्वात्प्रयोगस्य सङ्ख्येयवर्षायुषां सङ्ख्येयविषयस्यैव सम्भवात् स्वस्थाने सङ्ख्येयेनैव न्यूनाधिकभावव्यवस्था स्यान्मतिज्ञानस्य च सर्वदा प्रयुज्यमानानन्तगुणविषयत्वान्मतिश्रुतयोर्मिथोऽनन्ततैव सा स्यादिति श्रुतस्य स्वस्थाने मतिश्रुतयोश्च मिथः षट्स्थानोपनिपातोच्छेदः ॥ आह च–"केइ अभासिज्जंता, सुअमणुसरओ वि जे मइविसेसा ॥ मण्णंति ते मइ च्चिय, भावसुआभावओ तन्नो ॥१४५॥ किह मइसुअनाणविऊ, छट्ठाणगया परोप्परं होज्जा ॥ भासिज्जंतं मोत्तुं, जइ सव्वं सेसयं बुद्धी ॥ १४६ ॥ " [केचिदभाष्यमाणाः श्रुतमनुसरतोपि ये मतिविशेषाः ॥ मन्यन्ते तान्मतिरेव भावश्रुताभावतस्तन्नो ॥ कथं मतिश्रुतज्ञानाविदः षट्स्थानगताः परस्परं

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भवेयुः ॥ भाष्यमाणं मुक्त्वा यदि सर्वं शेषकं बुद्धिः ॥] एवं च श्रुतादवगतमिदमिति प्रत्ययाऽविशेषाच्छाब्दबोधस्येव तदनुसारिणोऽपि श्रुतत्वं निर्बाधं तस्य स्मृतित्वानुमितित्वादिना सहभावाविरोधात्, न चैवमनुमानस्यापीन्द्रियापेक्षया ऐन्द्रियकत्वं स्याद्, इष्टत्वात्, केवलं श्रुतानुसारिणि श्रुतस्येव तत्रेन्द्रियाणां नातिशयेनापेक्षेति तत्त्वम् ॥ ३६ ॥ तदेवं श्रुतस्वरूपाभिधानप्रकारेण बुद्धिद्दिट्ठे इत्यादिगाथा व्याख्याता, अथ भाष्यकारोक्तया दिशा मतिश्रुतभेदोन्नयनानुकूलतयेयमेव व्याख्यायते-

बुद्ध्या सामान्यया दृष्टान्, भाषते सम्भवेन यान् ॥ श्रुतोपयुक्तस्ते तस्य, श्रुतमन्या मतिः स्मृता ॥ ३७ ॥

'बुद्धिद्दिट्ठे' इत्यत्र बुद्धिशब्दो मतिश्रुतसामान्यबुद्ध्यर्थको, 'मतिसहितमित्यत्र' मतिशब्दश्च श्रुततात्पर्यकः, भाषत इत्यत्र योग्यत्वमाख्यातार्थस्तच्च तद्धेतुविकल्पाश्रयत्वं श्रुतपदश्च भावश्रुतार्थकमिति श्रुतोपयुक्तः सन् बुद्धिदृष्टयदर्थभाषणानुकूलविकल्पवान् यस्तस्य तेऽर्था विषयविषयिणोरभेदोपचाराद् भावश्रुतं भवन्तीति पर्यवसितोऽर्थः ॥ इयं ह्यनभिलाप्यविषयिणी श्रुतमननुसृत्यैवाभिलाप्यविषयिणी चेति सामान्यबुद्धिदृष्टत्वं चार्थानां श्रुतदृष्टानामपि मतिदृष्टत्वनियमात्सम्भवति। एवञ्च श्रुतोपयुक्तस्यैव विकल्पयतो भावश्रुतं, तदनुपयुक्तस्यैव तु मतिरिति तयोर्भेदात्तथात्वम् ॥ आह च-"सामन्ना वा बुद्धी, मइसुअनाणाइं तीइ जे दिट्ठा ॥ भासइ सम्भवमेत्तं, गहिअं न उ भासणाभित्तं ॥ १४७ ॥ मइसहिअं भावसुअं, तं नियमभासओ वि मइरन्ना ॥ मइसहियंति जमुत्तं, सुओवउत्तस्स भावसुअं ॥ १४८ ॥" [सामान्या वा बुद्धिर्मतिश्रुतज्ञाने तया ये दृष्टाः ॥ भाषते सम्भवमात्रं गृहीतं न तु भाषणामात्रम् ॥ मतिसहितं भावश्रुतं तन्नियतमभाषमाणस्यापि मतिरन्या ॥ मतिसहितमिति यदुक्तं श्रुतोपयुक्तस्य भावश्रुतम् ॥] 'सहितमित्यस्य' क्रियाविशेषणत्वे तु भाषणयोग्यत्वस्य धात्वर्थत्वाद्यद्विषयकश्रुतोपयोगस-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हितभाषणयोग्यतावान् यस्तस्य ते भावश्रुतमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ अवधारणविधिमुपदर्श्य फलितमुपदर्शयति—

श्रुतमेव न ते किन्तु, श्रुतं भाषत एव यान् ॥ परिणामो ध्वनेरेव, श्रुतं तद्‌भजना मतेः ॥ ३८ ॥

यान् सम्भवतो भाषत एव तच्छ्रुतमित्यवधारणं युक्तम्, न तु ते श्रुतमेवेति अभिलाप्यगोचरया मत्यापि तदवगाहनात्, न च श्रुतोपयोगेन भाष्यमाणाः श्रुतमेवेति कुतो न वक्तुं युक्तं, तेषामेव कदाचिन्मत्यापि भाषणसम्भवात्, एवं च श्रुतं ध्वनि-परिणाम एव श्रुतोपनीतशब्दगोचरस्यास्यां तर्जल्पविकल्पत्वनियमान्मतिज्ञानं त्वभिलाप्यानभिलाप्यविषयकमिति तत्र तद्-भजनेत्यनेन वैधर्म्येणानयोर्भेदः ॥ आह च–" जे भासइ चेव तयं, सुअं तु नउ भासओ सुअं चेव ॥ केइ मईए वि दिट्ठा, जं दव्वसुअत्तमुवयन्ति ॥ १४९ ॥ एवं धणिपरिणामं, सुअनाणं उभयहा मइन्नाणं ॥ जं भिन्नसहावाइ, ताइं तो भिण्णरूवाइं ॥ १५० ॥ " [यान् भाषत एव तत्, श्रुतं तु न तु भाषमाणस्य श्रुतमेव ॥ केचिन्मत्यापि दृष्टा यद्द्रव्यश्रुतत्वमुपयान्ति ॥ एवं ध्वनिपरिणामं, श्रुतज्ञानमुभयथा मतिज्ञानम् ॥ यद्भिन्नस्वभावे ते ततो भिन्नरूपे ॥] ॥ ३८ ॥ इयरत्थवीत्यादि व्याचष्टे—

इतरत्रापि शब्दस्य, परिणामाद् भवेच्छ्रुतम् ॥ मत्या श्रुतोपलब्ध्या वा, यदि नाम समं भणेत् ॥ ३९ ॥

इतरत्र मतिज्ञाने शब्दपरिणामरूपश्रुतधर्मदर्शनाच्छ्रुतत्वं तदा कल्प्येत यदि तत्र यावन्त उपलब्धिविषया अर्थास्तावन्तो भणन-योग्या भवेयुः, न च भणनयोग्याभणनयोग्योभयाविषयत्वान्मतेर्मतिश्रुतोभयरूपत्वमस्त्विति वाच्यं, भणनयोग्यानामप्यर्थानां मतिज्ञानेन श्रुतोपलब्ध्येव श्रुतानुसारेणाभाषणात्, तदिदमाह–"इयरं ति मइन्नाणं, तओ वि जइ होइ सद्दपरिणामो ॥ तो तम्मि वि किं न सुअं, भासइ जं नोवलद्धिसमं ॥१५१॥" [इतरदिति मतिज्ञानं ततोऽपि यदि भवति शब्दपरिणामः ॥ ततस्तस्मिन्नपि किं न श्रुतं

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योध्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाषते यद् नोपलब्धिसमं] "अभिलप्पाणाभिलप्पा, उवलद्धा तस्समं च नो भणइ ॥ तो होउ उभयरूवं, उभयसहावंति काऊणं ॥ १५२ ॥ " [अभिलाप्यानभिलाप्या, उपलब्धास्तत्समं च नो भणति॥ ततो भवतूभयरूपं, उभयस्वभावमिति कृत्वा ॥] "जं भासइ तं पि जओ, ण सुआदेसेण किं तु समईए ॥ ण सुओवलाद्धितुल्लंति, वा जओ णोवलाद्धिसमं ॥ १५३ ॥" [यद्भाषते तदपि यतो न श्रुतादेशेन किन्तु स्वमत्या ॥ न श्रुतोपलब्धितुल्यमिति वा यतो नोपलब्धिसमं ॥]॥३९॥ मतिज्ञाने न शब्दपरिणामरूपश्रुतसाधर्म्येण श्रुताशङ्कयेतरत्रेत्याद्यभिधानं श्रुतत्वाभावव्याप्य श्रुतोपयोगासाहित्यनिर्णये तदनुत्थानात्, किन्तु शब्दपरिणामरूपसाधारणधर्मदर्शनात्तदाशङ्कयेत्यतोऽपरथा व्याचष्टे–

तदा श्रुतोपयोगः स्या–च्छ्रुतविज्ञप्तिहेतुभिः ॥ प्रयोगः स्याद् यदा(द्य) यं तु, नाक्षराद्य(रस्या)नुसारतः॥ ४० ॥

सम्भवेन फलतो वा प्रयोगकाले मतिज्ञानस्य श्रुतोपयोगस्तदा स्याद् यदि श्रुतधीहेतुसन्निधानं स्यात्, तदेव चात्र नास्ति, अभिलाप्येऽनभिलाप्ये वा मतिविषयेऽक्षरानुसाररूपसहकारिविरहात्, नहि सह कारिसान्निधानानुद्बुद्धश्रुतलब्ध्या श्रुतोपयोगः स्यादिति तद्विरहेणैव तत्र तदनापत्तिरिति भावः, एवञ्च इयरत्थत्रीत्यादौ श्रुतपदं श्रुतोपयोगपरं, उपलब्धिसममिति च श्रुतोपलब्धिसमहेतुकमित्यर्थकं क्रियाविशेषणं, भणेदित्यत्र मतिज्ञानोपयुक्त इतिशेषः॥४०॥नन्वत्र भाष्यकारव्याख्याने श्रुतोपयुक्तस्य भाषासम्भवः श्रुतमित्येतावदेवास्तु,विषयग्रहणं पुनरनातिप्रयोजनमितिचेत्,न, वि षयभेदेन तद्भेदोपदर्शनार्थं तद्ग्रहणादित्याशयेनाह–

भेदो विषयभेदेन, हेतुभेदोपजीवि वा ॥ नूनं मतिश्रुते भेत्तुं, दर्शितो व्याख्ययाऽनया ॥ ४१ ॥

स्पष्टः ॥ ४१ ॥ अथ विषयताभेदात्तद्भेदप्रतिपादनार्थमियमपरथा व्याख्यायते—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुतमेव श्रुतं ज्ञेयं, भाषासम्भवशालि वा ॥ इतरत्र तदापत्ति-र्भिन्नाऽनुभववद्गिरा ॥ ४२ ॥

श्रुतोपयुक्तः सन् श्रुतसहितं यथा स्यात्तथा श्रुतसाहितान् वा बुद्धिदृष्टान् यानर्थान् सम्भवतो भाषतेऽन्तर्जल्पाविकल्पे ज्ञेयाकारतया परिणामयति तथापरिणामापन्नास्ते तस्य श्रुतमेव, नहि श्रुतविषयता न श्रुतमिति, नन्वेवमभिलाप्यविषयकं मतिज्ञानमपि श्रुतज्ञानसमानाकारमिति तत्रापि कथं न श्रुतत्वं, उच्यते, मतिश्रुतयोः स्फुटमेव विषयतावैलक्षण्यानुभवेन समानाकारताया एवासिद्धेः, न च विषयाभेदे कथं विषयताभेद इति वाच्यम्, ज्ञानस्वरूपाया विषयतायास्तदभेदेऽपि ज्ञानसामग्रीभेदेन भेदात्, अनुभवेन न तद्भेदोऽनुभूयत इति चेत्, न, कालविशेषाद्यवभासभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, तथा चात्र बुद्धिपदं बुद्धिसामान्यार्थकं, श्रुतपदं च श्रुतोपयोगार्थकं, भाषत इति च भाषणयोग्यतावानित्यर्थकं, अध्याह्रियमाण एवकारश्च श्रुतमित्यनन्तरं योज्यः। तत्पदञ्च नार्थमात्रपरामर्शकं ते श्रुतमेवेत्यस्य बाधात्, किन्तु भाषासङ्कल्पविषयत्वविशिष्टार्थपरामर्शकं, इतरत्रेति च मतिज्ञानकाल इत्यर्थकं, श्रुतपदं च भावश्रुतार्थकं, उपलब्धिसमामिति च समानानुव्यवसायत्वार्थकं साम्यं च सावधिकमिति सन्निधिसिद्धतया मतिज्ञानमेवावधित्वेनोपतिष्ठते, भणेदित्युत्तरं च श्रुतमित्यनुषज्यत इति मतिज्ञानकाले श्रुतज्ञानं भवेद्, यदि मतिज्ञानसमानानुव्यवसायकं श्रुतं कश्चिदपि भणेदित्युत्तरार्द्धार्थः, एवं च विषयतावैलक्षण्येन कारणभेदानुमानात्तत्र कारणाभावनिश्चयेन कार्योत्पत्तिशंकोच्छेद इतिभावः, अथवा श्रुतमिति भावप्रधाननिर्देशाश्रयणादितरत्र मतिज्ञाने श्रुतत्वं तदा स्यादित्याद्यर्थो बोध्यः ॥४२॥

इन्द्रियविभागान्मतिश्रुतभेदाभिधाने साक्ष्योद्धृतायाः पूर्वगतगाथाया भाष्यानुसारिविवरणम् ॥

हेतुविषयभेदोन्नयनानुकूलेन प्रकारान्तरेण व्याचष्टे—

अथवा बुद्धिदृष्टेऽर्थे, श्रुतं मत्यै(सत्ये)व भासते ॥ इतरत्राप्ययं न्यायो, द्वयोः साम्ये परं भवेत् ॥ ४३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'बुद्धिदिट्ठे अत्थे' इति सप्तम्येकवचनान्तं विशेषणविशेष्यपदद्वयं,जे इति पादपूरणार्थो निपातः, भासइ भासते, तत्पदं प्रसिद्धार्थकं प्रक्रान्तार्थकं वा, श्रुतपदं भावश्रुतार्थकं, 'मइसहियं' इत्यत्र मतिः सहिता कारणत्वेन यस्य तदिति विग्रहः, पौर्वापर्यभावे मत्या सहितमित्येव वा, एवञ्च बुद्धिदृष्टेऽर्थे सति तच्छ्रुतं मतिहेतुकमेव भासत इति समुदायार्थः ॥ न चात्र बुद्धिदृष्टेऽर्थे सतीत्यभिधानमनतिप्रयोजनं, अस्य मतिसाहित्योपपादनार्थत्वाद् बुद्धिशब्दस्यात्र मत्यर्थकस्य ग्रहणात् श्रुतविषयोपदर्शिकां मतिं श्रुतमवश्यमपेक्षत इत्यनेन समर्थ्यते, अथवा सप्तमी 'तत्र निष्पुल(ष्य)को हत' इत्यत्रेवाऽत्र सप्तम्या निमित्तत्वाद्विशिष्टे निमित्तत्वस्य विशेष्यबाधे विशेषणमात्रपर्यवसायित्वात्तच्छब्दसापेक्षत्वेन यदित्यध्याहाराद् बुद्धिदृष्टार्थदर्शननिमित्तं यदिति श्रुतस्वरूपमनूद्य तत्र मतिसाहित्यनियमविधानमभिधानीयं, ये इति यदित्यर्थकमित्यपि कश्चित्, अन्यत्रापि मतिज्ञानेऽपि भवेत् श्रुतपूर्वकत्वनियम इत्यर्थाद् गम्यते यदि श्रुतज्ञानं उपलब्धिसमं मतिज्ञानतुल्यं भणेत्, तच्च न भणितं तयोः परस्परं षट्स्थानोपनिपातोपदेशात्, एवञ्चानभिलाप्यविषयकमतिज्ञाने कथञ्चिदपि श्रुतापेक्षाया अभावाद् व्यभिचारेण न तस्य तद्धेतुकत्वमिति भावः ॥ ४३ ॥

उभयश्रुतमतिभेदपरतया व्याचष्टे—

ज्ञात्वा वा श्रुतदृष्टार्थान्, ब्रुवतो ह्युभयश्रुतम् ॥ भवेन्मत्युपयुक्तस्य, श्रुतं यदि समं भणेत् ॥ ४४ ॥

बुद्ध्या श्रुतबुद्ध्या, दृष्टान् यानर्थान् मतिसहितं श्रुतोपयोगेन, भाषते तत् श्रुतं उभयश्रुतमेव,इतरत्र मत्युपयोगकाले, भवेत् श्रुतपदानुषङ्गात् उभयश्रुतं, यद्युपलब्धिसमं मतिसमानाकारश्रुतं श्रुतानुसारं, भणेत्कोऽपि कथयेत्, श्रुतं भणेदनुसरेदिति वा, एवं चोभयभेदे सिद्धे प्रत्येकभेदः सुसाधः, उभयभेदकसामग्रीभेदस्यैव प्रत्येकभेदकत्वात्, अथवा मति-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साहितामित्यस्य श्रुतानुसारेणेत्यर्थकत्वादग्रे एवकारयोजनाच्च श्रुतानुसारेणैव भाषमाणस्योभयश्रुतमित्यर्थः, इत्थं चाग्रे इतरत्र मतिज्ञाने भवेच्छ्रुतानुसारो यदि स्वोत्प्रेक्षामात्रमतितुल्यं श्रुतं भणेत्तदभणनाच्च न तदनुसारः, तं विना च न त्वदेकजीवितमुभयश्रुतमिति भावः ॥ ४४ ॥ प्रकारान्तरेण व्याचष्टे—

श्रुतं मत्युपलब्धार्थं, मतिसङ्गतमेव तत् ॥ तादृशं स्यात् तदान्यत्तु, श्रुतं यदि समं भणेत् ॥ ४५ ॥

बुद्ध्या मतिलक्षणया, दृष्टा विवक्षिता, येऽर्थास्तान् भाषमाणस्य, मतिसहितमेव द्रव्यश्रुतं भवेत्, इतरत्र श्रुतविवक्षितप्रयोगस्थले च मतिसङ्गतं श्रुतं तदा स्यात् यदि श्रुतं मतितुल्यं कथयेत्प्रेक्षावान्, तच्च न कथ्यते श्रुतानुसारानुसाराभ्यां तद्विशेषप्रतिपादनात्, अथ चेतरत्र तत्तदा स्याद् यदि श्रुतं मतिसमकालं भणेत्कश्चित्तदेव च भणितुमशक्यं उपयोगयौगपद्यानिषेधात्, एवञ्च श्रुतोपयोगकाले मत्युपयोगाभावादेव न मतिसाहितश्रुतमित्यर्थः, अथवेतरत्र मतिसङ्गतं श्रुतं तदा स्याद् यदि मत्या सह श्रुतं भणेन्मत्युपयोगेन शब्दमुच्चरेदित्यर्थः ॥ ४५ ॥ तदेवं सप्रसङ्गं पूर्वगतगाथाद्वयव्याख्यानेन समर्थित इन्द्रियभेदान्मतिश्रुतयोर्भेदः, अथ वल्कसुम्बोदाहरणात्तमभिधित्सुः प्रथमं परेषां तदुदाहरणोपन्यासविधिं निराकुरुते—

केचिदाहुर्वल्कसमां, मतिं, सुम्बसमं श्रुतं ॥ तदयुक्तं तथाऽभेदे, श्रुतोच्छेदादिदूषणात् ॥ ४६ ॥

केचिद् वदन्ति वल्कसदृशी मतिरेव सुम्बसदृशशब्दसन्दर्भकाले श्रुतत्वमास्कन्दति, तथा च श्रुतपदं कर्मव्युत्पत्त्या शब्दार्थकमिति, तदसत्, मत्युत्तरं शब्दमात्रस्य भावेऽपि भावश्रुतस्याभावाच्छब्दसन्निधिमात्रेण मतेः श्रुतत्वोपगमेऽतिप्रसङ्गात्साङ्कर्यप्रसङ्गान्निर्विशेषभावे विशेषाभिधायकश्रुताप्रामाण्यप्रसङ्गाच्च । आह च–"अन्ने मन्नंति मई, वाय(वग्ग)समा सुंबसरिसयं सुत्तं ॥

वल्कसुम्बदृष्टान्तेन मतिश्रुतभेदोपपादनं, तत्र परविप्रतिपत्तिखण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिट्ठंतोयं जुत्तिं, जहोवणीओ ण संसहइ ॥१५४॥" [अन्ये मन्यन्ते मतिर्वल्कसमा सुम्बसदृशं सूत्रम् ॥ दृष्टान्तोऽयं युक्तिं यथोपनीतो न संसहते]. "भावसुआभावाओ, संकरओ णिव्विसेसभावाओ ॥ पुव्वुत्तलक्खणाओ, सलक्खणावरणभेआओ ॥१५५॥" [भावश्रुताभावात् संकरतो निर्विशेषभावात् ॥ पूर्वोक्तलक्षणात्स्वलक्षणावरणभेदात्] ॥ ४६ ॥

अनेनैव दृष्टान्तेन द्रव्यभावश्रुतयोर्मतिद्रव्यश्रुतयोश्च भेदनिरूपणाभिप्रायमधरयाति—

द्रव्यभावश्रुते भेत्तुं, युज्येत नैतया दिशा ॥ मतिद्रव्यश्रुते वा यद्, ज्ञानभेदेऽत्र मृग्यते ॥ ४७ ॥

भावश्रुतं वल्कसमं कारणत्वात् कार्यत्वाच्च तज्जनितः शब्दः सुम्ब इति नेत्थमनयोर्भेदोऽभिधेयः । मतिश्रुतभेदचिन्तावसरे तद्भेदस्यानधिकृतत्वात्, एवमश्रुतानुसारिणी मतिर्वल्कसमा तज्जनितः शब्दः सुम्बसमः श्रुतानुसारिणी मतिस्तु श्रुतमित्यपि वचो नोच्चार्यमाणं चारुतामञ्चति, अनेनोदाहरणेनाधिकृतं मतिश्रुतयोर्भेदमुपेक्ष्य भेदान्तरसाधनेनाऽर्थान्तरप्रसङ्गात् । आह च- "कप्पेज्जेज्ज व सो भाव–दव्वसुत्तेसु तेसु वि ण जुत्तो ॥ मइसुयभेआवसरे, जम्हा किं सुअविसेसेण ॥१५६॥" [कल्प्येत वा स भावद्रव्यश्रुतयोस्तयोरपि न युक्तः ॥ मतिश्रुतभेदावसरे, यस्मात्किं श्रुतविशेषेण ॥] "असुयक्खरपरिणामा, व जा मई वग्गकप्पणा तम्मि ॥ दव्वसुयं सुम्बसमं, किं पुण तेसिं विसेसेणं ? ॥१५७॥" [अश्रुताक्षरपरिणामा वा या मतिर्वल्ककल्पना तस्याम् ॥ द्रव्यश्रुतं सुम्बसमं, किं पुनस्तयोर्विशेषेण] "इह इं जेणाहिगओ, नाणविसेसो ण दव्वभावाणं ॥ नयदव्वभावमित्तेवि, जुज्जए सोऽसमंजसओ॥१५८॥" [इह येनाधिकृतो ज्ञानविशेषो न द्रव्यभावयोः ॥ न द्रव्यभावमात्रेपि युज्यते सोऽसमञ्जसतः] ॥ ४७ ॥

किञ्च भेदघटितकार्यकारणभावशालिनोरनयोर्न वल्कसुम्बोदाहरणं परमार्थतः सम्भवतीत्युपदिश्य वास्तवव्याख्याप्रकारमाह—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिश्रुतभेदनिरूपणे वल्कसुम्बदृष्टान्तस्य वास्तवाभिप्रायप्रकटीकरणम् ॥

नायं न्यायः पृथग्भावे, तयोर्गुणकथा वृथा ॥ मतिर्वल्कं ततो भाव–श्रुतं सुम्बमिति स्थितिः ॥ ४८ ॥

सुम्बवल्कदृष्टान्तो हि कार्यकारणयोरभेदमपेक्ष्य व्यवस्थितः कथं चेतनाचेतनधर्मयोर्ज्ञानशब्दयोर्वक्तुमवकाशं लभेत?, 'अथ आयुर्घृतम्' इतिवद्भिन्नयोरपि तन्मयत्वव्यवहारो नानुपन्न इतिचेत्, न, तथापि सम्भवति मुख्यार्थे उपचारकल्पनाऽयोगात्तस्माद्-वल्कसमा मतिः सुम्बसमं तु भावश्रुतं तस्य तत्पूर्वकत्वस्या(मा)गमे व्यवस्थितत्वादिति तदुन्नयनं युक्तम् ॥ आह च–"ण य दव्व-भावमेत्ते वि, जुज्जए सोऽसमंजसओ ॥१५८॥" [न च द्रव्यभावमात्रेऽपि युज्यते सोऽसमञ्जसतः ॥] "जह वग्गा सुंबत्तण–मुवेंति सुंबं च तं तओणन्नं ॥ ण मई तहा धणित्तण–मुवेइ, जं जीवभावो सा ॥१५९॥" [यथा वल्काः सुम्बत्वमुपयान्ति सुम्बं च तत्त तोऽनन्यत् ॥ न मतिस्तथा ध्वनित्वमुपैति यज्जीवभावः सा ॥] "अह उवयारो कीरइ, पभवइ अत्थंतरं पि जं जत्तो ॥ तं तम्मयं ति भण्णइ, तो मइपुव्वं जओ भणियं ॥ १६० ॥" [अथोपचारः क्रियते प्रभवत्यर्थान्तरमपि यद्यस्मात् ॥ तत्तन्मयमिति भण्यते ततो मतिपूर्वं यतो भणितम् ॥] "भावसुअं तेण मई, वग्गसमा सुंबसरिसयं तं च ॥ जं चिंतिऊण तया, 'तो सुअपरिवाडि-मणुसरइ ॥१६१॥"[भावश्रुतं तेन मतिर्वल्कसमा, सुम्बसदृशं तच्च ॥ यच्चिन्तयित्वा तया ततः श्रुतपरिपाटिमनुसरति ॥]॥४८॥

नन्वेतदभिधानस्य हेतुफलभावेन भेदाभिधानात्को विशेष इत्यत्राह–

दृष्टान्तेनाऽमुनाऽभेदा–श्लिष्टभेदप्रदर्शनम् ॥ विशेषोऽस्य ततो हेतु–फलभावप्रदर्शनात् ॥ ४९ ॥

हेतुफलभावेन हि भेदमात्रं साध्यते, 'अनेन तु भेदाभेद इत्यनयोर्विशेषः, तथाहि श्रुतं मत्याभिन्नत्वे सति तद्भिन्नं, एकद्रव्यत्वे सति तद्धेतुकत्वात्, यद् यदेकद्रव्यत्वे सति यद्धेतुकं तत्तदभिन्नत्वे सति ततो भिन्नं यथा वल्कैकद्रव्यं सुम्बं वल्क-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हेतुकमिति तदभिन्नत्वे सति ततो भिन्नमिति, न च भेदमात्रस्याकांक्षितत्वादधिकाभिधाने निग्रहः एकद्रव्यत्वेनाऽभेदोपस्थितौ कथमभेदे भेद इत्याशङ्कायामेतदभिधानाद्. अथवाऽभेदे कार्यकारणभाव एव कथं मतिश्रुतयोः?, इत्याशङ्कोत्थानादेतदभिधानं, तदुच्छेदश्च वल्कसुम्बयोरिवाऽनुकृतान्वयव्यतिरेकयोस्तयोरभेदेऽपि कार्यकारणभावानुमानाद्, न चार्थान्तरं भेदग्राहकहेतुफलभावग्रहौपयिकत्वादेवास्य ॥ ४९ ॥ वल्कसुम्बोदाहरणान्मतिश्रतयोर्भेदमभिधायाक्षरानक्षरतस्तमभिधित्सुः परमतं दूषयति—

अनक्षराक्षरभेदा–दुक्ताव(द्भिन्दन्त्य)न्ये मतिश्रुते ॥ तदसत्, साभिलापा य–न्मतिरेवं विलीयते ॥ ५० ॥

मतिज्ञानमनक्षरमेव, श्रुतज्ञानं तु श्रुतरूपमक्षरवदुच्छ्वसितादि चानक्षरमित्युभयात्मकमित्यनयोर्भेद इति केचिदाहुः, तत्रैवं सत्ययं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति विकल्परूपाया ईहामतेरुच्छेदप्रसङ्गात्, न हि शब्दनिर्भासं विना विकल्पत्वं नाम, किञ्चैवमवग्रहवदीहादीनामन्वयव्यतिरेकधर्मपरामर्शित्वरूपो विवेको न स्यात्, अथ सप्रकारकज्ञानत्वेनैव विवेचकत्वं, नतु साक्षरत्वेनेति, ईहादेः सप्रकारकत्वेऽपि नाक्षरानुगतत्वमिति चेत्, तर्हि श्रुतस्यापि साक्षरत्वे प्रमाणमन्वेषणीयं, किञ्च ज्ञानविषययोः स्वरूपविशेष एव प्रकारता, इतीहादौ शब्द एव विशेषः प्रकारताख्यामाबिभर्तीति कथमस्यानक्षरत्वं, न चातिरिक्तैव प्रकारतेति युक्तं, 'धर्मिकल्पनातो धर्मकल्पना लघीयसी'इति न्यायेन ज्ञाने शब्दाकारपरिणामरूपाया एव तस्याः कल्पयितुं युक्तत्वात्, तादिदमाह–"अन्ने अणक्खरऽक्खर–विसेसओ मइसुआइं भिंदंति ॥ जं मइनाणमणक्खर–मक्खरमियरं च सुयनाणं ॥१६२॥" [अन्येऽनक्षराक्षरविशेषतो मतिश्रुते भिन्दन्ति ॥ यन्मतिज्ञानमनक्षरमक्षरमितरच्च श्रुतज्ञानम् ॥] "जइ मइरणक्खरच्चिय, हवेज्ज नेहादओ णिरभिलप्पे ॥ थाणुपुरिसाइपज्जाय–विवेगो किह णु होज्जाहि ? ॥ १६३ ॥" [यदि मतिरनक्षरैव भवेन्नेहादयो निरभिलाप्ये ॥ स्थाणुपुरुषादि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर्यायविवेकः कथं नु भवेत् ? ॥ ५० ॥ अथैवं भ्रान्तस्योत्तरं निराकुरुते—

श्रुतनिश्रितभावेन, मतिरेषा यदि श्रुतम् ॥ तर्ह्यवग्रहरूपैव, मातिरन्यच्छ्रुतं भवेत् ॥ ५१ ॥

श्रुते हि मतिर्द्विधोपदिष्टा श्रुतनिमित्तमवग्रहादिचतुष्टयमश्रुतनिश्रितमौत्पात्तिक्यादिचतुष्टयं चेति ॥ तत्र चाक्षररूपतया श्रुतव्यापारात्मकं श्रुतनिश्रितमीहादिकं श्रुतमेव, मतिस्त्वन्यैवेत्यनक्षरमय्येव सेति पराशयोऽयुक्तः, अवग्रहरूपाया एव मतेः पर्यवसानप्रसङ्गादक्षररूपायाः श्रुतव्यापारात्मकत्वेन श्रुतत्वाद्, आह च-" सुअनिस्सिअवयणाओ, अह सो सुयओ मओ ण बुद्धीओ ॥ जइ सो सुअवावारो, तओ किमन्नं मइन्नाणं ? ॥ १६४ ॥" [श्रुतनिश्रितवचनादथासौ श्रुततो मतो न बुद्धेः ॥ यदि स श्रुतव्यापारः ततः किमन्यन्मतिज्ञानम् ॥] ॥ ५१ ॥ अभिप्रायान्तरं निराकुरुते—

श्रुतोदितविवेकश्चे-न्मतिरेवं श्रुतोच्छिदा ॥ यौगपद्यं द्वयोर्भावे, एकदा चोपयोगयोः ॥ ५२ ॥

यदि हि मत्यभावभिया श्रुतानुसारी ईहादिविशेषोऽप्यक्षरात्मकत्वान्मतिरेवेष्यते तर्ह्यनक्षरमेव श्रुतं मृगयमाणस्य कथं तदाशापूर्तिस्तस्यैवाभावाच्छ्रुतजन्यस्याप्यक्षरात्मकत्वेन मतित्वाद् । अथ स्थाणुपुरुषविवेककाले तदा मतिः श्रुतं चेत्युभयं स्वीक्रियते केवला तु मतिरनक्षरैव भविष्यतीति चेत्, न, एवं सति उपयोगयौगपद्यप्रसङ्गाद्,एकतरोत्पत्तिस्वीकारे च 'सावकाशानवकाशयोरनवकाशो विधिर्बलीयान्'इति न्यायेनान्यत्रानवकाशस्य मतिज्ञानस्यैव स्वीकर्तुं युक्तत्वादिति प्राञ्चः ॥ नन्वयं नात्रोपयुज्यते विधिविषयत्वात्तस्य, तथाहि निर्-सहशब्दयोर्निर्धनः सधन इत्यत्रेवाल्पबहुत्ववाचकत्वाद् 'बहुविषयादल्पविषयो विधिर्बलीयान्' इत्यर्थः, एवं च वृक्षैरित्यत्र परमपि'एद् बहुस्भोसि'इति(सिद्धहैम १-४-४)सूत्रं बहुविषयत्वाद् बाधित्वा पूर्वमप्यल्पविषयं 'भिस

अक्षरानक्षरतो मतिश्रुतभेदनिरूपणे परविप्रतिपत्तिखण्डनम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐस्न्' इति (२) सूत्रमुपतिष्ठत इत्युपपादितं भवति तथा च परादीनां बलवत्त्वव्याप्तौ सावकाशभिन्नत्वं सङ्कोचकविशेषणं देयमिति व्युत्पादितं भवति, एवं च निरवकाशस्थले सावकाशप्रवृत्तेरसाधुत्वज्ञापकतयाऽस्योपयोगो नतु तत्प्रवृत्तिप्रतिबन्धकतया, अज्ञेन भ्रान्तेन वा कृतस्य तादृशप्रयोगस्य साधुत्वप्रसङ्गात्, तदसाधुत्वज्ञापकान्तरकल्पने गौरवाद्, व्युत्पन्नस्य तथाप्रयोगकारणविघटकतया तदुपयोग इत्यपि कश्चित् ॥ किञ्चाऽवग्रहस्थले सावकाशं मतिज्ञानमपि कथं कल्पनीयमिति चेत्, न, क्लृप्तश्रुतकारणाभावात् क्लृप्त मतिकारणसत्त्वाच्च, मतिज्ञानमेव तदोत्पत्तुमर्हतीति तात्पर्यात्, अपि चाऽक्षरानुगता श्रुतनिश्रिता मतिः, अन्या त्वश्रुतानिश्रितेत्यभ्युपगमे औत्पत्तिक्यादेरपि श्रुतनिश्रितत्वप्रसङ्गादपसिद्धान्तः ॥ आह च–"अह सुयओ वि विवेगं, कुणओ ण तयं सुअं सुअं णत्थि ॥ जो जो सुअवावारो, अन्नो वि तओ मई जम्हा ॥ १६५ ॥" [अथ श्रुततोऽपि विवेकं, कुर्वतो न तच्छ्रुतं श्रुतं नास्ति ॥ यो यः श्रुतव्यापारोऽन्योऽपि सको मतिर्यस्मात्] "मइकाले वि जइ सुअं, तो जुगवं मइसुओवओगा ते ॥ अह नेवं एगयरं, पवज्जओ जुज्जए ण सुअं ॥१६६॥" [मतिकालेऽपि यदि श्रुतं ततो युगपन्मतिश्रुतोपयोगौ ते ॥ अथ नैवमेकतरं प्रपद्यमानस्य युज्यते न श्रुतम्] "जइ सुअनिस्सिअमक्खर–मणुसरओ तेण मइचउक्कं पि ॥ सुअनिस्सिअमावन्नं, तुह तंपि जमक्खरप्पभवं ॥ १६७ ॥" [यदि श्रुतनिश्रितमक्षरमनुसरतस्तेन मतिचतुष्कमपि ॥ श्रुतनिश्रितमापन्नं तव तदपि यदक्षरप्रभवम्] ॥ ५२ ॥ ननु यद्यक्षरानुगतत्वं न श्रुतनिश्रितत्वं तर्हि किमन्यदिति जिज्ञासायामाह—

श्रुताऽभ्याससमुद्बुद्ध–क्षयोपशमसम्भवम् ॥ श्रुतानुसारहीनं य–त्तदेव श्रुतनिश्रितम् ॥ ५३ ॥

श्रुतानुसारहीनं श्रुतनिश्रितमित्युक्ते औत्पत्तिक्यादावतिव्याप्तिस्तद्वारणाय श्रुताभ्यासेति विशेषणं, यद्यपि "भरनित्थरण-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।।उभओलोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी।।९४३।।"(आव० भाष्य[भरनिस्तरणसमर्था त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारा (प्रमाणा)।। उभयलोकफलवती विनयसमुत्था भवति बुद्धिः] इतिवचनाद् वैनयिक्यामश्रुतनिश्रितायामपि श्रुताभ्यासापेक्षास्ति, तथापि श्रुतानुद्बुद्धक्षयोपशमजन्यावृत्तिश्रुतानुसारहीनवृत्तिजातिमज्ज्ञानत्वं श्रुतोद्बुद्धक्षयोपशमजन्यत्वाव्यभिचारि तादृशजातिमज्ज्ञानत्वं वा श्रुतनिश्रितत्वमित्यत्र तात्पर्यम्, अत एवाह "किन्तु सकृच्छ्रुतनिश्रितत्वे सत्यपि बाहुल्यमङ्गीकृत्याश्रुतनिश्रितं तदुच्यत इत्यदोष" इति, इदमेवाभिप्रेत्य चाह भाष्यकारः।। "जइ तं सुएण ण तओ, जाणइ सुअनिस्सिअं कहं भणियं ?।। जं सुअकओवयारं, पुव्विं इण्हिं तयणवेक्खं ।।१६८।।" [यदि तत् श्रुतेन न स जानाति श्रुतनिश्रितं कथं भणितं ?।। यत् श्रुतकृतोपचारं, पूर्वमिदानीं तदनपेक्षम्] "पुव्विं सुअपरिकम्मिअ--मइस्स जं संपयं सुआईयं ।। तं निस्सिअमियरं पुण, अणिस्सिअं मइचउक्कं तं ।।१६९।।"[पूर्वं श्रुतपरिकर्मितमतेर्यत्सांप्रतं श्रुतातीतम्।। तन्निश्रितमितरत्पुनरनिश्रितं मतिचतुष्कं तत्।।] यद्यपि विशेषणधीत्वेन श्रुतानुसारो विशिष्टेऽश्रुतनिश्रितेऽपि पदधीत्वेन च न श्रुतनिश्रितेऽपि, तथापि श्रुतादवगतमिदमिति प्रतीतिसाक्षिको विषयताविशेष एव श्रुतानुसारोऽत्र ग्राह्यः ।। ५३ ।। नन्वेवं यदि श्रुतनिश्रिताऽश्रुतनिश्रिता वा मतिरवग्रहरूपा निरभिलापा, ईहादिरूपा च साभिलापा, श्रुतमपि च प्रागुक्तरीत्या द्विविधं तर्हि कोऽनयोर्भेद ? इति सुहृद्भावेन पृच्छाम इति चेत्, उच्यते—

द्विविधापि मतिस्तस्माद्, द्विरूपैवेति का भिदा ।। तद् द्रव्याक्षरभेदेन, भावनीया भिदाऽनयोः ।। ५४ ।।

यद्यपि भावाक्षरेणाऽवग्रहेहादिरूपमतेर्भावद्रव्याक्षराभ्यां च श्रुतस्य द्वैविध्यमापततोऽविशिष्टं, तथापि मतौ पुस्तकादिगतं ताल्वादिव्यापारजन्यं च द्रव्यश्रुतं नास्त्येव द्रव्यश्रुतस्य द्रव्यमतित्वेनारूढत्वादिति, द्रव्याक्षरेणाऽनक्षरैव मतिः, श्रुतं तु द्रव्यश्रुत-

अक्षरानक्षरतो मतिश्रुतभेदनिरूपणे श्रुतनिश्रितत्वश्रुतानिश्रितत्वयोर्निरूपणम्।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वेनापि रूढं तदपि शब्दरूपमक्षरमयम्, उच्छ्वसितादिरूपं चानक्षरं भावश्रुतमपि विकल्पात्मकत्वाद् भावाक्षरेण साक्षरं,द्रव्याक्षरास्वभावत्वाच्च तेनानक्षरमित्यनयोर्भेदः ॥ **तदिदमाह**–" उभयं भावक्खरओ, अणक्खरं होज्ज वंजणक्खरओ ॥ मइनाणं सुत्तं पुण, उभयं पि अणक्खरक्खरओ ॥ १७० ॥ " [उभयं भावाक्षरतोऽनक्षरं भवेद्व्यञ्जनाक्षरतः ॥ मतिज्ञानं श्रुतं पुनरुभयमप्यनक्षराक्षरतः] ॥ ५४ ॥ पर्यवसितार्थमाह–

द्रव्यश्रुतव्यवहृते–र्भावाभावे विभिन्दतः ॥ मतिश्रुते इतरथा, व्यवहारस्य सङ्करात् ॥ ५५ ॥

मतिज्ञानस्य द्रव्यश्रुतव्यवहाराविषयत्वादेव श्रुतज्ञानाद् भेदः, अन्यथा द्रव्यश्रुतमितिवद् द्रव्यमतिरिति व्यवहारः स्यादर्थाऽभेदाद्, अथ भेदेऽपि मतिकारणे शब्दे द्रव्यमतित्वेनाव्यवहारे इच्छैव बीजमित्यभेदेऽपि व्यवहर्तुरिच्छैव नियामिकेति चेत्, न, भेदेऽसाधारण्येनापेक्षाया व्यवजिहीर्षाबीजत्वाद्, अभेदे तदऽसम्भवाद्, एवं च मतिज्ञानं श्रुतज्ञानाद् भिद्यते द्रव्यश्रुतव्यवहाराविषयत्वाद्, अवधिज्ञानवत्, श्रुतज्ञानं वा मतिज्ञानाद् भिद्यते द्रव्यश्रुतव्यवहारविषयत्वाद्, व्यतिरेकेऽवध्यादिर्दृष्टान्त इति प्रयोगः । न च द्रव्यश्रुतव्यवहारविषयत्वं शब्द एवेत्यपक्षधर्मत्वं हेतोस्तथात्वेऽपि हेतौ पक्षीयसाध्यान्यथानुपपत्तिप्रतिसन्धानेन पक्षीयसाध्यसिद्धेः, अत एव जलचन्द्रेण नभश्चन्द्रानुमानमितिप्राञ्चः ॥ अस्तु वा द्रव्यश्रुतव्यवहारघटककारणतानिरूपितकार्यताशालित्वादिति हेत्वर्थः ॥५५॥ उक्तोऽक्षरानक्षरभेदान्मतिश्रुतयोर्भेदः, अथ मूकेतरभेदात्तमभिधित्सुस्तदर्थमुपन्यस्यापाततो दूषयति–

स्वपरज्ञप्तिहेतुत्वा–त्तयोर्मूकान्यवद्भिदा ॥ चेष्टादिमतिहेतोर–प्यन्यार्थत्वान्न युज्यते ॥ ५६ ॥

द्रव्याक्षररूपस्य श्रुतस्य परप्रतीतिजनकत्वान्मतेस्तु तदभावेनात्ममात्रप्रत्यायकत्वान्मूकामूकयोरिव तयोर्भेदमन्येऽभिदधति,

अक्षरानक्षरतो मतिश्रुतभेदनिरूपणसमाप्तिः मूकेतरभेदान्मतिश्रुतभेदनिरूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तच्चिन्त्यम्, यतः श्रुतज्ञानं हि न स्वतः परप्रत्यायकं किं तु श्रुतज्ञानकारणे शब्दे तदुपचारं कृत्वा तस्य परप्रत्यायकत्वमभिधीयत इति परत एव तत्तथा, एवं च करवक्त्रसंयोगादिका अपि चेष्टा अनक्षररूपत्वेन मतिहेतुतां भजन्त्यः परस्मिन् भुजिक्रियादिप्रतीतिं जनयन्ति, इति मतेरपि परतः परप्रत्यायकत्वमविशिष्टम् । आह च–"सपरपच्चायणओ, भेओ मूएतराण वाऽभिहिओ ॥ जं मूअं मइनाणं, सपरप्पच्चायगं सुत्तं॥१७१॥" [स्वपरप्रत्यायनतो भेदो मूकेतरयोरिवाभिहितः ॥ यद् मूकं मतिज्ञानं, स्वपरप्रत्यायकं श्रुतम्] "सुअकारणंति सद्दो, सुअमिह सो य परबोहणं कुणइ ॥ मइहेअवो वि हि परं, बोहिंति कराइचेट्ठाओ ॥ १७२ ॥" [श्रुतकारणमिति शब्दः, श्रुतमिह स च परबोधनं करोति ॥ मतिहेतवोऽपि हि परं बोधयन्ति करादिचेष्टाः] "न परप्पबोहयाइं, जं दोवि सरूवओ मइसुआइं ॥ तक्कारणाइं दोण्ह वि, बोहिंति तओ ण भेओ सिं ॥ १७३ ॥" [न परप्रबोधके यद् द्वे अपि स्वरूपतो मतिश्रुते ॥ तत्कारणानि द्वयोरपि बोधयन्ति ततो न भेदोऽनयोः ॥] ॥ ५६ ॥ वस्तुस्थितिमुपदर्शयति—

मूकेतरभेदान्मतिश्रुतभेदनिरूपणेऽन्याभिप्रेतमपाकृत्य स्वाभीष्टस्योपदर्शनम् ॥

परप्रत्यायने शब्दो, ह्यसाधारणकारणम् ॥ चेष्टाऽपि शाब्दहेतुर्वा (त्वात्), तदियं युज्यते गतिः ॥ ५७ ॥

यद्यपि द्रव्यश्रुतं श्रुतज्ञानं जनयितुमान्तरिकान्मतिविवर्त्तानवग्रहेहादीन् जनयति तथाप्यक्षररूपतया मुख्यत्वात् श्रुतज्ञानस्यैव तदसाधारणं कारणं, करादिचेष्टास्तु न मतिज्ञानस्यैवासाधारणं कारणं, 'भोक्तुमिच्छत्ययम्' इत्यादिश्रुतानुसारिविकल्पस्यापि जनकत्वात्, अथवाऽऽचारादिपुस्तकाक्षरस्य गुरुजनोदीरितशब्दस्य वा श्रुतस्य यथा मोक्षं प्रत्यसाधारणकारणानां क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्राणां कारणत्वं न तथा परप्रत्यांयिकानां चेष्टादीनामिति विशेषः ॥ वस्तुतः शब्दस्येव चेष्टादीनामप्यर्थविशेषेण सह सम्बन्धग्रहात्पदार्थोपस्थितिद्वारा शाब्दप्रतीतिजनकत्वमेव, न तु मतिज्ञानजनकत्वं,

For Private And Personal Use Only

अत एव शब्दोदीरणासामर्थ्याभावे प्रतिपिपादयिषवस्तथा तथा चेष्टमाना दृश्यन्ते, न च चेष्टादिना व्याप्तिप्रतिसन्धानपुरस्सरमनुमितिरेव जन्यते, न तु शाब्दबोध इति वाच्यम्, एवं सति शब्दादप्यर्थप्रतीतिरनुमानेनैवेति गतं शब्दप्रमाणचर्चयैव ॥ अथ शाब्दबोधे पदोपस्थित एवार्थो भासते नतूपस्थितमात्रं, अन्यथा घटपदात्सम्बन्धितयोपस्थितस्याकाशस्य शाब्दबोधप्रवेशप्रसङ्गात्तथा च चेष्टोपस्थितोऽर्थः कथं शाब्दबोधे निविशतामिति चेत्, न, सङ्केतग्रहाधीनोपस्थितिकस्यैव तत्प्रवेशनियमात्, अथ चेष्टादिना शब्दानुमानादेव शाब्दबोधस्तस्यैव तद्धेतुत्वेन क्लृप्तत्वाद्, अन्यथा लिप्यक्षरादेरपि तद्धेतुत्वकल्पने गौरवादिति, तदिदमभिप्रेत्योक्तं "प्रयत्नजन्या शरीरतदवयवक्रिया चेष्टा सा च नाट्यशास्त्रादिसमयबलेन पुरुषाभिप्रायविशेषं अर्थविशेषं च गमयन्ती नागमाद् भिद्यते लिप्यक्षरादर्थप्रतिपत्तिवदिति" इति चेत्, न, चेष्टायाः शरीरवृत्तित्वेन शब्दस्य चाऽऽकाशवृत्तित्वेन तत्र व्याप्तिग्रहासम्भवात्, चेष्टया तदभिप्रायस्थः शब्दः कल्प्यते, इत्यपि वार्तम् ॥ आकाशं घटमानयेतिशब्दवदित्यनुमित्याद्याकलितशब्दस्येव तस्य स्वतन्त्रानुपस्थितत्वेन शाब्दबोधाहेतुत्वात्, किञ्चैतादृशव्याप्तिप्रतिसन्धानं विनापि चेष्टादेराहत्यार्थप्रतीतिदर्शनात्तस्याः स्वतन्त्रतयैव हेतुत्वं युक्तम्, अथ चेष्टाजन्यज्ञानस्य शाब्दत्वे शब्दात्प्रत्येमीति तत्र प्रतीतिः स्यान्न तु संज्ञया प्रत्येमीति चेत्, न, तस्य ज्ञानस्य शाब्दत्वेऽपि शब्दाजन्यत्वात्, तादृशप्रतीतौ शब्दजन्यत्वस्य नियामकत्वात्, अत एव चेष्टायां लक्षणाभावेऽपि व्यञ्जनयैव बोधकत्वमित्यालङ्कारिकाः॥ तदिदमखिलं चेतसि निधाय **बभाषे भगवान् भाष्यकारः**— "दव्वसुअमसाहारण–कारणओ परविबोहयं हुज्जा ॥ रूढं ति व दव्वसुयं, सुअं ति रूढा ण दव्वमई ॥ १७४ ॥" [द्रव्यश्रुतमसाधारणकारणतः परविबोधकं भवेत् ॥ रूढमिति वा द्रव्यश्रुतं श्रुतमिति रूढा न द्रव्यमतिः ॥] "सा वा सद्दत्थो च्चिय, तया

मूकेतरमेदान्मतिश्रुतभेदनिरूपणे चेष्टाया: शब्दजनकत्वं व्यवस्थापितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वि जं तंमि पच्चओ होइ ॥ कत्ता वि हु तदभावे, तदभिप्पाओ कुणइ चिट्ठं ॥ १७५ ॥" [सा वा शब्दार्थ एव तयापि यत्तस्मिन्प्रत्ययो भवति ॥ कर्तापि खलु तदभावे तदभिप्रायः करोति चेष्टाम् ॥] अत्र शब्दार्थ इति शब्दो वक्तुः समुदीरितवचनरूपस्तस्यार्थः शब्दार्थः श्रोतृगतज्ञाने प्रतिभासमानस्तदभिधेयवस्तुस्वरूपः श्रुतज्ञानमिति तात्पर्यं, तथा च कारणे कार्योपचार आश्रयणीय इति हृदयम् ॥ वस्तुतः शब्दस्यार्थः प्रयोजनमिति सम्मुख एवार्थः ॥ ननु मूकेतरभेदस्याऽवधारणगर्भोऽयमर्थः कुतो न स्याद्यत् श्रुतज्ञानं मुखरमेव मतिज्ञाने तु न नियम इति चेत्, न, श्रुतज्ञानस्यापि सर्वस्यामुखरत्वादनन्तभागस्यैव निबन्धादियोग्यतया मुखरत्वोक्तौ चाऽभिलाप्यानभिलाप्यविषयविभागादनतिरेकप्रसङ्गादितिदिग्। ननु तथापि स्वपरप्रत्यायकत्वाऽप्रत्यायकत्वाभ्यां मतिश्रुतहेतूनामेव विशेष उक्तो न तु मतिश्रुतयोः। न च श्रुतमपि शब्दप्रयोगद्वारा परप्रत्यायकमितिवाच्यम्,मतिज्ञानस्यापि तद्द्वारा तथात्वादितिचेत्,न,स्वकारणद्वारा परस्मै स्वसमर्पकत्वस्य विशेषकत्वात्। असार्वत्रिकमिदमभेदकमिति चेत्, न, तज्जातीयत्वस्य सार्वत्रिकस्य भेदकत्वात् ॥५७॥ उक्तो मूकेतरभेदान्मातिश्रुतयोर्भेदस्तत्प्रतिपादनेन च कृतं सर्वप्रकारैर्भेदनिरूपणमित्याह—

मिथो मतिश्रुतभिदा, तदेवं सर्वहेतुभिः ॥ दिशा प्रदर्शिताऽकम्प्र–सम्प्रदायपवित्रया ॥ ५८ ॥

स्पष्टः ॥ नवरं प्रदर्शितेति क्तप्रत्ययबलेन मतिश्रुतभेदस्य सिद्धत्वज्ञानेन प्रतिबन्धकजिज्ञासानिवृत्त्या मतिस्वरूपनिरूपणप्रयोजकजिज्ञासा शिष्याणां कृता भवति ॥ ५८ ॥ सविवरणे श्रीज्ञानार्णवप्रकरणे प्रथमस्तरङ्गः सम्पूर्णः ॥

प्रौढिं ये विबुधेषु जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरु–स्तत्सातीर्थ्यभृतो नयादिविजयप्राज्ञाः श्रयन्ति श्रियम् ॥ तेषां न्यायविशारदेन शिशुना ज्ञानार्णवे निर्म्मिते, पूर्णे भाष्यवचोमृतैरतितरा–माद्यस्तरङ्गोऽभवत् ॥ १ ॥

मूकेतरभेदान्मतिश्रुतभेदनिरूपणसमाप्तिसर्वप्रकारैर्मतिश्रुतभेदनिरूपणोपसंहारः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रन्थान्तरं रत्नजिघृक्षयाऽन्ये, जडास्तडागं परिशीलयन्ति ।
रत्नाकरं जैनवचोरहस्यं, वयं तु भाष्यं परिशीलयामः ॥ २ ॥
नमोऽस्तु भाष्यकाराय, भगवन्मतभानवे ॥ पराहतेषु तर्केषु, भाष्यजीवातुदायिने ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीज्ञानार्णवे न्यायविशारदविरचिते मतिश्रुतभेदचिन्ताधिकारः प्रथमस्तरङ्गः सम्पूर्णः ॥

प्रथमतरङ्ग-समाप्तिः द्वितीयतरङ्गारम्भः,तत्र मतिज्ञान-तत्त्व-निरूपण-प्रतिज्ञा ॥

अथ द्वितीयस्तरङ्गः ॥ अथावसरसङ्गत्या मतिज्ञाननिरूपणं प्रतिजानीते ।

भेदपर्यायसुव्यक्त-मथ तत्त्वनिरूपणात् ॥ निरूप्यते मतिज्ञान-मुद्देशक्रमसङ्गतम् ॥ १ ॥ ५९ ॥

अथ ' यथोद्देशं निर्देश ' इति न्यायात् पूर्वं मतिज्ञानमुद्दिष्टमिति तदेव पूर्वं निर्दिश्यते, एवं चोद्देष्टुरिच्छयोद्देशक्रमः, उद्देशक्रमाच्च निर्देशक्रम इति लभ्यते उद्देश इव निर्देशेऽपीच्छैव नियामिकाऽसाम्प्रदायिकत्वेन बलवदनिष्टानुबन्धित्वज्ञानाच्च नोद्देशक्रमविपरीतक्रमेण निर्देशेच्छेति तु युक्तं, अत्राऽथेत्यनेन प्रतिबन्धकजिज्ञासापगमलक्षणाऽवसरसङ्गतिर्द्योत्यते, तथा चासङ्गताभिधानशंका निवर्तिता भवति, प्रतिज्ञया च शिष्यावधानं कृतं भवति । तथाह च भाष्यकारोऽपि-"मइसुअनाणविसेसो, भणिओ तल्लक्खणाइभेएणं ॥ पुव्विं आभिणिबोहिय-मुद्दिट्ठं तं परूविस्सं॥१७६॥"[मतिश्रुतज्ञानविशेषो भणितस्तल्लक्षणादिभेदेन ॥ पूर्वमाभिनिबोधिकमुद्दिष्टं तत्प्ररूपयिष्ये] ॥१॥ तत्र निरूपणं तावत्तत्त्वभेदपर्यायैः कर्तव्यं तत्र तस्य भावस्तत्त्वमिति निरुक्त्या तत्त्वं सामान्यलक्षणं तच्च पूर्वं कृतमेवेति भेदनिरूपणमवसरप्राप्तं चिकीर्षुराह—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रुतनिश्रितमन्यच्च, तद्द्विधाऽवग्रहादिभिः ॥ औत्पत्तिक्यादिकैर्भेदै-रेकैकं स्याच्चतुर्विधम् ॥ २ ॥६०॥

तन्मतिज्ञानं द्विविधं श्रुतनिश्रितमश्रुतनिश्रितं च, तत्स्वरूपं च प्रागुक्तं, तदपि प्रत्येकं चतुर्विधं, श्रुतनिश्रितमवग्रहेहापाय-धारणालक्षणं,अश्रुतनिश्रितश्चौत्पत्तिकी-वैनयिकी-कार्मिकी-परिणामिकीलक्षणं चेति, यद्यप्यश्रुतनिश्रितेऽप्यवग्रहादिकमस्ति तथापि-'असाधारणेन व्यपदेश' इति न्यायादित्थं विभागः प्रदर्शितः ॥ २ ॥ आदिपदेन संक्षिप्योपदर्शितं प्रभेदं प्रपञ्चयति-

मतिभेदप्रभेदनिरूपणं तत्र अवग्रहादीनां लक्षणम् ॥

भिदाश्च ताश्चतस्रोऽव-ग्रहेहापायधारणाः ॥ औत्पत्तिकी वैनायिकी, कार्मिकी पारिणामिकी ॥३॥६१॥

स्पष्टः॥ नवरं पारिणामिकीत्यस्यान्ते चेतीतिशेषः, अत्र च श्रुतनिश्रिताधिकारादवग्रहादिभेदानामेवाधिकारः ॥ **आह च निर्युक्तिकारः**-"उग्गह-ईह-वाओ य, धारणा एव होंति चत्तारि ॥ आभिणिबोहिअनाणस्स, भेअवत्थू समासेणं॥१७८॥" [अवग्रह ईहाऽपायश्च धारणैव भवन्ति चत्वारि ॥ आभिनिबोधिकज्ञानस्य भेदवस्तूनि समासेन], अत्र चकारोऽवग्रहेहादेः पर्यायत्वनिरासेन स्वातन्त्र्यप्रदर्शनार्थः, तत्प्रदर्शकत्वं चास्य भेदार्थत्वादवसेयं, अनुशास्यते च 'चार्थो भेद' इति, एवकारश्च अवगृहीतमेवेह्यते ईहितमेव निश्चीयते, निश्चितमेवावधार्यत इति क्रमद्योतनार्थः ॥ **भेदा एव वस्तूनि** विविक्तवस्तुस्वरूपाणि भेदवस्तूनि, तेन भेदस्य पदार्थान्तरत्वनिरासः, **समासेनेति** विस्तरेणाधिकानामपि सम्भवादितिभावः ॥३॥ अवग्रहादीनां लक्षणमाह-

अपग्रहोऽवग्रहः स्या-दीहा भेदगवेषणम् ॥ इदमेवेत्यपायो धी-र्धारणा तदविच्युतिः ॥ ४ ॥ ६२ ॥

अपकृष्टः सामान्यमात्रावभासी ग्रहोऽवग्रहो निष्प्रकारकं ज्ञानमित्यर्थः, भेदगवेषणं तद्व्याप्यान्वयव्यतिरेकधर्मसम्भवग्रहणमीहा, इदमित्थमेवेत्यवधारणमपायो,निश्चिताऽर्थाविच्युतिर्धारणा,अविच्युतिस्मृतिवासनारूपाणां तिसृणामपि धारणानां विच्युतिविरोधित्वा-

भाव्याप्तिः। आह च निर्युक्तिकारः ॥"अत्थाणं उग्गहणं,अवग्गहं तह विआलणं ईहं॥ ववसायं च अवायं, धरणं पुण धारणं बिंति ॥१७९॥" [अर्थानामवग्रहणमवग्रहं तथा विचारणमीहां॥व्यवसायं चापायं धरणं पुनर्धारणां ब्रुवते] "अत्थाणं उग्गहणम्मि उग्गहो" इतिपाठे विभक्तिव्यत्ययो द्रष्टव्यः । भाष्यकारोऽप्यभ्यधात्–"सामण्णत्थावग्गहण–मोग्गहो भेअमग्गणमहेहा ॥ तस्सावगमोऽवाओ, अविच्चुई धारणा तस्स ॥ १८०॥" [सामान्यार्थावग्रहणमवग्रहो भेदमार्गणमथेहा ॥ तस्यावगमोऽपायोऽविच्युतिर्धारणा तस्य] एतेषां लक्षणानां निष्कर्षमग्रे वक्ष्यामः ॥ ४ ॥

अत्र चावग्रहादारभ्य परैः सह बह्व्यो विप्रतिपत्तयः सन्तीत्यवग्रहविषयान्तां तावन्निरोकरोति—

अवग्रहेऽपि सामान्य–विशेषं विषयं परे ॥ प्राहुस्तेषामपायस्य, प्रवृत्तिरतिदुर्घटा ॥ ५ ॥ ६३ ॥

सामान्यमात्रावगाहिज्ञानत्वं नावग्रहत्वं शब्दादिसामान्याविशेषग्रहस्यापि तथात्वात्, किन्तु इदं तदिति वेत्याकारकविमर्शपूर्वभाविज्ञानत्वमेव, प्रवर्तते च शब्दोऽयमिति ज्ञानोत्तरं किमयं शांखः शाङ्गों वेत्यादिविमर्श इति, सोऽप्यवग्रह इति केचिदाहुः, तन्न, तादृशविमर्शानुपरमेनापायस्य कदाप्यप्रवृत्तिप्रसङ्गाद् , ईहाया अपीहान्तरपूर्वभावित्वेनाऽवग्रहत्वप्रसङ्गात्, सामान्यविशेषभानस्यापि सामान्यमात्रभानं विनाऽसम्भवाद्विशेषधर्मभानेऽर्थावग्रहस्य हेतुत्वादित्यादि बहुतरं वक्ष्यते, आह च–"सामन्नविसेसस्स वि, केइ उग्गहणमुग्गहं बिंति ॥ जं मइरिदं तयं ति च तन्नो बहुदोसभावाओ ॥१८१॥" [सामान्यविशेषस्यापि केचिदवग्रहणमवग्रहं ब्रुवते ॥ यन्मतिरिदं तदिति च तन्नो बहुदोषभावात्] ॥ ५ ॥ ईहाविषयिणीं विप्रतिपत्तिं निरस्यति—

ईहां संशयमेवाहुः, परे तत्प्रकृतासहम् ॥ हेतूपपत्तिव्यापारा, न चेहा संशयात्मिका ॥ ६ ॥ ॥ ६४ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिनिरूपणे ईहासंशययोर्लक्षणभेदतो भेदस्य व्यवस्थापनम्॥

स्थाणुर्वा पुरुषो वेत्यनिश्चयात्मकं संशयमेवेहां केचिदुपयन्ति, ते भ्रान्ताः,ज्ञानाधिकारेऽज्ञानरूपाया ईहाया उपन्यासायोगाद्, आह च–"ईहा संसयमेत्तं, केई न तयं तओ जमन्नाणं ॥ मइनाणंसा चेहा, कहमन्नाणं तई जुत्तं ॥१८२॥'[ईहा संशयमात्रं केचिन्न तत्स यदज्ञानम् । मतिज्ञानांशश्चेहा-कथमज्ञानं सा युक्तम्] संशयेहयोर्वैलक्षण्यं न वीक्षामहे इति चेत्, सोऽयं पुरुषदोषो न तु वस्तुदोषस्तयोर्भेदस्यानुभविकत्वात्, तथाहि 'एकत्र विधिनिषेधोभयज्ञानं संशयः,' 'हेतूपपत्तिव्यापारप्रवणं ज्ञानमीहा' इति लक्षणभेदादनयोर्भेदः,यदाह–"जमणेगत्थालंबण–मपज्जुदासपरिकुंठियं चित्तं ॥ सेय इव सव्वप्पयओ,तं संसयरूवमण्णाणं॥१८३॥" [यदनेकार्थालम्बनमपर्युदासपरिकुंठितं चित्तम्॥ शेत इव सर्वात्मतस्तत्संशयरूपमज्ञानम्] "तं चिय सयत्थहेऊ–ववत्तिवावारतप्परममोहं ॥ भूआभूअविसेसा–याणच्चायाभिमुहमीहा॥१८४॥" [तदेव सदर्थहेतूपपत्तिव्यापारतत्परममोघम् ॥ भूताभूतविशेषादानत्यागाभिमुखमीहा] अत्रानेकार्थालम्बनमित्यत्रालम्बनपदेनैकालम्बनत्वविवक्षणाद्,अनेकार्थपदेन विरुद्धार्थत्वलाभाद्,"एकविशेष्यकं विरुद्धधर्मप्रकारकं ज्ञानं संशय" इति लक्षणं, अपर्युदासपरिकुंठितमिति च स्वरूपाभिधानानुपलक्षणादविधिपरिकुंठितत्वमपि द्रष्टव्यं, 'सय' इत्यादि च, सं सर्वात्मना शेत इवेति संशय इति व्युत्पत्त्यर्थाभिधानं, अत्र विरुद्धनानाधर्मप्रकारकत्वं परस्परग्रहप्रतिबन्धकग्रहविषयतावच्छेदकनानाधर्मप्रकारकत्वं विवक्षितं, तेन तदभावव्याप्तिपर्यवसायिनो विरोधस्य संशयेऽभानेऽपि न क्षतिः, न वा इदं रजतमेतद्रूपवच्चेति ज्ञानस्य संशयत्वापत्तिः, यत्तु 'एकधर्मिकतत्तदभावोभयप्रकारकज्ञानमेव संशय' इति, तन्न, अयं स्थाणुः पुरुषो वेति भावाभावानात्मकविरुद्धधर्मद्वयप्रकारकज्ञानस्यापि संशयत्वात्, तत्र चतुष्कोटिकसंशयस्यासिद्धत्वादिति दिग् ॥ यच्च ज्ञानं स्वार्थहेतूपपत्तिव्यापारतत्परं तदीहा, भूताभूतेत्यादिकं च स्वरूपकथनं, तत्र हेतुव्यापारः स्थाणुरयं वल्ल्युपसर्पणकाकादि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निलयादित्याकारः, उपपत्तिव्यापारश्च सम्भवपर्यालोचनं यथा सूर्यास्तसमये महति तमिस्रे स्थाणुरयं सम्भाव्यते नतु पुरुषः, तस्यासम्भवादिति, न चाशुनश्वरज्ञाने कथमेतावत्पर्यालोचनमिति वाच्यं, ईहाया बहुसामायिकत्वाद्, अत एव बहुकालममुमर्थमनुभवामीति प्रतीतिः सङ्गच्छते, एवञ्च हेतूपपत्त्योः परमार्थत एकरूपत्वात्तत्संशयविरोधितद्व्याप्यधर्मवत्ताज्ञानमेव तदीहेत्यायाति, तत्संशयविरोधिता च तदभावानवगाहित्वेन विवक्षितेति न व्याप्यव्याप्यवत्तापरामर्शप्रसूतव्याप्यवत्तानुमितेरपायरूपाया ईहात्वापत्तिः, तत्संशयनिवर्त्तकापायानुकूलपरामर्शत्वं चेहालक्षणं, तेन न तर्काद्यतिव्याप्तिः,स्यादेतत्,तदभावाप्रकारकत्वे सति तत्प्रकारकं ज्ञानं निश्चयः, स एव चापायः, ईहापि संशयभिन्नत्वात्तादृश्येवेतीहापाययोः को भेद ? इतिचेत्,न,इदमित्थमेवेत्यनुभवसाक्षिकविषयताविशेषवतोऽपायादतादृश्या ईहाया भिन्नत्वात् । तादृशविषयताभावः संशयत्वेन व्याप्त इतिचेत्,न,अवग्रहेण व्यभिचारात्, स्पष्टज्ञानत्वविशिष्टः स तथेतिचेत्,न, तादृशव्याप्तौ मानाभावाद्,अपि चामुमर्थं विचारयामि, अमुमर्थं च निश्चिनोमीति प्रतीतिभ्यामीहात्वापायत्वयोः स्फुटमेव स्वतन्त्रतया भानमिति दिग् ॥ ६ ॥ अपायधारणागतविप्रतिपत्तिनिरासाय परमतमुपदर्शयति—

केचिदन्यविशेषस्या–ऽभावव्यवसितिं जगुः ॥ अपायमिदमेवेति, निश्चयं धारणां पुनः ॥ ७ ॥ ६५ ॥

'ववसायंमि अवाओ' इत्यत्र विशेषेण एककोटिव्याप्यधर्माभावप्रकारेणावसायो ज्ञानमिति यथाश्रुतार्थभ्रान्ताः पुरुषत्वव्याप्यशिरःकण्डूयनादिधर्माभाववानयमित्यादिज्ञानमपायं, 'धरणं पुण धारणं बिंति' त्ति यथाश्रुतार्थभ्रान्ताश्च तदुत्तरोत्पन्नं स्थाणुरेवाऽयमित्यादिज्ञानं धारणां केचिदाहुः॥ आह च–"केइ तयन्नविसेसा–वणयणमित्तं अपायमिच्छंति ॥ सब्भूयत्थविसेसा-वधारणं धारणं बिंति ॥१८५॥" [केचित्तदन्यविशेषापनयनमात्रमपायमिच्छन्ति ॥ सद्भूतार्थविशेषावधारणं धारणां ब्रुवते ॥] ॥७॥ तद्दूषयति—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्वयाद् व्यतिरेकाद–प्यन्वयव्यतिरेकतः ॥ अपायस्योदयात्तन्नो, भिदाः पञ्च स्युरन्यथा ॥ ८ ॥ ६६ ॥

मतिनिरूपणेऽपायधारणाविप्रतिपत्तिनिरासः ॥

अन्वयधर्मवत्ताज्ञानाद्व्यतिरेकधर्मवत्ताज्ञानादुभयधर्मवत्ताज्ञानाच्चाविशेषेणेहीतापायस्यैव प्रवृत्तेरसद्भूतधर्मनिषेधाकलनमीहा, तज्जन्यनिश्चयश्चापायः, परमित्युक्तेऽन्वयधर्मगवेषणजन्या धारणा न स्यात्। आह च–"कासइ तयन्नवइरेग–मेत्तओवगमणं भवे भूए॥ सब्भूअसमन्नयओ,तदुभयओ कासइ ण दोसो॥१८६॥ सव्वो वि य सोवाओ,भेए वा होंति पंच वत्थूणि॥ आहेवंचिय चउहा, मई तिहा अन्नहा होइ ॥ १८७ ॥"[कस्यचित्तदन्यव्यतिरेकमात्रतोऽवगमनं भवेद् भूते ॥ सद्भूतसमन्वयतस्तदुभयतः कस्यचिन्न दोषः॥ सर्वोऽपि च सोऽपायो भेदे वा भवन्ति पंच वस्तूनि ॥ आहैवमेव चतुर्धा मतिस्त्रिधाऽन्यथा भवति ॥] ननु स्थाणुत्वव्याप्यवक्रकोटरादिमानयमित्यन्वयधर्मज्ञानात् स्थाणुरेवायमित्यपायोस्तु पुरुषत्वव्याप्यकरचरणाद्यभाववानयमितिव्यतिरेकधर्मज्ञानात्तु कथं सः, नहि तदभावोऽन्वयेन व्यतिरेकेण वा स्थाणुत्वव्याप्यो घटादौ व्यभिचारात्, न च पुरुषत्वव्यापककराद्यभाववत्तानिश्चयादेव पुरुषत्वाभावज्ञानादभावप्रतिपत्तिः, व्यापकाभावज्ञाने व्याप्याभावज्ञानावश्यंभावनियमादिति वाच्यम्। एवं सत्ययं न पुरुष इत्यपायेऽपि अयं स्थाणुरेवेत्यपायाऽभावात्, न चोक्ताभावविशिष्टसाधारणधर्मवत्ताज्ञानमेव तदपायजनकमिति वाच्यम्,संशयहेतोः साधारणधर्मवत्ताज्ञानस्य तदानीमननुसरणादितिचेत्, न, एककोटिनियतधर्माभावज्ञानस्याप्यपरकोटिनिश्चायकत्वाद्, अथवोक्ताभावज्ञानानन्तरं पुरुषत्वाभावज्ञानात्तद्विशिष्टसाधारणधर्मवत्ताज्ञानादेवायं स्थाणुरेवेति निश्चयस्तत्र तावदालोचनरूपाया ईहाया अनुभवसिद्धत्वादिति दिग्। ननु व्यतिरेकधर्मगवेषणमीहेत्यस्य व्याप्यधर्मवत्ताज्ञानमपायोऽसावित्यर्थः, तच्चान्वयेन व्यतिरेकेणान्वयव्यतिरेकेण वास्तु,तज्जन्ययथाभूतार्थज्ञानं तु धारणा इत्युक्तौ को दोषो येन स्वमतव्यावर्णनमेव भ्राजमानं भवेत्, उच्यते, व्याप्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मव्यवसितेर्जायमानो निश्चयो यदि धारणाख्यामाबिभृयात्तदा स्मरणस्यादुरुपह्नवत्वेनावग्रह ईहाऽपायो धारणं स्मरणश्चेति मतिज्ञानस्य पञ्च भेदाः प्रसजेयुः, एवञ्चागमविरोधः, किञ्चैवं धारणाजनकं व्याप्यधर्मवत्ताज्ञानमपाय एवेतीहासंशय एव स्यात्तथा-चोक्तदोषप्रसङ्गः। अथ व्यतिरेकधर्मज्ञानाज्जायमानो निश्चयोऽपायोऽन्वयधर्मज्ञानाज्जायमानस्तु धारणेति चेत्, न, उभयधर्म-ज्ञानाज्जायमानस्य निश्चयस्योभयरूपत्वप्रसङ्गादुक्तदोषप्रसङ्गाच्च, एतेन व्यतिरेकधर्मावगाही निश्चयोऽपायोऽन्वयधर्मावगाही तु धारणेत्यपि निरस्तम् ॥ ८ ॥ ननु धारणा नामाऽविच्युतिस्मृतिवासनालक्षणं मतिभेदान्तरं नास्तीत्यपायविशेष एव स इति न मम भेदपञ्चकप्रसङ्गो व्यक्तिभेदमनादृत्य जातिभेदान्वेषणनिष्ठानां भवतामेव प्रत्युत भेदत्रयप्रसङ्ग इत्याशङ्कते—

अविच्युतिरपायो हि, संस्कारो ज्ञानमेव न ॥ अन्योऽपायः स्मृतिस्तेन, चतुर्भेदा मतिः कथम्? ॥९॥६७॥

इह तावद्घटादिके वस्तुनि अवग्रहेहापायरूपतयान्तर्मुहूर्त्तिक एवोपयोगो जायते तत्रापायोत्पत्त्युत्तरं उपयोगसातत्यलक्षणा चाऽविच्युतिर्भवद्भिः स्वीक्रियते सा तावत्तावत्कालीनापायस्वरूपान्नातिरिच्यते नहि कालभेदेन वस्तुभेदो नाम क्षणभङ्गप्रसङ्गात् या चोपयोगोपरमे सति संख्येयमसंख्येयं वा कालं वासनाऽवतिष्ठत इत्यभ्युपगम्यते सा किं वस्तुविकल्पो वा स्मृतिज्ञानावरण-कर्मक्षयोपशमो वा तज्ज्ञानजननशक्तिर्वा, नाद्य एतावन्तं कालं तद्वस्तुविकल्पायोगात्, नोत्तरौ अज्ञानरूपत्वेन तस्य मति-भेदत्वाऽसम्भवाद्, या चानुभूतस्य कालान्तरोपयोगलक्षणस्मृतिराविर्भवति साप्यन्वयधर्मेणापि निश्चयोऽपाय एवेति त्वदभ्यु-पगमादपायान्तरमेवेति अवग्रह ईहाऽपायश्चेति तिस्र एव मतेर्भिदाः सम्भवन्तीति कथं न विभागवाक्यविरोधः। आह च—
“ काणुवओगम्मि धिई, पुणोवओगे अ सा जओवाओ ॥ तो णत्थि धिई ॥ त्ति ॥ ९ ॥ [कानुपयोगे धृतिः पुनरुपयोगे च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सा यतोऽपायः ? ॥ ततो नास्ति धृतिः ॥ १८८ ॥]त्ति ॥ ९ ॥ अत्रोच्यते—

अविच्युतिर्ज्ञानधारा, वासना ज्ञानकारणम् ॥ स्मृतिश्चेदं तदेवेति, धीरतः किन्तु दूषणम् ॥ १० ॥ ६८ ॥

यत्तावदुक्तं उपयोगसातत्यलक्षणाऽविच्युतिरपायान्नातिरिच्यत इति, तदयुक्तम्, प्रथमापायोत्पत्त्युत्तरं क्वचिदुत्पद्यमानस्य स्थाणुरेवायं स्थाणुरेवायमित्याकारस्यान्तर्मुहूर्तमविच्युतस्य धारावाहिकापायसन्तानस्य प्रथमापायादभ्याधिकत्वात्, न च गृहीतग्राहित्वादस्याप्रामाण्यं, अन्यान्यकालविशिष्टत्वेन स्पष्टस्पष्टतरस्पष्टतमभिन्नधर्मकवासनाजनकत्वेन वा भिन्नस्यैव वस्तुनो ग्रहणादिति प्राञ्चः, वस्तुतो गृहीतग्राहित्वं नाऽप्रमात्वे तन्त्रं, अपि तु 'तदभाववति तत्प्रकारकत्वम्'इति न तस्याप्रामाण्यं इति दिग् ॥ वासना च यद्यपि स्वतो न ज्ञानं तथाप्यपायकार्यत्वात्स्मृतिकारणत्वाच्चोपचारतस्तस्य ज्ञानत्वं, 'इदं वस्तु तदेव, यत्प्रागुपलब्धं मया'इत्याकारिका स्मृतिरपि वस्तुनिश्चयमात्रफलादपायादतिरिच्यते, पूर्वापरदर्शनानुसन्धानरूपा हि सेति, तस्मादविच्युतिस्मृतिवासनालक्षणानां तिसृणामपि धारणानां व्यवस्थितत्वान्न विभागव्याघातः। आह च–"भण्णइ इदं तदेवेति जा बुद्धी ॥१८८॥नणु साऽवायब्भहिआ, जओ अ सा वासणाविसेसाओ ॥ जा याऽवायाणन्तर–मविच्चुई सा धिई णाम ॥१८९॥"[भण्यते इदं तदेवेति या बुद्धिः ॥ ननु साऽपायाभ्याधिका यतश्च सा वासनाविशेषात् ॥ या चापायानन्तरमविच्युतिः सा धृतिर्नाम] यदि चोक्तरीत्याऽपायविशेष एव धारणाभ्युपगम्यते स्मृतिरपि चाधिकाऽभ्युपेयते तदा भेदपञ्चकप्रसङ्गो वज्रलेपायत एव ॥ आह च–" तं इच्छंतस्स तुहं, वत्थूणि य पंच, नेच्छमाणस्स ॥ किं होउ सा अभावो, भावो नाणं व तं कयरं ॥१९०॥"[तामिच्छतस्तव वस्तूनि च पंच, नेच्छतः ॥ किं भवतु साऽभावो भावो ज्ञानं वा तत्कतरत्] ननु भवतामपि धारणानां त्रिरूपत्वाद्विभागातिक्रम इति चेत्, न,

मतिनिरूपणे अविच्युतिस्मृतिवासनानां धारणात्वव्यवस्थापनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धारणात्वेन सर्वासामप्येकीकृत्य ग्रहणाद्, यथा द्विरूपयोरप्यवग्रहयोरवग्रहत्वेन ग्रहणम्, आह च–"तुब्भं (ज्झं) बहुयरभेआ, भणइ मई होइ धिइबहुत्ताओ ॥ भन्नइ न जाइभेओ, इट्ठो मज्झं जहा तुज्झं ॥ १९१ ॥ " [तव बहुतरभेदा भणति मतिर्भवति धृतिबहुत्वात् ॥ भण्यते न जातिभेद इष्टो मम यथा तव ॥] "सा भिन्नलक्खणा वि हु, धिइसामन्नेण धारणा होइ ॥ जह उग्गहो दुरूवो, उग्गहसामन्नओ इक्को ॥ १९२ ॥ " [सा भिन्नलक्षणापि खलु धृतिसामान्येन धारणा भवति ॥ यथाऽवग्रहो द्विरूपोऽवग्रहसामान्यत एकः] नन्वपायसन्ततिरूपाऽविच्युतिः कथं धारणेति चेत्, अपायजन्यत्वाद्धारयामीत्यनुभवाच्च, स्मृतेरिव प्रत्यभिज्ञाया अपि धारणात्वात्तिसृणां धारणानां ग्रहणे न्यूनत्वमिति चेत्, न, स्मृतिपदेन तत्ताविषयकज्ञानविशेषग्रहणादिति दिग् ॥ १० ॥ तदेवं विप्रतिपत्तीर्निराकृत्य विभागं व्यवस्थाप्य प्रागुद्दिष्टमवग्रहं निरूपयति–

तत्र द्विधाऽवग्रहः स्याद्–व्यञ्जनार्थावलम्बनः ॥ तत्रेन्द्रियार्थसम्बन्धो–व्यञ्जनावग्रहः स्मृतः ॥ ११ ॥ ६९ ॥

तत्रावग्रहेहापायादिषु मतिभेदेषु, अवग्रहो द्विविधो व्यञ्जनावग्रहोऽर्थावग्रहश्च, तत्र प्रथमोपदिष्टत्वाद् व्यञ्जनावग्रहः प्राग्निरूपणीय इत्यत आह तत्रेति, आह च–"तत्थोग्गहो दुरूवो, गहणं जं होज्ज वंजण–त्थाणं ॥ वंजणओ य जमत्थो, तेणाईए तयं वुच्छं ॥१९३॥"[तत्रावग्रहो द्विरूपो ग्रहणं यद् भवति व्यञ्जनार्थयोः ॥ व्यञ्जनतश्च यदर्थस्तेनादौ तकं वक्ष्ये ॥] इन्द्रियार्थसम्बन्ध इति तत्समयभावीति तात्पर्यार्थः, योगार्थमाह–स्वयं व्यज्यते प्रकटीक्रियतेऽर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं, कदम्बकुसुमगोलकधान्यमसूरकाहलाक्षुरप्राकारमांसगोलकरूपाणामन्तर्निर्वृत्तीन्द्रियाणां शब्दादिविषयपरिच्छेदहेतुशक्तिविशेषलक्षणमुपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतद्रव्यनिकुरम्बम्, तदुभयसम्बन्धश्च, ततश्च व्यञ्जनेनेन्द्रियेण व्यञ्जनस्यार्थस्य तत्सम्बन्धस्य वाऽवग्रहो व्यञ्जना-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वग्रह इति मध्यमपदलोपेन समास आश्रयणीयः,अर्थभेदेऽपि पदसारूप्येणैकशेषाश्रयणाद्,एकशेषेण व्यञ्जनानामवग्रह इत्यपि स्यात् ॥ आह च "वंजिज्जइ जेणत्थो,घडोव्व दीवेण वंजणं तं च॥ उवगरणिंदियसद्दाइ-परिणयद्दव्वसम्बन्धो ॥ १९४ ॥" [व्यज्यते येनार्थो घट इव दीपेन व्यञ्जनं तच्च॥ उपकरणेन्द्रियशब्दादिपरिणतद्रव्यसम्बन्धः ॥] नन्वयं व्यञ्जनावग्रहो न ज्ञानमित्यत आह—

स तदन्ते ज्ञानभावा-दव्यक्तं ज्ञानमिष्यते(ताम्)॥अन्यथा प्रागलाभं त-दन्तेऽपि न जनुर्लभेत् ॥१२॥७०॥

व्यञ्जनावग्रहसमयो ज्ञानवान्, ज्ञानोत्पत्तिघटकान्त्यसमयशालित्वात्, यदन्त्यसमये ज्ञानमुत्पद्यते स कालो ज्ञानवान्, यथा ईहाद्यसमयः,इत्यनुमानाद् व्यञ्जनावग्रहस्य ज्ञानत्वसिद्धिः। आह च-"अन्नाणं सो बहिरा-इणं व तक्कालमणुवलंभाओ ॥ ण,तदंते तत्तो च्चिय,उवलंभाओ तओ नाणं ॥१९५॥"[अज्ञानं स बधिरादीनां वा तत्कालमनुपलम्भात् ॥ न, तदन्ते तत एवोपलम्भात्स ज्ञानम्] ननु यदि व्यञ्जनाऽवग्रहो ज्ञानं तर्हि बधिरादीनामपि शब्दादिज्ञानापत्तिस्तत्कालेऽपि तदुपलम्भापत्तिश्चेतिचेत्,न,बधिरादीनांव्यञ्जन-व्यञ्जनपूर्तिघटकशक्त्यभावादव्यक्तत्वेन तदनुपलम्भसम्भवाच्च, आह च-"तक्कालम्मि वि नाणं, तत्थत्थि तणुं ति तो तमव्वत्तं॥ बहिराईणं पुण सो, अन्नाणं तदुभयाभावा ॥ १९६ ॥" [तत्कालेऽपि ज्ञानं तत्रास्ति तनु इत्यतस्तदव्यक्तम् ॥ बधिरादीनां पुनः सोऽज्ञानं तदुभयाभावात् ॥] एतेन 'यदन्त्यसमये ज्ञानमुत्पद्यते स कालो ज्ञानवानिति न व्याप्तिः, अवग्रहप्राक्काले व्यभि-चाराद्'इति निरस्तं, ज्ञानसामग्रीसम्पन्नत्वस्य हेतुविशेषणत्वाद्, अत एव सर्वेषु शब्दादिद्रव्यसम्बन्धसमयेषु ज्ञानमस्ति ज्ञानोपकारि-शब्दादिद्रव्यसम्बन्धसमयसमुदायैकदेशत्वादर्थावग्रहसमयवदित्यपि प्रयोगः,यदि च कारणसाम्राज्येऽपि प्राक्समयेषु ज्ञानोत्पत्तिर्न स्यात्तर्ह्यन्त्यसमयेऽपि न स्यादविशेषाद्, आह च-" जइ वऽन्नाणमसंखेज्ज-समयसद्दाइदव्वसम्भावे ॥ किह चरिमसमयसद्दाइ-

मतिनिरूपण प्रसङ्गे व्यञ्जनावग्र-हस्य ज्ञानत्व-व्यवस्थाप-नम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दव्वविण्णाणसामत्थं ॥ २०० ॥ " [यदि वाऽज्ञानमसंख्येयसमयशब्दादिद्रव्यसद्भावे ॥ कथं चरमसमयशब्दादिद्रव्यविज्ञानसामर्थ्यम् ॥] "जं सव्वहा ण वीसुं, सव्वेसु वि तं न रेणुतेल्लं व ॥ पत्तेयमणिच्छंतो, कहमिच्छसि समुदये नाणं ॥२०१॥"[यत्सर्वथा न विष्वक्सर्वेष्वपि तन्न रेणुतैलमिव ॥ प्रत्येकमनिच्छन्कथमिच्छसि समुदये ज्ञानम् ॥] ननु समुदायनिष्पीडनमात्रं न तैलजनकं येन सिकतासमुदायनिष्पीडनात्तैलानुद्भवदर्शनेन प्रत्येकशक्त्यभावः समुदायशक्त्यभावे प्रयोजकः स्यात्, किन्तु तिलसमुदायनिष्पीडनमेव तज्जनकमिति विषमो दृष्टान्तः, अन्यथा दण्डचक्रादिसमुदाये घटोद्भवदर्शनाद्दण्डादिप्रत्येकसत्त्वेऽपि सूक्ष्मघटोत्पत्तिप्रसङ्गादिति चेत्,न,कारणसमुदयाधीनसाकल्यशालिनि कार्ये देशस्य देशोपकारितायामेतद्दृष्टान्ताभिधानस्य न्याय्यत्वाद्॥अत एवाह–" समुदाये जइ नाणं, देसूणे समुदये कहं णत्थि ? ॥ समुदाए वाऽभूयं, कह देसे होज्ज तं सयलं ? ॥२०२॥"[समुदाये यदि ज्ञानं, देशोने समुदये कथं नास्ति ? ॥ समुदाये वाऽभूतं, कथं देशे भवेत् तत्सकलम् ? ॥] "तंतू पडोवयारी, ण समत्तपडो यसमुदिआ ते उ ॥ सव्वे समत्तपडओ तह नाणं सव्वसमएसु ॥२०३॥"[तन्तुः पटोपकारी, न समस्तपटश्च समुदितास्ते तु ॥ सर्वे समस्तपटकस्तथा ज्ञानं सर्वसमयेषु ॥] ननु सहस्रतन्तुकपटादौ सहस्रतन्तूनां तत्संयोगानाञ्च हेतुत्वात्, द्वितन्तुकपटादौ च तन्तुद्वयसंयोगादीनां हेतुत्वादस्तु तत्र खण्डपटोत्पत्तिक्रमेणाखण्डपटोत्पत्तिः, अत्र तु ज्ञानस्य निरवयवत्वात्कथं खण्डज्ञानोत्पत्तिक्रमेणाखण्डज्ञानोत्पत्तिरिति चेत्, न, असङ्ख्यातसमयनिष्पाद्ये सांशे महति ज्ञानेऽङ्सख्यातानामंशानां हेतुत्वाद्, अत एव महज्ज्ञानमेवाभिव्यज्यते महत्तेजोवन्न तु सूक्ष्ममेकतेजोऽवयवादिति व्यञ्जनावग्रहस्य सूक्ष्मत्वं ज्ञानान्तराणां च महत्त्वमुपपद्यते, नन्वव्यक्तं ज्ञानं दृष्टविरुद्धमिति चेत्, न, सुप्तमत्तादिसूक्ष्मबोधस्याऽव्यक्तस्य दृष्टत्वाद्, ज्ञानं विना स्वापावस्थायां बचनचेष्टा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्यनुपपत्तेः, अन्यथा काष्ठादीनामपि तत्प्रसङ्गाद्, आह च–" कहमव्वत्तं नाणं, च सुत्तमत्ताइसुहुमबोहु व्व ॥ सुत्तादओ सयं चि य, विन्नाणं नावबुज्झंति ॥ १९७ ॥" [कथमव्यक्तं ज्ञानं च, सुप्तमत्तादिसूक्ष्मबोध इव ॥ सुप्तादयः स्वयमपि च, विज्ञानं नावबुद्ध्यन्ते] "लक्खिज्जइ तं सिमिणा–यमाणवयणदाणाइचेट्ठाहिं ॥ जं नाऽमइपुव्वाओ, विज्जंते वयणचेट्ठाओ ॥ १९८ ॥ " [लक्ष्यते तत्स्वप्नायमानवचनदानादिचेष्टाभ्यः ॥ यद् नाऽमतिपूर्वा विद्यन्ते वचनचेष्टाः] ॥ ननु सुप्ते स्त्रीयं चेष्टितं कुतो न स्वस्य ज्ञानगोचर इति चेद्, ज्ञानावरणवैचित्र्यात्, नहि जाग्रतापि सर्वं स्त्रीयं चेष्टितं ज्ञायते, मुहूर्तेनाप्यसंख्याताध्यवसायोल्लङ्घनाद् कस्याचिदेव कदाचिदेव वा तदभिव्यक्तेः, आह च–"जग्गंतो वि न याणइ, छउमत्थो हिअयगोअरं सव्वं ॥ जं तज्झवसाणाइं, जमसंखेज्जाइं दिवसेण ॥ १९९ ॥ [जाग्रदपि न जानाति, छद्मस्थो हृदयगोचरं सर्वम् ॥ यत्तदध्यवसानानि यदसंख्येयानि दिवसेन] एवञ्च यथाऽध्यवसायस्थानान्यसंख्येयानि सूक्ष्माण्यपि केवलिदृष्टतया श्रद्धेयानि तथा व्यञ्जनावग्रहज्ञानमपीति भावः ॥ १२ ॥ अथ व्यञ्जनावग्रहतत्त्वं निरूप्य तद्भेदान्निरूपयति–

स चतुर्धा भवेच्चक्षु–र्मनोवर्जेन्द्रियोद्भवः ॥ उपघातानुग्रहाभ्यां, प्राप्यकारीणि तानि यत् ॥१३॥ ७१ ॥

स च व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधो घ्राणरसनश्रोत्रत्वग्लक्षणेन्द्रियभेदात्, नन्वेतेषामेवेन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहो नतु नयनमनसोरित्यत्र किं प्रमाणमिति चेत्, तेषां कर्कशकम्बलादिस्पर्शने त्रिकटुकाद्यास्वादने अशुच्यादिपुद्गलाघ्राणे भेर्यादिशब्दश्रवणे चोपघातदर्शनात्, चन्दनद्रवादिस्पर्शे क्षीरशर्कराद्यास्वादने कर्पूरपुद्गलाद्याघ्राणे मृदुमन्त्रशब्दाद्याकर्णने चानुग्रहदर्शनात्प्राप्यकारित्वसिद्धेः, नयनमनसोस्तु जलज्वलनाद्यवग्रहेणानुग्रहोपघातादर्शनादतथात्वाद्, आह च–"नयणमणोवज्जिंदिअ–भेआओ वंजणोग्गहो चउहा॥उवघा-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहस्य ज्ञानत्वव्यवस्थापनं तद्भेदनिरूपणञ्च ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहभेदनिरूपणे घ्राणादीनां चतुर्णां प्राप्यकारित्वं चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारित्वञ्च निरूपितम्॥

याणुग्गहओ, जं ताइं पत्तकारीणि॥२०४॥"[नयनमनोवर्जेन्द्रियभेदाद्व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्धा॥उपघातानुग्रहतो यत्तानि प्राप्यकारीणि] नन्वनुग्रहोपघातौ यदि सुखदुःखविशेषौ न तर्हि तौ प्राप्यकारित्वलिङ्गे यदि तु विषयेन्द्रियसंयोगकार्यविशेषौ तदा ताभ्यां घ्राणादीनां स्वहेतुभूतं प्राप्तिमात्रं सिध्यतु न तु प्राप्यकारित्वं,तद्धि वस्तु प्राप्यैव ज्ञानजनकत्वमिति चेत् न, श्रोत्रादीनां प्राप्यकारित्वानुमाने नयनमनसोश्चाप्राप्यकारित्वानुमानेऽनुग्रहोपघातव्यावर्णनस्य विपक्षबाधकतर्कप्रदर्शनार्थत्वात्, एवञ्च श्रोत्रादीनि प्राप्यकारीणि नयनमनोभिन्नेन्द्रियत्वाद्,व्यतिरेके नयनमनोवदित्यनुमानमप्यवदातमितिदिग्॥१३॥श्रोत्रघ्राणयोरप्राप्यकारित्वं निराकुरुते–

दूरार्थग्रहणाच्छ्रोत्र–घ्राणे अप्राप्यकारिणी ॥ स्यातां न ते शब्दगन्धौ,यदि प्राप्नुवतः स्वयम् ॥१४॥ ७२ ॥

श्रोत्रघ्राणे अप्राप्यकारिणी असम्बद्धार्थग्राहकत्वात्, न चायमसिद्धो हेतुः, दूरस्थस्यापि भेर्यादिशब्दस्य श्रवणाद् दूरस्थस्यैव कुसुमादेः परिमलग्रहणाच्च, न चात्रान्यतरकर्मणोभयकर्मणा वेन्द्रियविषययोः संयोगोऽनुभूयत इति केचिदाहुः। आह च–"जुज्जइ पत्तविसयया, फरिसणरसणेण सोत्तघाणेसु॥ गिण्हंति सविसयमिओ, जं ताइं भिन्नदेसंपि॥२०५॥"[युज्यते प्राप्तविषयता स्पर्शनरसनयोर्न श्रोत्रघाणयोः। गृह्णीतः स्वविषयमितो यत्ते भिन्नदेशमपि] तदिदं तदा युज्येत यदि शब्दगन्धयोः स्वकर्मणेन्द्रियप्राप्तिर्न स्यात्, तथा च दूरस्थावपि तौ तत्रागत्यैव ज्ञानं जनयत इति न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ उक्तं च–"पावंति सद्दगंधा, ताइं गंतुं सयं न गिण्हंति" ॥२०६॥ [प्राप्नुतः शब्दगन्धौ, ते गत्वा स्वयं न गृह्णीतः]त्ति॥१४॥ तयोः सक्रियत्वे प्रमाणमाह–

सक्रियौ तौ संहरणाद्, वायुना वहनादपि ॥ द्वारानुपाताच्छैलादि–प्रतिघातात्समूर्तिकौ ॥ १५ ॥ ७३ ॥

संहरणाद् गृ(गु)हादिषु पिण्डीभावाद्, वहनादपि वायुना नयनात्, तौ(शब्दगन्धौ)सक्रियौ समूर्तिकौ च धूमवद्धि·

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शेषेण, द्वारानुपाताद्वा जलवद् वेगवद्भिरलद्रव्यस्य पवनाभिमुखमेव प्रसर्पणादनयोः प्रायो द्वारानुधावनमिति बोध्यं, पर्वतादिषु प्रतिस्खलनाद् वा तौ तथा पाषाणवद्, आह च–" जं ते पोग्गलमइआ, सक्किरिया वाउवहणाओ ॥ २०६ ॥ धूमोव्व संहरणओ, दाराणुविहाणओ विसेसेणं ॥ तोयं व णितंबाइसु, पडिघायाओ य वाउव्व ॥ २०७ ॥" [यत्तौ पुद्गलमयौ सक्रियौ वायुवहनात् ॥ धूम इव संहरणतः द्वारानुविधानतो विशेषेण ॥ तोयमिव नितम्बादिषु, प्रतिघाताच्च वायुरिव ॥] ननु पवनोपनीतगन्धवद्द्रव्याणां घ्राणेन सह संयोगोऽस्तु शब्दस्त्वाकाशगुण इति न श्रोत्रेण तस्य संयोगः प्रत्यासत्तिः किं तु श्रोत्रस्य कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाकाशरूपत्वाच्छब्दस्य च तद्गुणत्वात्समवाय एव, गतिस्तु तत्र पवनगतैवारोप्यते न तु स्वाभाविकी, स्वाभाविकगतेरन्यगत्यनुविधानानुपपत्तेरिति चेत्, न, प्रतिघातजनकत्वेन तस्य द्रव्यत्वसिद्धेः, न च तीव्रतरपवमानस्यैव प्रतिघातजनकत्वं न तु शब्दस्येति वाच्यम्, भेर्यादिशब्दजनकपवनसदृशपवनान्तरेणापि बाधिर्याद्युदयप्रसङ्गात्, अपि च श्रोत्रमपि नाकाशं बाधिर्याद्यभावप्रसङ्गात्किन्तु मूर्त्तमेवेन्द्रियमिति न तस्य शब्दो गुणः ॥ किञ्च शब्दस्याकाशगुणत्वे सर्वस्य सर्वशब्दग्रहणापत्तिः श्रोत्रसमवायाविशेषात्, तत्पुरुषीयकर्णशष्कुल्यवच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतायास्तत्पुरुषीयशब्दग्रहं प्रति हेतुत्वकल्पने महागौरवात्, द्रव्यत्वे तु संयोगेनैव श्रोत्रेण ग्रहणोपपत्तौ न किञ्चिदनुपपन्नं, एवं च शब्दस्य द्रव्यत्वे समवायसमवेतसमवायप्रत्यासत्त्यकल्पनया लाघवं द्रष्टव्यं, शब्दस्य मूर्त्तत्वे तत्साक्षात्कारो न स्याद्विषयतया मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति समवायेनोद्भूतरूपवत्त्वस्य हेतुत्वादिति चेत्, न, द्रव्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति योग्यताविशेषस्यैव हेतुत्वात्स च व्यावृत्तिविशेषः शक्तिविशेषो वेत्यन्यदेतत्, श्रोत्रेन्द्रियव्यवस्थापकत्वेन शब्दस्याम्बरगुणत्वसिद्धिरिति तु मन्दं, इन्द्रियान्तराग्राह्यग्राहकत्वस्यैव भिन्नेन्द्रियत्वव्या-

श्रोत्रघ्राणयोरप्राप्यकारित्वस्य खण्डनं शब्दे आकाशगुणत्वस्य खण्डनञ्च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्यत्वात्, तत्र गुणप्रवेशस्य गौरवकरत्वात्, एतेन 'श्रोत्रेन्द्रियं द्रव्याग्राहकं रूपस्पर्शाग्राहकबहिरिन्द्रियत्वाद् रसनवद्' इत्यपि निरस्तं, अप्रयोजकत्वाद् द्रव्यग्रहप्रयोजकप्रत्यासत्त्याभिधानेन तद्विरहरूपविपक्षवाधकतर्कानुत्थानात् । इत्थं च शब्दो न पौद्गलिकः स्पर्शशून्याश्रयत्वाद्, अतिनिबिडप्रदेशप्रवेशनिर्गमयोरप्रतिघातात्, पूर्वं पश्चाद्वा(च्चा)ऽवयवानुपलब्धेः, सूक्ष्ममूर्त्तान्तराप्रेरकत्वाद्, गगनगुणत्वाच्चेति हेतवो निरस्ता वेदितव्याः, भाषावर्गणादेस्तदाश्रयस्य स्पर्शवत्त्वेन स्पर्शशून्याश्रयत्वस्यासिद्धेः,भित्त्यादिकमुपभिद्य प्रसर्पिणा मृगमदादिद्रव्येण द्वितीयस्याऽनैकान्तिकत्वात्, तृतीयचतुर्थयोश्चोल्कादिना धूमादिना च तथात्वात्, पञ्चमासिद्धतायास्तु प्रदर्शितत्वात्, उच्छृंखलनैयायिकास्तु "निमित्तपवनस्यैव गुणः शब्दः, अत एव निमित्तपवननाशात्तन्नाशः, समवायिकारणनाशस्य समवेतकार्यनाशं प्रति हेतुत्वात्, कर्णसंयुक्तनिमित्तपवनसमवायाच्च तद्ग्रहः, न च वीणावेणुमृदङ्गादेरेव कुतो नायं गुण इति वाच्यं, तेषां अननुगतत्वात्, निमित्तपवनस्यैवानुगतत्वेन समवायिकारणत्वौचित्यात्, तेषां निमित्तकारणत्वे क्लृप्तेऽपि समवायिकारणत्वाकल्पनात्सम्बन्धभेदेन कारणताभेदाद्" इत्याहुः, तदसत्, पवनगुणत्वे शब्दस्य तत्स्पर्शस्येव स्पार्शनप्रसङ्गात्, तस्य स्पार्शनप्रतिबन्धकत्वकल्पने च महागौरवात्, शब्दगुणस्पार्शनजनकतावच्छेदकजात्यभावान्न दोष इति चेत्, न, तादृशजातेरसिद्धेः, गुणचाक्षुषजनकतावच्छेदिकया साङ्कर्यादिति दिग्॥अधिकं स्याद्वादरहस्येऽनुसन्धेयम् ॥ तस्माच्छ्रोत्रघ्राणे अपि प्राप्यकारिणी इति व्यवस्थितम्॥ आह च–"गेण्हंति पत्तमत्थं, उवघायाणुग्गहोवलद्धीओ ।बाहिज्जपूइणासारिसादओ कहमसंबद्धे ॥२०८॥" [गृह्णीतः प्राप्तमर्थं उपघातानुग्रहोपलब्धेः ॥ बाधिर्यपूतिनासार्शआदयः कथमसम्बद्धे]॥१५॥

तदेवं नयनमनोवर्जेन्द्रियाणां प्राप्यकारित्वं व्यवस्थापितम् । अथ नयनमनसोरप्राप्यकारित्वस्य व्यवस्थापनीयतया मनो-

॥मति. व्य० शब्दस्याकाशगुणत्वखण्डने शब्दे पौद्गलिकत्वाभावसाधकहेतूनामव्याकरणं शब्दस्य पवनगुणत्वखण्डनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृष्टान्तेन तावच्चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वं व्यवस्थापयति—

अप्राप्यकार्यधिष्ठाना-सम्बद्धग्राहि लोचनम् ॥ अनुग्रहोपघाताभ्यां, विषयाद् भाव्यमन्यथा ॥१६॥७४॥

चक्षुरप्राप्यकारि अधिष्ठानासम्बद्धार्थग्राहकेन्द्रियत्वाद्, मनोवद्, अधिष्ठानेत्यादिविशेषणेन स्पर्शनादाविन्द्रियपददानेन च प्रदीपप्रभायां व्यभिचारः परिहृतः, न चाप्रयोजकत्वं सम्बद्धार्थग्राहकत्वे तस्य करवालजलावलोकनादिनोपघातानुग्रहप्रसङ्गात्, न चासिद्ध एव तस्योपघातानुग्रहाभावो भूयो भूयः सूरकरावलोकनेन जलावलोकनेन च दाहशैत्यलक्षणतद्दर्शनादिति वाच्यम्, अवलोकनानन्तरं चक्षुर्देशं प्राप्तेन मूर्तेन रविकरादिनोपघातस्य सम्भवाज्जलावलोकनादौ चोपघाताभावेनानुग्रहाभिमानात् स्वतस्तद्देशं प्राप्तेन च चन्द्रमरीचिनीलादिनाऽनुग्रहोऽपि भवत्येव, यदि च चक्षुः स्वत एवानुग्राहकोपघातकवस्तुनी संस्पृज्यानुग्रहोपघातौ लभेत तर्हि सूरकरावलोकनादिव करवालावलोकनादप्यभिघातः स्यात्, **तदिदमाह—**"लोअणमपत्तविसयं, मणोव्व जमणुग्गहाइसुन्नंति॥ जलसूरालोआइसु, दीसन्ति अणुग्गहविघाया ॥२०९॥ डज्झेज्ज पाविउं रवि-कराइणा फरिसणं व को दोसो ॥ मन्नेज्ज अणुग्गहं पिवु-वघायाभावओ सोम्मं ॥२१०॥ गंतुं ण रूवदेसं, पासइ पत्तं सयं व णियमोयं ॥ पत्तेण उ मुत्तिमया, उवघायाणुग्गहा होज्जा ॥२११॥" [लोचनमप्राप्तविषयं, मन इव यदनुग्रहादिशून्यमिति ॥ जलसूरालोकादिषु दृश्येते अनुग्रहविघातौ ॥ दह्येत प्राप्य रविकरादिना स्पर्शनमिव को दोषः ॥ मन्येतानुग्रहमिवोपघाताभावतः सौम्य! ॥ गत्वा न रूपदेशं, पश्यति प्राप्तं स्वयं वा नियमोयं ॥ प्राप्तेन तु मूर्तिमतोपघातानुग्रहौ भवेताम् ॥]॥१६॥ननु नयनान्नायना रश्मयो निर्गत्य प्राप्य च वस्तु रविरश्मय इव प्रकाशमादधति सूक्ष्मत्वेन तैजसत्वेन च तेषां वह्न्यादिभिर्दाहादयो न भविष्यन्तीति चेत्, न, चक्षुषस्तैजसत्वस्यैवासिद्धेः, तथाहि—

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहनिरूपणे चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वव्यवस्थापनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अदृष्टकल्पनापत्ति–स्तैजसत्वे हि चक्षुषः॥ न च तत्साधकं किञ्चिद्–बलवन्मानमीक्ष्यते ॥ १७ ॥ ७५ ॥

चक्षुषस्तैजसत्वकल्पनेऽनुद्भूतरूपानुद्भूतस्पर्शतेजोन्तरं कल्पनीयमित्यदृष्टकल्पनापत्तिः परमते, न च तत्तैजसत्वसाधकं किञ्चिद्बलवत्प्रमाणमीक्षामहे, न च चक्षुस्तैजसं रूपादिषु मध्ये रूपस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्प्रदीपवदित्यनुमानात्तत्सिद्धिः, स्वस्पर्शव्यञ्जकत्वेन प्रदीपदृष्टान्तस्य साधनवैकल्याद्विषयेन्द्रियसंयोगेनानैकान्तिकत्वाद्, द्रव्यत्वे सतीति विशेषणेऽप्यञ्जनविशेषेणानैकान्तिकत्वाच्च, एतेन "रूपसाक्षात्कारासाधारणकारणं तैजसं रसाव्यञ्जकत्वे सति स्फटिकाद्यन्तरितप्रकाशकत्वात्प्रदीपवद्"इत्यपि निरस्तम् ॥ अञ्जनादिभिन्नत्वे सतीति विशेषणदाने चाप्रयोजकत्वाच्चक्षुःप्रदीपयोरेकया जात्या व्यञ्जकत्वासिद्धेः॥ एतेन "स्वप्नादिकमिवाञ्जनादिकं सहकृत्य मनसैव साक्षात्कृते निध्यादौ चाक्षुषत्वभ्रम एवे"त्युक्तावपि न क्षतिः ॥ किं चैवं तवाऽञ्जनादेः पृथक्प्रमाणत्वापत्तिः, मनो यदसाधारणं सहकार्य्यासाद्य बहिर्गोचरां प्रमां जनयति तस्य प्रमाणान्तरत्वनियमात्, न च पटपटलाच्छन्नचक्षुषामञ्जनादिजनितो निध्यादिसाक्षात्कारो न प्रमेत्युक्तिर्युक्तिसहा, यथार्थप्रवृत्तिजनकत्वेन तत्प्रमात्वस्य व्यवस्थितत्वात्, न च कारणबाधादप्रमात्वं, तस्यैवासिद्धेः,न च स्वप्नादिवदञ्जनादेर्निध्यादिसूचकत्वमेवेति युक्तं व्याप्तिग्रहादिकं विनाऽनुमितिरूपतत्सूचनाऽसम्भवात्, स्वप्नादिस्थले तु व्याप्तिग्राहकस्वप्नशास्त्राद्यनुसरणनियमादिति दिग् । ननु चक्षुर्यदि न प्राप्यकारि तदाऽसन्निहितत्वाऽ[विशेषात्कुड्यादिव्यवहितस्यापि ग्रहणप्रसङ्ग इति चेत्, न, अतिसन्निहितस्य गोलकादेरिव भित्त्यादिव्यवहितस्यापि योग्यताऽभावादेवाग्रहात् । नन्वग्रावच्छेदेनैव चक्षुःसंयोगस्य ग्राहकत्वान्न मूलावच्छेदेन तत्संयुक्तगोलकादिग्रहप्रसङ्गः । कुड्यादिव्यवहितानां स्वरूपयोग्यता च स्थैर्यपक्षे न परावर्तते, क्षणिकत्वपक्षेऽप्यप्रत्यासन्नानां सहकारिणां नातिशयजनकत्वं, प्रत्यासत्तिश्च परेषां निरन्तरोत्पादः, अस्माकं तु संयो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गः,तदुभयमपि कृष्णसारस्यार्थेन न सम्भवतीति चेत्, न, शक्तिप्रत्यासत्त्यैवातिशयाधानाल्लोहाकर्षकायस्कान्तादावतिरिक्तप्रत्यासत्त्यदर्शनात्सामीप्यविशेषस्य तत्र सम्बन्धत्वे चात्रापि तेनैवोपपत्तेः। युक्तं चैतत्, संयोगादिनानाप्रत्यासत्त्यकल्पनलाघवात्, न चैवमप्राप्यकारित्वभङ्गः, चक्षुःसंयोगस्य चाक्षुषाजनकत्वेनैव तदुपपत्तेः। वस्तुतः सन्निहितविषयग्रहे व्यवधानाभावकूट एव विषयनिष्ठा योग्यता व्यवहितविषयग्रहे चाञ्जनादिनिष्ठैव शक्तिलक्षणा योग्यता हेतुः, विषयपुरुषादिभेदेन तद्वैचित्र्यात्। अत एवास्मदादीनामालोकापेक्षयैव विषयग्रहः पेचकादीनां तु न तथेत्युपपद्यते। इत्थं चाव्यवहितचाक्षुषसाक्षात्कारे चक्षुर्व्यवधानाभावादीनां व्यवहितचाक्षुषे च चक्षुरञ्जनादीनां विलक्षणशक्तिमत्त्वेन हेतुत्वान्न किञ्चिदनुपपन्नम्,भित्त्यादेश्चक्षुःसंयोगप्रतिबन्धकत्वे तु स्फटिकादीनामपि तथात्वप्रसङ्गात्तद्व्यवहितानामप्यनुपलब्धिप्रसङ्गः। प्रसादस्वभाववतां स्फटिकादीनां न नायनरश्मिगति-प्रतिबन्धकत्वमिति चेत्, तर्हि भित्त्यादीनां चक्षुःप्राप्तिप्रतिबन्धकत्वापेक्षया लाघवाच्चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वमेव कल्प्यताम्। स्वप्राचीस्थपुरुषसाक्षात्कारे स्वप्रतीचीवृत्तित्वसम्बन्धेन भित्त्यादीनां तत्त्वसम्भवात्। यदि च तत्तत्क्रियातत्तदुत्तरदेशादीनामेव संयोगनियामकत्वेनानतिप्रसङ्गाद्भित्त्यादीनां न प्रतिबन्धकत्वमिति विभाव्यते तदा 'तद्धेतोः' (तद्धेतोरेव तदस्तु किं तेन) इति न्यायेन लाघवात्तत्तन्नयनोन्मीलनस्यैव तत्तच्चाक्षुषहेतुत्वमस्तु किमनन्तसंयोगादिकल्पनया, इन्द्रियसम्बन्धत्वेन प्रत्यक्षहेतुत्वकल्पनात्फलमुखं गौरवं न दोषायेति चेत्, न, इन्द्रियसम्बन्धत्वस्यैकस्याभावेन तथाहेतुताया एवासिद्धेः। तथापि द्रव्यचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयोगत्वादिना हेतुत्वमनुगतमेवातदुक्तं–मणिकृता 'प्रत्यक्षविक्षेषे इन्द्रियार्थसन्निकर्षविशेषो हेतुरनुगत एवेति' इति चेत्, न, परमाण्वाकाशादौ व्यभिचारात्। न च महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपवत्त्वस्यापि सहकारित्वान्न दोष इति वाच्यम्, समा-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे चक्षुषः प्राप्यकारित्वस्य खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे चक्षुषः प्राप्यकारित्वस्य खण्डनम् ॥

कलितसकलनेत्रगोलकस्य दूरासन्नतिमिररोगावयविन उपलम्भप्रसङ्गात्, आह च–"जइ पत्तं गेण्हेज्ज उ, तग्गयमंजणरओमलाईयं ॥ पेच्छज्ज जं न पासइ, अपत्तकारि तओ चक्खुं ॥ २१२ ॥" [यदि प्राप्तं गृह्णीयात्तद्गतमञ्जनरजोमलादिकम् ॥ प्रेक्षेत यन्न पश्यति, अप्राप्तकारि ततश्चक्षुः ॥] अत्यन्तासत्त्यभावस्यापि सहकारित्वे चाधिष्ठानसंयुक्ताञ्जनशलाकाया अप्यप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्, अग्रावच्छेदेन चक्षुःसंयोगस्य हेतुत्वेऽप्युदीचीं प्रति व्यापारितनेत्रस्य काञ्चनाचलोपलम्भप्रसङ्गात्, दूरत्वेन नेत्रगतिप्रतिबन्धे च शशधरस्याप्यनवलोकनप्रसङ्गात् । तदभीषुभिरिव तिग्मकराभीषुभिरपि तदभिवृद्धेश्चाविशेषात्, तिग्मत्वेन तिग्मकररश्मीनां तत्प्रतिघातकत्वे च तदालोकपरिकालितपदार्थमात्राभानप्रसङ्गादिति रत्नप्रभाचार्यप्रभृतयः(रत्नाकरावतारिकाद्वितियपरि० सूत्र ५)' इन्द्रियसम्बन्धत्वेन प्रत्यक्षहेतुत्वेऽपि सामीप्यविशेषेण संयोगस्यान्यथासिद्धिरित्यपि युक्तमुत्पश्यामः ॥ प्राप्यकारित्वे च चक्षुषः शाखाचन्द्रमसोर्युगपद्ग्रहानुपपत्तिः, युगपदुभयसंयोगाभावात् । न च शतपत्रशुचीवेधव्यतिकरेण तत्र यौगपद्याभिमान एव क्रमेणैव वेगातिशयादुभयसंयोगेनोभयसाक्षात्कारजननादिति वाच्यम्, चन्द्रज्ञानानुव्यवसायसमये शाखाज्ञानस्य नष्टत्वेन शाखाचन्द्रौ साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायानुपपत्तेः, न च क्रामिकतदुभयानुभवजनितसंस्काराभ्यां जनितायां समूहालम्बनस्मृतावेवानुभवत्वारोपात् तथानुव्यवसाय इति साम्प्रतम्, तादृगारोपादिकल्पनायां महागौरवात् । न च तिर्यग्भागावस्थितयोः शाखाचन्द्रमसोर्युगपत्संयोग इति साम्प्रतम्, सन्निहितव्यवहितयोर्युगपत्संयोगेऽतिप्रसङ्गात् । नयनान्निःसरता नायनेन तेजसाऽर्थसंसर्गसमकालमेव बाह्यालोकसहकारेणान्यचक्षुरारम्भाच्छाखाचन्द्रमसोर्युगपद्ग्रह इत्यपि तुच्छम्, उद्भूतरूपवत्तेजःसंसर्गेणानुद्भूतरूपवत्तेजस आरम्भानभ्युपगमाद्बाह्यचक्षुषा पृष्ठावस्थितवस्तुग्रहप्रसङ्गाच्चेत्यधिकंमत्कृतस्याद्वादरहस्यादवसेयम्(न्यायालोकादुध्धृतम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्धृतम्)॥किञ्च मनोऽप्राप्यकार्यपि प्रतिनियतस्यैव ग्राहकम्,ननु मनसोऽपि सर्वग्राहकत्वप्रसङ्गतो नाप्राप्यकारित्वं किन्तु प्रतिनियतग्राहित्वेन] तत्प्राप्यकारि स्यादिति चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वसाधने दृष्टान्तीकृतस्य मनसः साध्यसाधनोभयवैकल्यमिति चेत्, न, ज्ञेयसम्पर्ककृतानुग्रहोपघातलक्षणलिङ्गाभावेन तस्य तत्सम्पर्कासिद्धेः,अन्यथा जलज्वलनादिचिन्तया तस्य क्लेददाहादिप्रसङ्गः, अमुकत्र गतं मे मन इति प्रयोगस्य च गत्यर्थानां धातूनां ज्ञानार्थत्वेनैतदर्थग्रहणाय व्यापृतं मे मन इत्यर्थः ॥ आह च–"गंतुं नेएण मणो, संवज्झइ जग्गओ व सिमिणे वा ॥ सिद्धमिदं लोअंमित्ति, अमुगत्थगओ मणो मित्ति ॥२१३॥"[गत्वा ज्ञेयेन मनः, सम्बध्यते जाग्रतो वा स्वप्ने वा ॥ सिद्धमिदं लोकेऽपि अमुकत्रगतं मनो मे इति॥] "नाणुग्गहोवघाया–भावाओ लोअणं व, सो इहरा ॥ तोयजलणाइ चिंतणकाले जुज्जेज्ज दोहिंपि॥२१४॥"[नानुग्रहोपघाताभावाल्लोचनमिव तदितरथा ॥ तोयज्वलनादिचिन्तनकाले युज्येत द्वाभ्यामपि]॥१७॥

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वस्य खण्डनम् ॥

किञ्च भावमनो द्रव्यमनो वा बहिर्गत्वा ज्ञेयेन सम्बध्यत इति विकल्प्य दोषमाह–

किञ्च भावमनो गच्छेद्–बहिर्द्रव्यमनोऽथवा ॥ नाद्यः शरीरवृत्तित्वा–दात्मनोऽनिर्गमाद् बहिः॥२५॥*८३॥

उक्तविकल्पद्वये हि प्रथमविकल्पो न प्रथते भावमनसश्चिन्ताज्ञानपरिणामरूपस्य जीवानन्यत्वाज्जीवस्य च शरीरमात्रवृत्तित्वेन तद्रूपादीनामिव बहिर्निर्गमासम्भवाद्,आह च–"दव्वं भावमणो वा, वएज्ज जीवो अ होइ भावमणो ॥ देहव्वावित्तणओ, न देहबाहिं तओ जुत्तो॥२१५॥"[द्रव्यं भावमनो वा व्रजेज्जीवश्च भवति भावमनः॥देहव्यापित्वान्न देहबहिस्ततो युक्तः ॥]२५॥ नन्वात्मनः शरीरव्यापित्वमेवासिद्धं सर्वगतत्वादिति चेद्, उच्यते-[*प्रतावस्येह द्वे पत्रे सप्तगाथाश्च गता इति लिखित्वाङ्कपरावृत्तिश्च कृता]

कर्तृत्वं व्योमवन्न स्यात्–सर्वगत्वे किलात्मनः ॥ प्रकृतेरेव कर्तृत्वं, युज्यते न कथञ्चन ॥ २६ ॥८४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मनः सर्वगतत्वे ह्याकाशवत् कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकं न स्यात्सर्वगतत्वस्याकर्तृत्वादिव्याप्तत्वाद्, आह्च-"सव्वगओ त्ति य बुद्धी, कत्ताभावाइदोसओ तस्रो ॥२१६॥" [सर्वगत इति च बुद्धिःकर्त्रभावादिदोषतस्तन्न]॥ अत्र सांख्याः सङ्गिरन्ते-कूटस्थनित्यत्वश्रुतेरात्मा तावदकारणमकार्यं च, कारणत्वेऽपि तस्यानित्यकार्यपरिणामित्वेनानित्यत्वप्रसङ्गाद्, अत एव जन्यधर्मानाश्रयत्वं कूटस्थपदार्थो गीयते। तदुक्तं-"न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः"इति, आदिकारणं च प्रकृतिरेव॥तदुक्तं-"मूलप्रकृतिरविकृतिरिति" अचेतनत्वेन चेयं परिणामिनी ततो महदहङ्कारेन्द्रियतन्मात्रमहाभूतानां सर्गः, न च पुरुषार्थप्रयोजकत्वात्प्रकृतिपरिणामस्य तदनुगुणशब्दादिपरिणाम एवास्तु किमान्तरालिकमहदादितत्त्वेनेति वाच्यम्, तत्सर्गस्य विषयबन्धनार्थत्वात्, न च चितिरेव विषयसम्बन्धस्वभावा, स्वभावस्यानुच्छेद्यत्वेनानिर्मोक्षप्रसङ्गात्, न च प्रकृतिरेव तदीयभोगोपकरणसम्पादनस्वभावा, नित्यत्वेन तस्याः कदाचिदप्यात्मनो निरुपाधिकत्वाभावेन तत एव, न च घटादिरेवाहत्य तदीयो, दृष्टादृष्टविभागानुपपत्तेः, नापीन्द्रियप्रणालिकयैव चिद्विषयसम्बन्धः, व्यासङ्गायोगात्, नापीन्द्रियमनोद्वारा, स्वप्नदशायां वराहव्याघ्राद्यभिमानिनो नरस्यापि नरत्वाभिमानानुदयात्, नह्ययं बाह्येन्द्रियवृत्त्यभावकृतो जाग्रदवस्थायामपि तस्य तन्निरपेक्षत्वदर्शनात्, न च मनोविरहकृतः, तस्य स्वप्नेऽपि व्यापारात्,तस्माद् यद्विरहकृतः स्वप्नेऽभिमानानुदयस्तदतीन्द्रियं तत्कारणमहङ्कारतत्त्वमवश्यमभ्युपेयमिति, न चाहङ्कारपर्यन्तव्यापारेणैव चिद्विषयसम्बन्धस्वभावः,सुषुप्त्यवस्थायां तद्व्यापारविरामेऽपि श्वासप्रश्वासप्रयत्नसन्तानावस्थानात्, तद् यदेतास्ववस्थास्वनुवर्त्तमानमेकं सव्यापारमवतिष्ठते यदाश्रया चानुभववासना तद्बुद्धितत्त्वाख्यमन्तःकरणमिन्द्रियमनोऽहङ्कारपरम्परयोपारूढोऽर्थः पुरुषस्य भोगाय भवति॥ तदुक्तं-"एते प्रदीपकल्पाः, परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः॥ पुरुषस्यार्थं स्वच्छं, प्रकाश्य बुद्धौ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रयच्छन्ति ॥३६॥" इति, तस्मिन्नचेतनेऽपि चेतनत्वाऽभिमानोऽकर्त्तरि च चेतने पुरुषत्वाभिमानो भेदाग्रहादेव शरीर आत्मत्वाभिमानवत् । तदुक्तं–"तस्मात्तत्संयोगा–दचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् ॥ गुणकर्तृत्वे च तथा, कर्त्तेव भवत्युदासीनः ॥२०॥" इति, कर्मवासनापि च बुद्धितत्त्व एव, पुरुषस्त्वनुभवतद्वासनातत्फलैः कर्मतद्वासनातत्फलैश्च निर्लेप एव, आलोचनमिन्द्रियाणां व्यापारो विकल्पस्तु मनसः, अभिमानोऽहङ्कारस्य, 'ममेदं कर्तव्यम्' इति कृत्यध्यवसायश्च बुद्धेः, अत्र हि पुरुषोपरागो विषयोपरागो व्यापारावेशश्चेति त्रयोंशाः, तत्र ममेति पुरुषोपरागो दर्पणस्येव मुखोपरागो भेदाग्रहादताद्त्विको, यद्यपि ममेत्यभिमानो न बुद्धेर्धर्मस्तथापीदमा प्रातिनिर्दिष्टस्य विषयस्य ममेत्यत्र पुरुषस्यैव ग्राहकत्वेनाभिमानः पुरुषोपराग एव, इन्द्रियप्रणालिकोपनीतपरिणतिभेद इदमिति विषयोपरागः, मुखनिश्वासोपहतस्य मुकुरस्य मलिनिमोपराग इव पारमार्थिकः, एतदुभयोपपत्तौ च कर्त्तव्यमिति व्यापारावेशोऽपि, अस्यायं बुद्धौ विषयोपरागो ज्ञानं, दर्पणप्रतिबिम्बितमुखस्य तद्गतमलिम्नैव पुरुषोपरागस्य विषयोपरागेण सह सम्बन्ध उपलब्धिरिति, बुद्ध्युपलब्धिज्ञानानां नानर्थान्तरत्वं, तदेवमष्टावपि धर्मा बुद्धेरेव सामानाधिकरण्येनाध्यवसीयमानत्वात्, न च बुद्धिरेव स्वभावतश्चेतना परिणामित्वाद्, उक्तश्च–अध्यवसायो बुद्धि–धर्मो ज्ञानं, विराग ऐश्वर्यम् ॥ सात्त्विकमेतद्रूपं, तामसमस्माद्विपर्यस्तम् ॥२३॥ इति बुद्ध्यादयो नैयायिकाभिमता आत्मविशेषगुणा अप्यत्रैवान्तर्भवन्ति, अव्यक्तस्यैव ज्ञानस्य स्मृतिजनकत्वाभ्युपगमेन केवलं वासनाया एवानभ्युपगमात्, एवं आत्मा न कर्तेत्यभिमतमेवास्माकमिति चेत्॥ तदेतदखिलं पवनप्रेरिततूलवत्तरलतरमेव॥ कृतिचैतन्ययोः सामानाधिकरण्यानुभवेन चेतनस्यैव कर्तृत्वात्, न चायं भ्रमो, बाधकाभावात्, न चाऽऽत्मनः कर्तृत्वे परिणामित्वप्रसङ्गो बाधकः, बुद्धेः कृतिसमवायेऽपि तस्य बाधकत्वात् परिणामिनो घटादेरकर्तृत्वस्य दृष्टत्वाद् दृष्टविरोधादयमदोष इति तु तुल्यं, कर्तु-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे आत्मविभुत्वखण्डने सांख्यमतस्योपवर्णनपूर्वकं खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रचेतनकार्यत्वादचेतनत्वापत्तिर्बाधिकेति चेत्, न, 'वीतरागजन्मादर्शनाद्' इति न्यायेन तस्यानादित्वस्यैव सिद्धेः, बुद्धेरनित्यत्वेन तत्र नानाभवार्जितवासनावस्थानायोगात्प्रकृतेश्च पूर्वबुद्धिवासनानुवृत्त्यभ्युपगमेऽपसिद्धान्ताद् बुद्धिनिष्ठवासनाया अनियामकत्वाच्च, न च सम्बन्धविशेषान्नियमोपपत्तिः, स्थूलरागे सूक्ष्मवासनाया अप्रयोजकत्वात्, न च प्रकृतौ सूक्ष्मतदभ्युपगमेऽपि प्रमाणमस्ति, अन्यथा सूक्ष्मरागादियोगाद् भावाष्टकसम्पन्नतया प्रकृतिरेव बुद्धिर्भवेत्, स्थूलतद्योग एव बुद्धित्वनियत इति चेत्, तथाप्यप्रामाणिकसूक्ष्मतदभ्युपगमे घटादावपि तदापत्तिः, तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कारणधर्माणां च कार्ये सङ्क्रमाभ्युपगमात् स्थूलबुद्धिविलयेऽपि सूक्ष्मतत्सत्त्वाभ्युपगमान्नानुपपत्तिरिति चेत्, न, मुक्तावपि तत्सत्त्वप्रसङ्गात्, अधिकाराभावान्नायमिति चेत्, नन्वयमधिकारोऽपि धर्माधर्मवासनायोगः, धर्माधर्मौ च बुद्धिधर्माविति कथं तत्सत्त्वे तद्विलयः, स्थूलताद्विलय एव निरधिकारित्वमिति चेत्,तर्हि स्थूलबुद्ध्यनुत्पादसमये सूक्ष्मबुद्धिसत्त्वाभ्युपगमेऽपि तस्या निरधिकारित्वेन कार्याजनकतया संसारोच्छेदप्रसङ्गः, अन्यथा तु मोक्षोच्छेदप्रसङ्गः । किञ्चैवमधिकार एव संसारहेतुरस्तु किं प्रकृत्या,बुद्धिस्तु चेतनैव न तत्त्वान्तरं, मानाभावात्, न च दर्पणे मुखस्येव बुद्धौ पुरुषस्योपरागः सम्भवति,अतात्त्विकस्य सम्भवे शशशृङ्गस्यापि सम्भवप्रसङ्गात्, असतो विज्ञानस्याप्यभावात्तद्वैज्ञानिकाकारस्यापि दुरुपपादत्वाद्,अन्यथा सर्वदैवासद्भावानापत्तेः,विषयोपरागोऽपि न तत्र सम्भवी,अन्यथा मेर्वादिज्ञाने मेर्वाद्याकारोऽपि तत्र स्यात्, तस्माद् बुद्ध्युपलब्धिज्ञानशब्दानां पर्यायत्वमेव युक्तं,अहङ्कारोऽपि विकल्परूपो मानस एव व्यापारोऽन्यथा स्वप्ने यथार्थाहङ्कार इव विपरीताहङ्कारोऽपि न स्याद् , इदं पुनरवशिष्यते यत्कस्यचिदहमिति सङ्कल्पात्स्वगुणाभिष्वङ्गपरगुणद्राहेपारणाम: समुज्जृम्भते कस्यचित्तु नेत्यत्र किं नियामकमिति,तत्र तु मानं मोहनीयकर्मण उदयाऽनुदये एव तन्त्रे,एकस्यापि कषायमोहनीय-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे आत्मविभुत्वखण्डने सांख्यमतस्व खण्डनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्मणः क्रोधादिव्यापारभेददर्शनेन भेदकल्पनात्, एवं च कृत्यादीनां चेतनासामानाधिकरण्ये सिद्धे बुद्ध्यादितत्त्वकल्पना युक्तिहीनैवेति सङ्क्षेपः ॥ स्यादेतद्, आत्मनो जन्यधर्माश्रयत्वे कौटस्थ्यविरोधो धर्मधर्मिणोरभेदे कार्यानित्यत्वेन कारणस्याप्यानित्यत्वप्रसङ्गात्, न च तयोरभेद एव युक्तो विरुद्धधर्माध्यासलक्षणस्य भेदस्य घटपटयोरिव प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति वाच्यं, श्यामत्वरक्तत्वाभ्यां वैधर्म्येऽपि घटस्येव गुणगुणिभावेन गुणगुणिनोरन्योन्याभावायोगादिति, मैवं, आत्मनो नित्यानित्यत्वस्यैव युक्तिसिद्धत्वाद् धर्मधर्मिणोर्भेदाभेदस्य सप्रपञ्चं स्याद्वादरहस्ये व्यवस्थापितत्वात्, कूटस्थत्वं तु तत्र समानजातीयद्रव्यपर्यायद्वाराऽपरिणामित्वं अना(आ)त्मेतराभिन्नत्वं वेति सर्वमवदातम् ॥ २६ ॥ सर्वगतत्वे दूषणान्तरमप्याह–

सर्वासर्वग्रहोऽप्येवं, नित्यस्यान्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षणेऽपि देहस्या–पेक्षायामतिगौरवात् ॥२७॥ ॥८५॥

आत्मनः सर्वगतत्वे त्रिभुवनभवनोदरस्थाखिलपदार्थसार्थप्राप्त्यवश्यम्भावात् मनसः प्राप्यकारित्ववादिनः सर्वोपलब्धिप्रसङ्गः, प्राप्त्यविशेषेऽपि कतिपयार्थानुपलम्भे चाविशेषात्सर्वानुपलम्भप्रसङ्गः, यदुक्तं–"सव्वासव्वग्गहण–प्पसंगदोसाइओ वावि ॥२१६॥" [सर्वासर्वग्रहणप्रसङ्गदोषादितो वाऽपि] अथ मनसो बहिरस्वातन्त्र्याद् बहिरर्थग्रहसामग्रीनियमादेव मनसो बहिरर्थग्रहनियम इति चेत्, तथापि शरीरावच्छेदेनैव सुखादिकमुपलभ्यते न घटाद्यवच्छेदेनेत्यत्र किं नियामकं, आत्मनः स्वगुणजनने शरीरस्यापि सहकारित्वान्नान्यत्र तदुत्पत्तिरिति चेत्,न,नित्यस्य सहकार्यपेक्षायोगात्, तथाहि, सहकारिणा किं तत्र कश्चिदतिशयः क्रियते न वा, क्रियते चेत्, स किं अर्थान्तरभूतोऽनर्थान्तरभूतो वा, आद्ये न किञ्चित् कृतं स्यात्, अन्त्ये तु तदनर्थान्तरभूतातिशयकरणे तस्यापि करणप्रसङ्गः । अकरणपक्षे तु न तस्य सहकारित्वम्, अन्यथा जगतोऽपि सहकारित्वप्रसङ्गादित्याहुः, ननु सह-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वखण्डने आत्मविभुत्वस्य खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कारित्वं नातिशयजनकत्वं कार्यजन्माजन्मनोः सहकारिसन्निधानासन्निधानाभ्यामेवोपपत्त्यावतिशयस्याकल्पनात्, किं त्वेककार्यकारित्वं, तच्च नित्यत्वेऽप्यात्मनः शरीरे निराबाधमिति चेत्, न, तथापि ज्ञानादावनन्तशरीरादिहेतुत्वकल्पने गौरवात्, आत्मनः शरीरव्यापित्वकल्पनस्यैव युक्तत्वात् ॥२७॥ न चाऽऽत्मनो विभुत्वसाधनसावधानं बलवत्प्रमाणमपि जरीजृम्भत इत्याह—

विभुत्वसाधकं किञ्चित्, प्रमाणमपि नेक्ष्यते ॥ स्वसम्बन्धाविशेषेणा-दृष्टं यत्कार्यमर्जति ॥ २८ ॥ ८६ ॥

न ह्यदृष्टस्य कार्यमात्रं प्रति हेतुत्वात्तस्य च स्वाश्रयसयुक्तसंयोगेनैव हेतुत्वकल्पनादात्मनो विभुत्वासिद्धिः, प्रध्वंसे व्यभिचारात् कालिकादिसम्बन्धेनैव तस्य तत्र हेतुत्वौचित्याद्, वस्तुतस्तु कार्यत्वं कालिकसम्बन्धेन घटत्वपटत्वादित्त्ववमननुगतमिति न कार्यतावच्छेदकं, न च कार्यमात्रहेतुत्वे तस्य प्रमाणमस्तीति सुखदुःखयोरेव धर्माधर्मरूपस्यादृष्टस्य हेतुत्वमास्थेयम्, अथ वह्नेरूद्ध्वंज्वलनादावदृष्टमवे नियामकम् । तदुक्तम्। "न ज्वलत्यनलस्तिर्यग्, यदूर्ध्वं वाति नाऽनिलः ॥ अचिन्त्यमहिमा तत्र, धर्म एव निबन्धनम् ॥१॥" न च शरीरव्यापित्वे प्राणिनोऽदृष्टस्य वह्न्यादिसम्बन्धः सम्भवतीति तस्य विभुत्वमेव युक्तमिति चेत्, न, स्वाश्रयसंयुक्तसंयोगसम्बन्धेनादृष्टस्य घटादावपि सत्त्वाद्, वह्नित्वविशिष्टस्वाश्रयसंयुक्तसयोगसम्बन्धेन तस्य हेतुत्वे तु स्वाश्रयसंयुक्तसंयोगविशिष्टवह्नित्वसम्बन्धेन तथात्वे विनिगमनाविरहात्सम्बन्धविशेषेणैव तद्धेतुत्वौचित्यात्, एतेन (यदपि) "शत्रुजिघांसया कृतेन श्येनयोगेन यज्वन्येवादृष्टविधानात्तस्य च शत्रावसम्बन्धात्कथमात्मविभुत्वं विना तत्फलोपपत्तिः (तदपि न, शक्तिविशेषरूपस्य कारणत्वस्यासम्बन्धेऽप्यविरोधात्सम्बन्धघटितत्वे वा तस्य प्रकृते सम्बन्धविशेषकल्पनावश्यकत्वाद्) इति" परास्तम् ॥ २८ ॥ विभुत्वसाधकान्तरं निराकरोति—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ नित्यमहत्त्वेन, व्योमवद्विभुतास्य चेत् ॥ नैवं तत्परिमाणं हि, यदुत्कर्षापकर्षभाक् ॥ २९ ॥ ८७ ॥

अथ परे प्रतिपादयेयुरात्मनो महत्त्वं तावन्निर्विवादं द्रव्यचाक्षुषं प्रति कल्पनीयहेतुभावस्य महत्त्वस्य लाघवेन जन्यद्रव्यसाक्षात्कारत्वावच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वकल्पनात्, आत्मसाक्षात्कारनिर्वाहायात्मनि महत्त्वस्यावश्यकत्वात्, तच्च महत्त्वं न जन्यं, कार्यं हि महत्त्वं अवयवबहुत्वजन्यं स्यात्तन्महत्त्वजन्यं वा प्रचयजन्यं वा, न च त्रितयमपि निरवयवस्यात्मनः सम्भवतीति ॥ एवं चायं प्रयोगः, आत्मा विभुर्नित्यमहत्त्वादाकाशवदिति चेत्, अत्रोच्यते–अत्र हि परमप्रकृष्टपरिमाणवत्त्वलक्षणं विभुत्वं साध्यते, न च नित्यमहत्त्वस्य परमप्रकर्षविपक्षबाधको जागर्ति तर्कः, अपकृष्टत्वे तस्य जन्यत्वापत्तिर्बाधिका, गगनमहत्त्वावधिकापकर्षस्य बहुत्वजन्यतावच्छेदकत्वादिति चेत्, न, परमाणुपरिणामसाधारणतया तस्य कार्यतानवच्छेदकत्वात् परमाणुपरिमाणे व्यभिचारेण त्रुटिमहत्त्वावधिकोत्कर्षेण समं साङ्कर्यात्तादृशापकर्षस्य जातित्वासिद्धया बहुत्वजन्यतानवच्छेदकत्वाच्च, वस्तुत आत्मपरिमाणमपि प्रचयविशेषादुत्कर्षापकर्षौ भजज्जन्यमेवेति हेतोरेवासिद्धिः ॥२९॥ नन्वेवमात्मनः सावयवत्वापत्तिरिति चेत्, किञ्चातः। सावयवत्वे सति तस्य कार्यत्वं स्यादिति चेत्, किमिदं कार्यत्वं प्रागसतः सत्तालाभः पूर्वाकारपरित्यागेनोत्तराकारोपादानं वा, नाद्यः, असत उपायसहस्रेणाप्युत्पादयितुमशक्यत्वात्, अन्यथा शशविषाणस्याप्युत्पत्तिप्रसङ्गात्, अन्त्ये तु तादृशं कार्यत्वमात्मन इष्टमेवेत्यभिप्रेत्याह–

एवं सावयवत्वं त–न्नित्यत्वं नैव बाधते ॥ कथञ्चित्परिणामित्वं, विना तन्न घटेत यत् ॥ ३० ॥८८॥

न हि सावयवत्वेनात्मनः कथञ्चित्परिणामित्वलक्षणेऽनित्यत्वे द्रव्यैकरूप्यलक्षणनित्यत्वव्याघातः येन प्रतिसन्धानाद्यभावप्रसङ्गः,नच सावयवत्वे तस्य प्राक्प्रसिद्धसमानजातीयावयवारभ्यत्वप्रसक्तिः, अवयवजन्य एव कार्येऽवयवानां जनकत्वात्, अस्य

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वखण्डने आत्मविभुत्वस्य खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वतथात्वात्, न च तादृशकार्येऽपि घटादौ प्राक्प्रसिद्धसमानजातीयकपालसंयोगारभ्यत्वं दृष्टं, कुम्भकारादिव्यापारान्वितान्मृत्पिण्डात्प्रथममेव पृथुबुध्नोदराद्याकारस्योत्पत्तिप्रतीतेरित्यप्याहुः ॥३०॥ प्रमाणासिद्धेऽर्थे न किञ्चिदन्यद्बाधकमित्यन्यत्रातिदिशति—

मूर्त्तत्वादिप्रसङ्गोऽपि, वारणीयोऽनया दिशा ॥ मानराजादरे दुष्टा, हन्तापत्तिर्न पत्तिवत् ॥३१॥८९॥

एवञ्च मूर्त्तशरीरानुप्रवेशेनात्मनो मूर्तत्वापत्तिरपि परास्ता, यतः किमिदं मूर्तत्वं इयत्तावच्छिन्नपरिमाणयोगो रूपादिसन्निवेशो वा, आद्ये इष्टापत्तिः, न ह्यविभुद्रव्यस्य मूर्तत्वं न मन्यते कश्चिद्विपश्चित्, नान्त्यो मूर्तानुप्रवेशिनो रूपादिमत्त्वव्याप्तिविरहान्मनस्येव व्यभिचारात्, न च मूर्तमहत्त्वेनापि तद्व्याप्तिरस्ति, अप्रयोजकत्वाद्, एवमात्मनो मूर्तद्रव्यत्वेऽचेतनत्वापत्तिरपि परास्ता, सहचारदर्शनमात्रेण व्याप्त्यग्रहाद्, अन्यथा विभुत्वेऽप्याकाशादिवत्तथात्वं स्यात्, एवं च बालयुवशरीरपरिमाणभेदेनात्मनो भेदापत्तिः, परिमाणभेदे द्रव्यभेदावश्यम्भावात्, तथाचान्यदृष्टस्यान्यस्य स्मरणानुपपत्तिरित्यधरीकृतं, कथञ्चिद्भेदेऽपि तस्याभेदाभ्युपगमात्सर्पस्येव सफणविफणावस्थयोः, अत्यन्तभेदे तु प्रत्यभिज्ञाद्यनुपपत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः॥ तथा शरीरखण्डने शरीरव्यापिनो जन्तोरपि खण्डनप्रसङ्ग इत्यप्यसमीक्षिताभिधानं, शरीरखण्डने कथञ्चित् तत्खण्डनस्येष्टत्वाच्छरीरसम्बद्धात्मप्रदेशेभ्यो हि कतिपयात्मप्रदेशानां खण्डितशरीरप्रदेशानुप्रवेश आत्मनः खण्डनं, तच्चात्र विद्यत एव, अन्यथा खण्डितशरीरप्रदेशस्य कम्पोपलब्धिर्न स्यात्, न ह्यात्मविभुत्ववादेपि शरीरं तदवयवं विना वाऽन्यत्रात्मगुणोपलब्धिः, न च खण्डितशरीरप्रदेशोऽपि शरीरमेव, अथ पूर्वावयवसंयोगाविशेषेऽपि संयोगान्तरेणाऽदृष्टवशात् खण्डशरीरद्वयोत्पत्तेर्न दोष इति चेत्, न, एकदा शरीरद्वयोत्पत्तेर्विरोधादविरोधे वैकदोभयत्र मनःसंयोगविरहात् कथञ्चैकदैव तयोः कम्पोपलब्धिः, अदृष्टवशात् खण्डितशरीरे मनोन्तरप्रवेशाभ्युपगमान्न दोष इति चेत्, न, तथाप्यात्मविशेषगुणयोग-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वस्य खण्डने आत्मविभुत्वस्य खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्यानभ्युपगमासिद्धान्तविरोधात्, अवच्छेदकभेदेन विभुविशेषगुणानामपि युगपदुत्पत्तिरिष्टैव, शब्दस्थले दृष्टत्वादिति चेत्, न,तथापि मुहूर्त्तानन्तरमपि छिन्नगोधाशरीरे कम्पोपलब्धिप्रसङ्गात्, तदानीं ततो मनोविगमः कल्प्यत इति चेत्, न, एतादृशकष्टकल्पनापेक्षया तत्रात्मप्रदेशानुप्रवेशोऽदृष्टवशाच्च कालान्तरे तत्सङ्घट्टनमिति कल्पनाया एव युक्तत्वादिति दिग् ॥ एवमदृष्टवदात्मसंयोगं विना परमाण्वाद्यकर्मानुपपत्तावन्त्यसंयोगं विना तन्निमित्तशरीरानुत्पत्तौ शरीरव्यापित्ववादे सर्वेषामनायाससिद्धो मोक्षः स्यादित्यप्युन्मत्तभाषितप्रायं, विभुत्ववादेऽपि सकलपरमाणुग्रहणाभावस्यादृष्टस्वभावाधीनत्वेन शरीरव्यापित्ववादेऽप्यसम्बद्धानामपि परमाणूनां स्वभावत एव नियतानां ग्रहणान्नियतशरीरोत्पत्तेरविरुद्धत्वात्, तदेवमसमुद्धतस्यात्मनः शरीर एव वृत्तिः, समुद्घातमहिम्ना तु बहिरपीति सुव्यवस्थितम्, ॥ ३१ ॥ विभुत्वनये तु महतीयमनुपपत्तिरित्याह—

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसःप्राप्यकारित्वखण्डने आत्मविभुत्वस्य खण्डनम् ॥

विभुत्वे पुनरात्मा स्या-देक एवान्तरिक्षवत् ॥ उपपत्तेर्व्यवस्थाया, विविधोपाधिभेदतः ॥ ३२ ॥९०॥

आत्मनो विभुत्ववादे ह्येकात्मपरिशेषापत्तिरेकत्रैव नानात्मकार्योपपत्तेः, एकत्र व्योम्नि नानाघटसंयोगवदेकत्रैवात्मनि नानामनःशरीरेन्द्रियसंयोगानामेकाकाशसमवेतनानाशब्दवच्चैकात्मसमवेतनानासुखदुःखादीनां युगपदुत्पत्तिसम्भवात्, अथावच्छेदकतासम्बन्धेन शब्दोत्पत्तौ संयोगादिरूपस्यासमवायिकारणस्य नियामकत्वादेकत्रापि व्योम्नि देशभेदेन नानाशब्दोत्पत्तिर्युज्यतामत्र तु कथमिति चेत्,न, अत्राप्यवच्छेदकतासम्बन्धेनात्मविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति प्राणशरीरसंयोगादेरसमवायिकारणस्य नियामकत्वात् सुषुप्तिकाले ज्ञानानुत्पत्तिनिर्वाहाय च त्वङ्मनोयोगस्य शरीरनिष्ठतया हेतुता वाच्या, त्वयाप्यात्मनिष्ठतया तद्धेतुताकल्पनात्,एवं च परामर्शादीनामपि शरीरनिष्ठतयैवानुमित्यादिहेतुत्वान्न चैत्रशरीरावच्छेदेन परामर्शान्मैत्रशरीरावच्छेदेनानुमित्याद्या-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पत्तिः, वस्तुतश्चैत्रपरामर्शसमवायिनि मैत्रे न चैत्रशरीरावच्छिन्नानुमित्यापत्तिः, कार्यतानवच्छेदकरूपेणापत्त्यभावात्, न च तवैकैकात्मस्थलेऽनन्तशरीराणां तत्त्वतत्त्वेन तत्तदात्मगुणं प्रति हेतुता वाच्या, मम तु समवायेन तदात्मसमवेतगुणत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन तदात्मत्वेनावच्छेदकतया तं प्रति च तदात्मशरीरत्वेन हेतुताद्वयं युक्तमेव कल्पनीयं, अथ तदात्मीयत्वं न तदात्मसंयोगोऽतिप्रसङ्गात्किन्तु तदात्मादृष्टोपगृहीतत्वं तच्चाननुगतमेवेति तवापि नानैव हेतुत्वमिति चेत्, न, स्वसमवेतादृष्टोपगृहीतत्वसम्बन्धेन तदात्मव्यक्तिवच्छरीरत्वेनानुगतस्यैव हेतुत्वादिति वाच्यं, शब्दादौ तच्छरीरावच्छिन्नं प्रति तच्छरीरत्वेन हेतुतया क्लृप्तयैव निर्वाहाद्धेतुत्वान्तराकल्पनया ममैव लाघवात्, अथवाऽवच्छेदकतया कार्योत्पत्तावपि प्रागभाव एव नियामक इति न किञ्चिदनुपपन्नम्, अथादृष्टफलयोः प्रतिनियमदर्शनान्नानात्मानो व्यवस्थाप्यन्तेऽन्यशरीरजनितस्यादृष्टस्यान्यशरीरावच्छेदेन फलजनकत्वेऽतिप्रसङ्गान्नियामकान्तरस्य चादर्शनादिति चेत्, न, तच्छरीरजनिताऽदृष्टस्य तज्जन्यशरीरावच्छेदेन फलजनकत्वेऽतिप्रसङ्गाभावात्, एवं च जननमरणादिनियमोऽप्युपपादित इति दिग् ॥ नन्विदं भवतामपि समं दूषणं शरीरव्यापिनानात्मकल्पनापेक्षया विभोरेकस्यैवात्मनःकल्पनौचित्यात्, सिद्धान्तविरोधस्त्वावयोःसमान एव,एकात्मवादे मोक्षार्थितया कस्यापि प्रवृत्तिर्न स्यात्किञ्चिच्छरीरावच्छेदेन सकलदुःखध्वंसलक्षणस्य मोक्षस्य सिद्धत्वात्सिद्धे इच्छाविरहात्, तच्छरीरावच्छेदेन दुःखध्वंसे तु नेच्छा, सर्वं दुःखं नश्यत्विति कामनयैव परिव्रज्यादौ प्रवृत्तेरिति समाधानमप्यावयोः समानमिति चेत्,न, सिद्धिपदप्राप्तीच्छयैव तदुपायेषु प्रवृत्तेः, प्रेत्यभावादिव्यवस्थया च नानात्मनां भेदस्याविभुत्वस्य च सिद्धयोभयनिरासे तात्पर्यात्, नहि दुःखध्वंसार्था पुरुषाणां प्रवृत्तिरपि तु सुखार्थैवेति सर्वमवदातम् । तदेवं भावमनो बहिर्गत्वा वस्तुप्रकाशयेदिति विकल्पो निरस्तः ॥३२॥

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसःप्राप्यकारित्वस्य खण्डने आत्म विभुत्वस्य खण्डनं, तत्रैकात्मवादापत्तिश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसःप्राप्यकारित्वस्य खण्डनम् ॥

अथ द्रव्यमनो बहिर्गत्वा प्रकाशयिष्यतीति द्वितीयविकल्पं निराकरोति—

बहिर्द्रव्यमनो गच्छे–त्किं यद्धीहेतुरेव न ॥ निमित्तमपि नो तस्या–करणं वा बहिर्गतम् ॥३३॥९१॥

काययोगसाचिव्येन जीवगृहीतचिन्ताप्रवर्तकमनोवर्गणान्तःपातिद्रव्यनिकुरुम्बलक्षणं द्रव्यमनःपुद्गलस्कन्धत्वादात्मधर्मस्य ज्ञानस्य जनकमेव न भवति कथञ्चित्, अत एव हेतुहेतुमद्भावात्किं तद्बहिर्निर्गमाचिन्तयाऽजागलस्तनायमानया। अथ तथापि चक्षुरादिनेव प्रेरितो जन्तुर्ज्ञानं जनयतीति प्रदीपवत्तत्करणं स्यादिति चेत्, तथापि स्थितेनैव तेन ज्ञानं जननीयं स्पर्शनादिवत्करणत्वादेव च तन्न बहिरेति स्पर्शनादिवदिति सुव्यवतिष्ठते, एवं च शरीरस्थितस्यापि तस्य पद्मनालतन्तुन्यायेन बहिर्निःसरणं भविष्यतीति शङ्का परास्ता। आह च–"दव्वमणो विन्नाया, ण होइ गंतुं वि किं तओ कुणइ॥ अह करणभावओ तस्स, तेण जीवो वियाणिज्जा ॥२१७॥" [द्रव्यमनो विज्ञातृ, न भवति गत्वा च किं ततः करोतु॥ अथ करणभावतस्तस्य, तेन जीवोऽपि विजानीयात् ॥] "करणत्तणओ तणुसंठिएण, जाणेज्ज फरिसणेणं व ॥ एत्तोच्चिय हेऊओ, न नीइ बाहिं फरिसणं व ॥ २१८ ॥" [करणत्वतस्तनुसंस्थितेन, जानीयात्स्पर्शनेनेव॥ इत एव हेतोर्न निर्गच्छति बहिः स्पर्शनमिव ॥२१८॥] ॥३३॥ नन्वनुग्रहोपघाताभावान्मनोऽप्राप्यकारीति प्राक्प्रतिज्ञातं स एव चाऽसिद्धश्चिन्ताहर्षादिना तदुपघातानुग्रहानुमानादितिभ्रान्तस्याशङ्कां निराचिकीर्षुराह–

चिन्ताहर्षादिना जीवो–पघातानुग्रहो यदि ॥ किं ताभ्यां ज्ञेयसंसर्गा–न्न स्वतौ मनसो यतः ॥३४॥९२॥

परः खल्वेवमनुमन्यते यद्दौर्बल्योरःक्षतादिलिङ्गैर्मनसः शरीरापचयप्रयोजक आर्त्तरौद्राभिवृद्धिमहिम्ना च हृद्रोगादिप्रयोजक उपघातो रोमाञ्चोदयाद्यनुमेयो हर्षादिरूपश्चानुग्रहो भवतीति तस्य तदभावाभिधानमसङ्गतमिति। यदाह–"नज्जइ उवघाओ से,

दोब्बल्लोरक्खयाइलिंगेहिं॥जमणुग्गहो य हरिसा–इएहिं तो सो उभयधम्मो, ॥२१९॥" [ज्ञायते उपघातस्तस्य दौर्बल्योरःक्षतादिलिङ्गैः॥ यदनुग्रहश्च हर्षादि–भिस्ततः स उभयधर्मा]तदसङ्गतं, यतो द्रव्यमनस्तावन्मनस्त्वपरिणतानि पुद्गलसङ्घातरूपं शोकादिपीडया हृदयदेशाश्रितनिविडमरुद्ग्रन्थिवज्जीवं पीडयेत् तदेव च मनस्त्वपरिणतेश्च पुद्गलसङ्घातरूपं हर्षाद्यभिनिवृत्त्या भेषजवज्जीवमनु गृह्णीयात्तावता ज्ञेयनिमित्तकमनोनुग्रहोपघातकृताभिधानामिदम्।यदाह-"जइ दव्वमणोतिबली,पीलिज्जा हिययनिरुद्धवाउव्व। तयणुग्गहेण हरिसा-दओव्व नेएण किं तत्थ॥२२०॥"[यदि द्रव्यमनोऽतिबलि,पीडयेद् हृन्निरुद्धवायुरिव ॥ तदनुग्रहेण हर्षादय इव ज्ञेयस्य किं तत्र] अन्तःकरणं हि न बहिर्गत्वा ज्ञेयमर्थं जानाति न वा तत्स्वसमीपमानीय प्रकाशयति न वा ज्ञेयकृतानुग्रहोपघातभाग् भवतीति भुजमुत्क्षिप्य वयं वदामो,न तु तज्जीवस्यानुग्रहोपघातावपि जनयतीति वयं वदामः, पुद्गलेभ्य एव तेन तल्लाभात्तथा चेदमस्मान् प्रत्यनिष्टोपदर्शनं वादिनोऽविचार्यवादितामेव व्यञ्जयति। यदाह-"नीउं आगरिसिउं वा, न नेअमालंबइ त्ति णियमोऽयं ॥ तन्नेयकया जेऽणु-ग्गहोवघाया य ते नत्थि॥२२२॥"[निर्गत्याकृष्य वा न ज्ञेयमालम्बत इति नियमोऽयम्॥तज्ज्ञेयकृतौ यावनुग्रहोपघातौ च तौ न स्तः]"सो पुण सयमुवघायंण–मणुग्गहं वा करेज्ज को दोसो॥ जमणुग्गहोवघाया, जीवाणं पोग्गलेहिंतो ॥२२३॥"[तत्पुनः स्वयमुपघातमनुग्रहं वा कुर्यात्को नाम दोषः॥ यदनुग्रहोपघातौ, जीवानां पुद्गलेभ्यः] ॥३४॥

ननु चिन्तनीयवस्तुसंसर्गादेव हर्षशोकरूपावनुग्रहोपघातौ भविष्यतो न तु द्रव्यमनस इति चेत्,न,एवं सत्योदनादिचिन्तया बुभुक्षाद्यपगमप्रसङ्गात् । ननु तर्हि द्रव्यमनसस्तद्धेतुत्वे किं प्रमाणमित्यत आह—

देहोपचयदौर्बल्ये, मनःपुद्गलहेतुके ॥ आहारपुद्गलादीनां, तद्धेतुत्वेन निश्चयात् ॥ ३५॥९३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीरस्य पुष्टिहानी तावत्पुद्गलजन्ये इष्टाऽनिष्टाहाराभ्यवहारेण तद्दर्शनाद्, अथेष्टादप्याहाराद्रोगिणां पुष्ट्यदर्शनादनिष्टादपि च भेषजादेस्तद्दर्शनाद् व्यभिचार इति चेत्,न, धातुसाम्यवैषम्यद्वारा तयोस्तद्धेतुत्वात्, तदिह चिन्ताहर्षसमये जायमाने शरीरपुष्टिहानी पुद्गलसम्बन्धमपेक्षमाणे उपस्थितत्वान्मनःपुद्गलसम्बन्धकल्पनायैव प्रभवतो,नचौदर्याग्निपरिपाकजनितातिशयानामेवाहारपुद्गलानां तद्धेतुत्वावधारणान्नाऽनीदृशानां मनःपुद्गलानां तद्धेतुत्वमिति वाच्यम्, स्वत एवातिशयितानां मनःपुद्गलानां तद्धेतुत्वौचित्यात्, अन्यथा हृद्ग्रन्थेरपि दौर्बल्यजनकत्वं न स्यात्, ननु चिन्ताहर्षयोरेव साक्षात्तज्जनकत्वमस्तु किं नानामनःपुद्गलकल्पनया ?,वदति च–"चिन्तया वत्स ! ते जातं, शरीरकमिदं कृशम्" इति चेत्, न, एकशक्तिमत्त्वेन पुद्गलत्वेन तद्धेतुत्वकल्पनात्प्रमाणाविरोधेन तस्यागायोगात्तयोरपि मनोजन्यत्वेन मनस एव तद्धेतुत्वकल्पनौचित्याच्च, आकाशवदमूर्तयोश्चिन्ताहर्षयोर्न तज्जनकत्वमिति प्राञ्चः ॥ चिन्तयेत्यादिकश्च प्रयोग औपचारिक इति दिग् ॥ तदिदमभिप्रेत्याह–" इट्ठाऽणिट्ठाहार–ऽभवहारा होन्ति पुट्ठिहाणीओ ॥ जह तह मणसो ताओ, पोग्गलगुणओत्ति को दोसो ? ॥२२१॥" [इष्टानिष्टाहाराभ्यवहारे भवतः पुष्टिहानी । यथा तथा मनसस्ते पुद्गलगुणत इति को दोषः ॥] स्यादेतत्, शोकहर्षव्यापारनैरन्तर्येण नाडीविशेषप्रयत्नप्रेरितद्रव्यान्तरादेव तदुपपत्तौ किं मनः-कल्पनयेति, मैवं, शोकहर्षादिकार्यजनकानां मनोद्रव्याणामेव कल्पनात्तत्र संज्ञामात्र एव परेषां विवादात्, इष्टानिष्टमनोद्रव्योपादाननियम एव कुत इति चेत्, अदृष्टवशादेवेति सर्वमवदातम्, ॥ ३५ ॥ स्वप्नविज्ञानेन मनसः प्राप्यकारित्वं सेत्स्यतीति निराकर्तुमाह–

मनसः प्राप्यकारित्वं,स्वप्नेनापि न सिद्ध्यति ॥ यदसौ न तथारूपौ,व्यभिचारादिदर्शनात् ॥३६॥ ९४ ॥

'मम मनो मेरौ गतं' इति स्वप्नविज्ञानदर्शनान्न मनसः प्राप्यकारित्वं सिद्ध्यति तस्याप्रमाणत्वात्प्रबोधे तद्विपरीतदर्शनात्,

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे स्वप्नदृष्टांतेन मनसःप्राप्यकारित्वव्यवस्थापयितुः खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे स्वप्नदृष्टांतेन मनसःप्राप्यकारित्वव्यवस्थापयितुर्मतखण्डनम्॥

नचाशु गमनागमनशीलस्य मनसस्तदा ततः परावृत्त्या तद्विपरीतदर्शनमुपपत्स्यत इति वाच्यं, स्वप्नस्य प्रामाण्यानिश्चयेन तथाकल्पनाऽयोगात्तेन शरीरस्यापि तत्प्राप्तिग्रहात्, न च सापि सम्भवति, कुसुमपरिमलाद्यजनितश्रमाद्यनुग्रहोपघाताभावादिह स्थितैः सुप्तस्याऽत्रैव दर्शनाच्च,तदिदमाह–"सिमिणो ण तहारूवो,वभिचाराओ अलायचक्कं व॥वभिचारो अ सदंसण-मुवघायाणुग्गहाभावा ॥२२४॥" [स्वप्नो न तथारूपो व्यभिचारादलातचक्रमिव ॥ व्यभिचारश्च स्वदर्शना–दुपघातानुग्रहाभावात्]"इह पासुत्तो पेच्छइ, सदेहमन्नत्थ ण य तओ तत्थ॥ ण य तग्गयोवघाया–णुग्गहरूवं विबुद्धस्स ॥२२५॥ [इह प्रसुप्तः प्रेक्षते स्वदेहमन्यत्र न च सकस्तत्र॥ न च तद्गतोपघातानुग्रहरूपं विबुद्धस्य]॥२६॥ ननु प्रबुद्धस्य हर्षविषादोन्मादमाध्यस्थ्यदर्शनात् स्वप्नेऽपि जिनस्नात्र–तदपाय–कामिनीकुचकलशसम्पर्कसंस्तारस्वरूपदर्शनाद्यर्थक्रियानुमानात् न तस्य व्यभिचारित्वं भविष्यतीत्यत आह—

हर्षादिकं ज्ञानफलं, स्वप्ने नैव क्रियाफलम् ॥ तत्सम्भवे बुभुक्षाऽपि, क्षीयेतौदनदर्शनात् ॥ ३७ ॥ ९८ ॥

न खलु स्वप्ने जिनस्नात्रादिकरणादेव प्रबुद्धस्य हर्षादिप्रादुर्भावः केनापि स्वप्ने तत्क्रियाऽदर्शनात्किं तु रागादिमहिम्ना तदभिमानादेव, दृश्यते हि जाग्रतोऽपि दूराज्जरतीमपि मदिरोन्मादाविघूर्णमाननयनां गतिविलासविडम्बितकलहंसगमनां ससम्भ्रमं निजभुजोत्क्षेपविहितपीवरकुचकलशोन्नमनामादरेण तरुणीमिव पश्यतस्तरुणस्य हर्षोन्मादादिप्रादुर्भावस्तस्मादिष्टप्राप्त्यादेरिव तदभिमानस्यापि सुखादिहेतुत्वमास्थेयं। अत एव रागसहकृतस्यैव तस्य तज्जनकत्वात्तद्विरहिणो मुनेः स्वप्ने कामिनीदर्शनादिनापि न हर्षाद्युदयोऽपि तु माध्यस्थ्यमेव,'मोहहीनस्य स्वप्न एव न' इति तु न वक्तुं युक्तम्, मोहविगमाधीननिर्मोहत्वस्य दर्शनावरणोदयप्रसूतनिद्राद्यविरोधित्वात्, यदि तु स्वप्नेऽपि सुखादिकं क्रियाफलमिति क्रियैव स्यान्नान्यथा, तदा तदानीमोदनादिदर्शनाद् बुभु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षाविलयप्रसङ्गे बुभुक्षाक्षामकुक्षेर्निद्रायामेव प्रवृत्तिः स्यान्न तु पाकादाविति विपरीतमेतद्, आह च–"दीसन्ति कासइ फुडं, हरिस-विसायादओ विबुद्धस्स॥सिमिणाणुभूअसुह–दुक्ख–रागदोसाइलिंगाइं॥२२६॥"[दृश्यन्ते कस्यचित्स्फुटं हर्षविषादादयो विबुद्धस्य॥ स्वप्नानुभूतसुखदुःख–रागद्वेषादिलिङ्गानि] "न सिमिणविन्नाणाओ, हरिसविसायादओ विरुज्झंति॥ किरियाफलं तु तित्ती-मदवह-बंधादओ णत्थि ॥२२७॥" [न स्वप्नविज्ञानाद् हर्षविषादादयो विरुध्यन्ते॥ क्रियाफलं तु तृप्तिमदवधबन्धादयो न सन्ति] ननु कान्ता-दर्शनजन्ये सुखे तद्दर्शनमात्रं हेतुरस्तु, मोदकभक्षणादिजन्यं तु सुखं कथं स्वप्ने मोदकज्ञानमात्रादितिचेत्,न, अनन्यगत्या स्वप्नज-नितेष्टप्राप्त्यभिमानस्यापि विलक्षणसुखहेतुत्वस्वीकारात् प्रबुद्धस्य तु स्वप्नशुभत्वज्ञानस्य तथात्वादिति दिग् ॥ ननु स्वप्नेऽपि कामिनीसुरतादिक्रियाफलं व्यञ्जनविसर्गादि प्रबोधावस्थायामपि साक्षात् दृश्यत एव तत्कथं स्वप्ने क्रियाफलं नास्तीत्युच्यत इति चेत्, न, जाग्रतोऽपि तीव्रमोहाध्यवसायेन व्यञ्जनविसर्गदर्शनात्, स्वप्नेऽपि तस्य तद्धेतुकत्वेन क्रियाफलत्वासिद्धेः, अन्यथा स्वप्नविषयीकृतकामिनीनां गर्भाधानाद्प्रसङ्गाद्,आहच–"सिमिणे वि सुरयसंगम-किरियासंजणिअवंजणविसग्गो॥पडिबुद्धस्स वि कस्सइ, दीसइ सिमिणाणुभूअफलं ॥२२८॥"[स्वप्नोऽपि सुरतसङ्गम–क्रियासञ्जनितव्यञ्जनविसर्गः ॥ प्रतिबुद्धस्यापि कस्यचित्, दृश्यते स्वप्नानुभूतफलं]"सो अज्झवसाणकओ, जागरओपि जह तिव्वमोहस्स ॥ तिव्वज्झवसाणाओ, होइ विसग्गो तहा सुमिणे ॥२२९॥"[सोऽध्यवसानकृतो जाग्रतोऽपि यथा तीव्रमोहस्य॥ तीव्राध्यवसानाद्, भवति विसर्गस्तथा स्वप्ने] "सुरयपडिवत्तिरइ-सुह–गब्भाहाणाइ इहरहा होज्जा ॥ सुमिणसमागयजुवईए, ण य जओ ताइं तो विफला ॥२३०॥"[सुरतप्रतिपत्तिरतिसुखगर्भाधाना-दीतरथा भवेत्॥ स्वप्नसमागतयुवतेः, न च यतस्तान्यतो विफला] ननु व्यञ्जनविसर्गस्य क्रियापूर्वकत्वदर्शनात्कथमध्यवसान-

मतिनिरूपणे व्यञ्जनाव-ग्रहप्रस्तावे-स्वप्नदृष्टान्तेन मनसः प्राप्यकारित्व-व्यवस्था-पयितुर्मत-खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जन्यत्वमिति चेत्, न, तीव्रवेदाध्यवसायजनकबहुतरमनोद्रव्यप्रेरितजीवप्रयत्नादेव तदुपपत्तेर्दृष्टार्थस्य बाधितुमशक्यत्वात् ॥३७॥

ननु भाविराज्यादिस्वप्नस्य सत्यत्वदर्शनान्मनसो मेरुप्राप्तिस्वप्नोऽपि कथं न तथेत्यत आह—

स्वप्नोऽपि न मृषा कश्चि-न्न तु सर्व इतिस्थितिः ॥ तेन न प्राप्यकारित्वं, मनसः स समर्थयेत् ॥३८॥९६॥

नहि भाविराज्यादिसूचकस्वप्नस्यार्थक्रियाकारित्वेन प्रामाण्यमिति मेरुगमनादिस्वप्नस्यापि तथात्वं स्यात् अर्थक्रियाकारित्वाभावेन तस्य स्फुटमेवाऽप्रामाण्यान्न ह्येकजातीयस्य कस्यचित्प्रामाण्ये सर्वस्य तथात्वं नाम, घटादिचाक्षुषस्य प्रामाण्ये रङ्गे रजतबुद्धेरपि तथात्वप्रसङ्गाद्,आह च–"नणु सिमिणओ वि कोइ, सच्चफलो फलइ जो जहादिट्ठो॥नणु सिमिणम्मि णिसिद्धं, किरिया किरियाफलाइं च ॥२३१॥"[ननु स्वप्नोऽपि कश्चित्सत्यफलः, फलति यो यथादृष्टः॥ननु स्वप्ने निषिद्धं, क्रिया क्रियाफलानि च] "जं पुण विन्नाणं, तप्फलं च सिमिणे विबुद्धमेत्तस्स ॥ सिमिणयणिमित्तभावं, फलं च तं को णिवारेइ॥२३२॥"[यत्पुनर्विज्ञानं, तत्फलं च स्वप्ने विबुद्धमात्रस्य॥स्वप्नानिमित्तभावं, फलं च तत्को निवारयति?] ननु स्वप्नः सर्वोऽप्यप्रमैव निद्रादोषजनितत्वाद्, भाविराज्यस्वप्नादीनां तु देहस्फुरणसहसोदितवद् भाव्यर्थानुमापकत्वादेव प्रामाण्यं तत्तच्छास्त्रात्तथाविधव्याप्तिग्रहात्,तदुक्तम्– "देहप्फुरणं सहसोइअं च, सिमिणो अ काइआईणि ॥ सगयाइं निमित्ताइं, सुभासुभफलं णिवेइंति ॥२३३॥"त्ति० [देहस्फुरणं सहसोदितं च, स्वप्नश्च कायिकादीनि ॥ स्वगतानि निमित्तानि, शुभाशुभफलं निवेदयन्ति] कथं कश्चिदेव स्वप्नः प्रमा नतु सर्व इत्यभिधीयत इति चेत्, न, 'आरोपे सति निमित्तानुसरणं नतु निमित्तमस्तीत्यारोप' इति न्यायेन क्वचिदेव कस्यचिद्दोषत्वकल्पनात्, न च तदिति स्थले इदमिति भानात्तस्याप्रमात्वं, स्मृतिप्रामाण्यव्यवस्थापितत्वात्, सर्वत्र स्वप्ने तथाभानाभावाद्,

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे-स्वप्नदृष्टान्तेन मनसः प्राप्यकारित्वव्यवस्थापयितुर्मतखण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृष्टार्थस्य कथं स्वप्ने भानमिति चेद् ?, एतन्महिम्नेति संक्षेपः ॥ ३८ ॥ ननु स्त्यानर्द्धिनिद्रोदये द्विरदरदनोत्पाटनादिप्रवृत्तेर्मनसः प्राप्यकारित्वव्यञ्जनावग्रहौ सेत्स्यत इत्यत आह--

स्त्यानर्धौ श्रवणादीनां, व्यञ्जनावग्रहादयः ॥ भवेयुर्न तु चित्तस्य, स्वप्नोऽयमिति जानतः ॥३९॥९७॥

स्त्यानर्धिनिद्रोदये हि प्रेक्षणकरङ्गभूम्यादौ गीतादिकं शृण्वतः श्रोत्रेन्द्रियादीनामेवावग्रहो भवति, न तु नयनमनसोः,तत्प्राप्यकारिताया युक्तिरिक्तत्वात्, नन्वेवं बाह्येन्द्रियव्यापारे प्रबुद्धस्य स्वप्नोऽयमिति ज्ञानं कथमिति चेत्, गाढनिद्रोदयपारवश्येन तथाभिमानाद्, आह च-"सिमिणमिव मन्नमाणस्स, थीणगिद्धिस्स वंजणोग्गहया । होज्ज व ण उ सा मणसो, सा खलु सोइंदिआईणं ॥ ॥ २३४ ॥" [स्वप्नमिव मन्यमानस्य, स्त्यानगृद्धेर्व्यञ्जनावग्रहता । भवेद्वा न तु सा मनसः सा खलु श्रोत्रेन्द्रियादीनाम्] ननु निद्रोदये कथमीदृशी विशिष्टचेष्टेति चेत्, तदुदयसमयेऽर्द्धचक्रिबलार्द्धबलसम्पत्तेः ॥ श्रूयन्ते ह्यत्रोदाहरणानि-ग्रामे क्वचन कोऽप्यासी-त्कौटुम्बिकशिरोमणिः ॥ यस्य जिह्वा पलग्रास-रसव्यसनतत्परा॥१॥ मांसानि खानिर्दोषाणां, यत्र यत्र स पश्यति॥ और्वानल इवाम्भोधौ, चेतस्तत्रास्य धावति ॥२॥ एष धर्मैधसां दाहे, वन्यदावाग्निरन्यदा ॥ आनीयोपशमं वाग्भि-र्मेघधाराभिरञ्जसा ॥३॥ दुर्नीतिदलनान्वीक्षां, दीक्षां दत्त्वा महात्मभिः॥स्थविरैः स्थिरतां नीतो, जगद्गीतयशोभरैः ॥४॥ तेनान्यदा विहरता, ग्रामे क्वचन घातितः॥ सौनिकैर्महिषो दृष्टो, महिषध्वजमन्दिरे ॥ ५ ॥ अभिलाषस्तदा तस्य, तदीयामिषभक्षणे ॥ प्रावर्त्तत हहा कर्म-स्थितिर्हि दुरतिक्रमा ॥ ६ ॥ न न्यवर्त्तत तस्यासौ, व्यासङ्गेऽपि क्रियान्तरे ॥ कान्तासङ्गं विना याति, न नाम विरहज्वरः ॥ ७ ॥ तेनैव चाभिलाषेण, स्वापमाप दुराशयः ॥ तस्य तत्सहकारेण, स्त्यानर्द्धिरुदियाय च ॥ ८ ॥ महिषध्वजवत्

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे स्त्यानर्धिनिद्राप्रकारेण मनसः प्राप्यकारित्वव्यञ्जनावग्रहस्थापकमतखण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रूर–स्ततश्चोत्थाय शक्तिमान्॥ महिषामिषपिण्डार्थी,ययौ महिषमण्डलम्॥९॥तत्र व्यापाद्य महिषं,मांसलंमांसलम्पटः॥मांसं भुक्त्वाऽन्यदानीय, चिक्षेपोपाश्रयोपरि ॥ १० ॥ पुनः सुष्वाप पापः स, प्रत्यूषे च प्रबुद्धवान् ॥ स्वप्नोऽयमिति विज्ञाय, तज्जगाद गुरोः पुरः ॥ ११ ॥ उपाश्रयोपरि प्रैक्षि, साधुभिश्च तदा पलम् ॥ पाटलं परिपाकेण, स्त्यानगृद्धिलताफलम् ॥१२॥ न्यवेदि तच्च गुरवेतेन लिङ्गेन तैस्तदा ॥ धूमेनाग्निरिवाज्ञायि, तस्य स्त्यानर्द्धिसम्भवः ॥१३॥ सङ्घेन स द्रुतं लिङ्ग–मपहृत्य विसर्जितः॥ भस्मच्छन्नोऽपि नैवाग्निः, स्थाप्यते केलिवेश्मनि ॥ १४ ॥ इति स्त्यानर्ध्युदये प्रथमं **मांसोदाहरणम्॥** अथ द्वितीयं **मोदकोदाहरणमुच्यते**–भिक्षार्थं पर्यटन् ग्रामे, कोऽपि साधुर्व्यलोकत ॥ भाजने स्थापितान् दिव्यान्, मोदकान् मन्दिरे क्वचित् ॥ १ ॥ सुरभिस्निग्धमधुरा–नुद्ग्रीवं तान्निभालयन् ॥ स प्राप नहि साधूनां, याञ्चापूर्वः प्रतिग्रहः ॥२॥ विच्छेदं न जगामास्याभिलाषस्तु तदाश्रयः ॥ अविच्छेदेन सुप्तस्य, स्त्यानर्द्धिरुदियाय च ॥ ३ ॥ रजन्यां तद्गृहं गत्वा, महाद्विप इवाऽथ सः॥ अभाङ्क्षीत्तत्कपाटानि, वृक्षाणीव मदोद्धतः ॥४॥ गत्वान्तः कवलीकृत्य, स्वैरं मोदकमण्डली ॥ शेषं पतद्ग्रहे क्षिप्त्वो–पाश्रयं तूर्णमाययौ ॥ ५ ॥ स्थाने निधाय सुष्वाप, तं पतद्ग्रहकं पुनः ॥ स्वप्नं ज्ञात्वा बभाषेऽथ, प्रबुद्धस्स गुरोः पुरः ॥६॥ भाजनप्रत्युपेक्षायाः, समये तत्प्रतिलेखने ॥ ददृशे मोदकश्रेणी,स्त्यानर्द्धिरिव पिण्डिता॥७॥गुर्वादिभिस्ततो ज्ञात्वा,तस्य स्त्यानर्द्धिदुष्टताम् ॥लिङ्गं पाराञ्चिकं दत्त्वा, तथैवायं विसर्जितः ॥८॥ उक्तं द्वितीयम्॥ अथ तृतीयं **दन्तोदाहरणमुच्यते**॥एकः साधुर्दिवा कश्चित्, खेदितः करिणारिणा, प्रचण्डकरदण्डेन, नीरदेनेव गर्जता ॥१॥ पलाय स ततः कष्टा–न्मृगो दावानलादिव॥ क्रोधोद्धुरमनास्तूर्ण–मुपाश्रयमुपाययौ ॥ २ ॥ ज्वलतैव स कोपेन, रात्रौ स्वापमवीभजत् ॥ तदा सहचरीवास्य, स्त्यानगृद्धिरुपाययौ ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

केशवार्द्धबलेनाथ, मन्यमानस्तृणं जगत् ॥ भङ्क्त्वा पुरकपाटानि, पर्पटानीव तत्क्षणात् ॥ ४ ॥ गत्वा च हस्तिनः स्थानं, केसरीव स हस्तिनम् ॥ व्यापाद्य दन्तमुशल-द्वयं जग्राह शक्तिमान् ॥ ५ ॥ क्रोधाग्निमपनीयाऽथ, द्विपवैरनिवारणात् ॥ आगत्योपाश्रयद्वारि, क्षिप्त्वा तत् स्वपिति स्म च ॥ ६ ॥ उज्ज्वलं रुधिरार्द्रं त-द्दन्तिनो दशनद्वयम् ॥ सपल्लवकषायद्रु-शाखाद्वयमिवाबभौ ॥ ७ ॥ प्रबुद्धः स तथारूपं, स्वयं स्वप्नममन्यत ॥ स्त्यानर्द्धेर्जृम्भितं चास्य, साधवो विविदुः क्षणात् ॥८॥ न हि स्त्यानर्द्धिपाथोधि-तरङ्गप्रसरं विना॥डिण्डीरपिण्डसङ्काश-दन्तिदन्तग्रहो भवेत् ॥९॥स्त्यानर्धेरुद्याद्ग्रस्त-गुणमेनमवेत्य च॥ विससर्ज द्रुतं सङ्घो, लिङ्गमादाय धर्मधीः ॥ १० ॥ उक्तं तृतीयम् ॥ अथ चतुर्थं कुम्भकारोदाहरणमुच्यते-कश्चिदेकः कुम्भकारो, गच्छे स्वच्छतरे गुणैः ॥ प्रव्रज्यां खलु जग्राह, कुतश्चिदपि कारणात् ॥१॥अन्यदा च प्रसुप्तं तं, स्त्यानर्द्धिरुपतस्थुषी॥ पूर्वाभ्यासं ततोऽस्मार्षी-न्मृत्पिण्डत्रोटनश्रमम्॥२॥ ततस्तदेकव्यापार-चिन्तासन्तापतापितः॥ शिरांस्यभांक्षीत्साधूनां, मृत्पिण्डानिव दुष्टधीः॥३॥तद्रक्तरक्तधाराभि-र्धौते(पापो)ऽप्येतस्य चेतसि॥अवर्द्धताहो नितरां,सर्वतः पङ्कसङ्करः ॥४॥ साधवोऽपसृताः केचित्, पाप्मनोऽस्मात्ततो भिया॥नहि ज्वलति दावाग्नौ, वने स्थातुं किलौचिती ॥५॥ उदैक्षन्त च ते प्रातः, पाप्मनोऽस्य विजृम्भितम् ॥ सर्वतः पृथिवीं दृष्ट्वा, मुण्डमण्डलमण्डिताम् ॥६॥ स्मशानवेश्मार्चनतो, नराणां मुण्डमण्डलैः॥ स्मशानवास एवास्य, श्रेयानिति विचिन्त्य तम् ॥७॥ सङ्घः सद्धर्मनिरत-श्चकर्षोपाश्रयाद्बहिः ॥ दूषणस्य फलं मुख्य-माश्रयभ्रंश एव हि॥८॥ उक्तं चतुर्थम्॥ अथ वटशाखाभञ्जनोदाहरणं पञ्चममुच्यते-साधुर्ग्रामान्तरात्कश्चि-द्भिक्षां लात्वा न्यवर्तत॥ तापेनाभिहतश्चैष, क्षुत्तृड्भ्यां बाधितस्तराम् ॥ १ ॥ छायां तां सेवितुं स्निग्धां, शीतलां वटभूरुहः॥ कामोपतापहतये, कामिनीमिव कामुकः ॥२॥ आगच्छन्

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वारेकायां स्त्यानर्ध्युदाहरणानि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शाखया नीचै–रुपतापातिविह्वलः।। अपराद्धो ह्रियेवासौ, खेदं मेदस्विनं दधौ।।३।।अविच्छिन्नेन कोपेन, ततो गत्वा प्रतिश्रयम्।। क्रमेणावश्यकीः कृत्वा, क्रियाः सुष्वाप पापधीः ॥४।। रजन्यां महतीं शक्तिं, स्त्यानर्द्धेर्बिभ्रदुच्चकैः ॥ अभाङ्क्षीद् वटशाखां तां, सह धर्मद्रुशाखया ।।५।। तामानीयाश्रयद्वारि, क्षिप्त्वाऽशेत पुनर्भृशम् ॥ बुद्धः स्वप्नाभिमानी च, जगौ सर्वं गुरोः पुरः ।।६।। द्वारि तां महतीं शाखां, स्त्यानर्द्धिमिव रूपिणीम् ॥ अवेक्ष्य लिङ्गमादाय, गुरुणा स विसर्जितः ॥ ७ ॥ उक्तं पञ्चमम्।। तदेव-

* एतान्युदाहरणान्यन्यत्र सङ्क्षेपत एवम्प्रदर्शितानि—

[१] एकः कौटुम्बिको ग्रामे, मांसमेवात्त्यनेकधा ॥ श्रुत्वा धर्मं स केषाञ्चित्, समीपे व्रतमग्रहीत ॥ १ ॥ विचरंश्च क्वचिद्ग्रामे, महिषं पिशितार्थिभिः॥ विभिद्यमानमद्राक्षीत्ततोऽभूत्तत्र सस्पृहः ॥ २ ॥ सोऽव्युच्छिन्नतदाकांक्षोऽभुक्तो यातो बहिर्भुवम् ॥ सूत्रस्य पौरुषीं चान्त्यां, चक्रे सुप्तस्तथा निशि ।।३।। जातस्त्यानर्धिरेषोऽथ, गत्वा महिषमण्डलम् ॥ हत्वैकं भुक्तवान्, शेषमेत्य शालो(माश्रयस्यो)परि न्यधात् ॥ ४ ॥ ईदृग्दृष्टः प्रगे स्वप्न, इत्यालोचितवान्गुरोः ॥ दिशो विलोकने तच्च, मुनिभिर्मांसमीक्षितम् ।।५।। सोऽथ स्त्यानर्धिमान् ज्ञात्वा, लिङ्गपाराञ्चिकः कृतः ॥ इति प्रथमम् [२] साधुर्भिक्षां भ्रमन्कोऽपि, मोदकान्वीक्ष्य कुत्रचित् ।।६।। चिरमैक्षिष्ट गृद्धस्तानलब्ध्वाऽशेत तन्मनाः ॥ जातस्त्यानर्धिरुत्थाय, गत्वा तद्भवनं निशि ।।७।। भित्त्वा कपाटमत्तिस्म, मोदकानुद्धृतानथ ॥ पात्रे कृत्वाश्रये प्राप्तः, प्रातः स्वप्नं न्यवेदयत् ॥ ८ ॥ दृष्टाः पादोनपौरुष्यां, ते पात्रप्रतिलेखने ॥ लिङ्गपाराञ्चिकः सोऽपि, ततो गुरुभिरादधे ।।९।। इति द्वितीयम् ॥ [३] एकः साधुर्गतो भिक्षां त्रासितः करिणा ततः ॥ पलायितः कथमपि, तस्मिन् रुष्टश्च सुप्तवान्॥१०।।जातस्त्यानर्धिरुत्थाय गत्वा व्यापाद्य तं गजम् ॥ आनीय दन्तमुशले, विन्यस्थोपाश्रयोपरि ।।११।। पुनः सुप्तः प्रगे स्वप्नं,व्याचक्रेऽथ तपोधनैः।। दृष्ट्वा दन्तान्स विज्ञातो,लिङ्गपाराञ्चिकः कृतः ।।१२।। इतितृतीयम् [४]गच्छे महति कस्मिंश्चित्,प्राव्राजीत्कुम्भकारकः।।सुप्तः स्त्यानर्धिभाग्रात्रौ, मृत्तिकाभ्यासतस्ततः।। १३ ।।समीपस्थितसाधूनां, छेदं छेदं शिरां-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मेतानि दर्शितानि स्त्यानर्ध्युदये पञ्चाऽपि समयप्रसिद्धान्याहरणानि ॥ आह च–“पोग्गलमोअगदन्ते, फरुसगवडसालभञ्जणेचेव। थीणद्धिअस्स एए, आहरणा होन्ति णायव्वा ॥२३५॥” [पुद्गलमोदकदन्ताः कुलालवटशालभञ्जने चैव ॥ स्त्यानर्धेरेतान्युदाहरणानि भवन्ति ज्ञातव्यानि]॥तदेवं जागरे स्वप्ने स्त्यानर्द्धौ वा मनसः प्राप्यकारिता निषिद्धा, अमुकत्र मे गतं मन इति प्रयोगस्त्वन्यार्थकत्वेन समर्थितो, वस्तुतस्त्वयं प्रयोगो भ्रान्तिमूलक एव, चक्षुर्मे चन्द्रं गतमिति प्रयोगवत्, नहि सर्वे लौकिकप्रयोगाः सत्या एव, आह च–“जह देहत्थं चक्खुं, जं पइ चंदं गयंति ण य सच्चं॥रूढं मणसो वि तहा, ण य रूढी सच्चिआ सव्वा॥२३६॥”[यथा देहस्थं चक्षुर्यत्प्रति चन्द्रं गतमिति न च सत्यम् ॥ रूढं मनसोऽपि तथा, न च रूढिः सत्या सर्वा] ॥ तदेवं व्यवस्थापिते मनसोऽप्राप्यकारित्वे पुनः परकृतामाशङ्कां परिहरति ॥ [*प्रतावत्र सवृत्तिषट्पञ्चाशद्गाथायुतानि दश पत्राणि गतानीति लिखितमितियोजितम्]

सर्वासर्वग्रहापत्ति–र्न चित्तेऽप्राप्यकारिणि॥ दृष्टस्यानुपपत्तौ, यददृष्टं [*परिकल्प्यते ॥ ४०॥ ९८॥

अप्राप्यकारिणि अप्राप्यकारितया सैद्धान्तिकाभ्युपगते चित्ते मनसि, प्रतिबन्दीं गृह्णता परेणोद्भाविता सर्वासर्वग्रहापत्तिः यदि विषयमप्राप्यैव मनो गृह्णीयादप्राप्तत्वाविशेषात्सर्वस्य ग्रहणं स्यात्, अप्राप्तत्वाविशेषेऽपि यदि कस्यचिदर्थस्याग्रहणं

(योजितः पाठः)

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसः प्राप्यकारित्वस्थापनाय परकृतारेकायाः परिहारः ॥

स्यधीः ॥ पक्वान्ते न्यक्षिपत्तानि शीर्षाणि च वपूंषि च ॥१४॥ शेषा अपसृता भूयः, सुप्तः स्वप्नं प्रगेऽवदत् ॥ मृतान्वीक्ष्याथ साधून्स लिङ्गपाराञ्चिकः कृतः ॥१५॥ इतिचतुर्थम् ॥ [५] वटस्याऽधोऽध्वना कश्चि-द्भिक्षाचर्यागतो मुनिः ॥ भृतपात्रो वलन्वेगात्, क्षुत्तृड्ग्रीष्मार्कतापितः ॥ १६ ॥ तच्छाखायामास्फलितो, द्विष्टस्तस्यामसौ निशि ॥ स्त्यानर्ध्युदयतो गत्वा, भंक्त्वा शाखां समागतः ॥ १७॥ विन्यस्योपाश्रयद्वारे सुप्तः स्वप्नं न्यवेदयत् ॥ प्रातः स्त्यानर्धिमान् ज्ञात्वा लिङ्गपाराञ्चिकः कृतः ॥१८॥ इतिपञ्चमम् ॥ केऽप्याहुः प्राग् वनेभोऽभूत्, सोऽथ स्त्यानर्धिमान्नरः ॥ सञ्जातप्राग्भवाभ्यासाद्, वटशाखां ततोऽभनक् ॥ १९ ॥ इति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदा तथैवापरस्याप्यग्रहणमिति,सर्वाग्रहणं वा स्यादित्येवंरूपा,न,यद् यस्मात्कारणात्,दृष्टस्यप्रतिनियतार्थग्रहणस्यानुपपत्तौ सत्यां तदुपपत्तये,अदृष्टं तत्कारणतया क्षयोपशमविशेषाख्यं,परिकल्प्यते,न चैवं प्राप्यकारित्वपक्षेऽप्येवमस्त्वितिवाच्यम्, अनेकप्राप्तिकल्पनेऽपि क्षयोपशमविशेषस्य तत्कारणतयाऽवश्यं कल्पनीयत्वेनिष्फलस्यगौरवस्यतत्कल्पनापरिपन्थिनः सद्भावाद् ,अप्राप्यकारित्वे तु प्राप्तकल्पनाल्लाघवस्यानुकूलत्वादिति बोध्यम्॥४०॥मनसो विषयप्राप्त्यभावेऽपि कदाग्रहावेशाद्व्यञ्जनावग्रहं प्रतिपादयन्पर आह—

"विसयमसंपत्तस्स वि, संविज्जइ वंजणोग्गहो मणसो ॥ जमसंखेज्जसमइओ, उवओगो जं च सव्वेसु॥२३७॥ समएसु मणोदव्वाइं, गिण्हए वंजणं च दव्वाइं ॥ भणियं संबंधो वा तेण तयं जुज्जए मणसो ॥ २३८ ॥"

व्याख्या–मेर्वादिविषयमप्राप्य गृह्णतोऽपि मनसो व्यञ्जनावग्रहो युज्यते, यस्मात्'च्यवमानो न जानाति'इत्यादिवचनात्सर्वोऽपि छद्मस्थोपयोगोऽसङ्ख्येयसमयो निर्दिष्टः समये, न त्वेकद्वयादिसमयकः, यस्माच्च तेषूपयोगसम्बन्धिष्वसङ्ख्येयसमयेषु सर्वेष्वपि प्रत्येकमनन्तानि मनोद्रव्याणि मनोवर्गणाभ्यो गृह्णाति जीवः, द्रव्याणि च तत्सम्बन्धो वा प्रागत्रैव भवद्भिर्व्यञ्जनमुक्तं, तेन तत् द्रव्यं तत्सम्बन्धो वा व्यञ्जनावग्रहो मनसो युज्यते। श्रोत्रादेरप्यसङ्ख्येयसमयगृह्यमाणशब्दादिपरिणतद्रव्याणि तत्सम्बन्धो वा व्यञ्जनावग्रहः, स मनसोऽपि समान इति तथा किं नेष्यत इति पराभिप्रायः ॥ २३७–२३८ ॥

विषयाप्राप्तावपि मनसो व्यञ्जनावग्रहमवस्थाप्येदानीं तत्प्राप्त्या तं समर्थयन्नाह—

देहादणिग्गयस्स वि, सकायहिययाइयं विचिंतयओ ॥ नेयस्स वि संबंधे, वंजणमेयं पि से जुत्तं ॥ २३९ ॥

व्याख्या–देहादनिर्गतस्यापि तत एव मेर्वाद्यर्थमगतस्यापि स्वकायहृदयादिकमतिसान्निहितत्वात्सम्बद्धं चिन्तयतो मनसो

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसोऽप्राप्यकारित्वेसिद्धेऽपि व्यञ्जनावग्रहत्वस्थापनायाभिनिवेशिशङ्काप्रदर्शनम् ॥ ॥ ४७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञेयेन स्वकायस्थितहृदयादिना सम्बन्धेऽपि तस्य मनसो व्यञ्जनावग्रहो युक्त उक्तप्रकारेणेत्यर्थः ॥ २३९ ॥

उक्तप्रकाराभ्यां परेण मनसो व्यञ्जनावग्रहे समर्थिते तत्र प्रथमपक्षे प्रतिविधानमाचार्य आह—

गिज्झस्स वंजणाणं, जं गहणं वंजणोग्गहो स मओ ॥ गहणं मणो न गिज्झं, को भागो वंजणे तस्स ॥२४०॥

व्याख्या–स्वपक्षपरपक्षरागद्वेषग्रहाविष्टचित्तेन परेण 'विसयमसंपत्तस्स वि' इत्यादि यदुक्तं तदसम्बद्धमेव, यतः श्रोत्रादीन्द्रियचतुष्टयग्राह्यस्य शब्दादेस्सम्बन्धिनां व्यञ्जनानां तद्रूपपरिणतद्रव्याणां यदुपादानलक्षणं ग्रहणं स व्यञ्जनावग्रहोऽस्माकं सम्मत इति परो जानात्येव, एवञ्च चिन्ताद्रव्यरूपं मनो यदि ग्राह्यं स्यात्स्यात्तदा तद्व्यञ्जनं मनसो न त्वेवं, किन्तु अर्थपरिच्छेदकरणस्वरूपं ग्रहणं मनो न ग्राह्यं, अतः को भागः कोऽवसरस्तस्य करणभूतस्य मनोद्रव्यराशेर्व्यञ्जनावग्रहेऽधिकृते, न कोऽपीत्यर्थः ॥ २४० ॥ 'देहादणिग्गयस्स वि' इत्यादिना मनसो व्यञ्जनावग्रहप्रसाधनायोक्तो द्वितीयपक्षोऽपि न सङ्गतः, स्वस्य स्वदेशेन सम्बन्धस्सर्वस्यापि, स्वदेशेन सहासम्बन्धे वस्तुनोऽसत्त्वमापद्येत, न च तावन्मात्रेण मनः प्राप्यकार्युपगन्तुं शक्यम्, तथा सति ज्ञानमात्रस्य स्वदेशात्मसम्बद्धस्य प्राप्यकारिता प्रसज्येत, तस्मात्स्वदेशं परित्यज्य बाह्यार्थापेक्षयैव प्राप्यकारित्वाप्राप्यकारित्वचिन्ता फलवती, बाह्यार्थश्च मनसाऽप्राप्त एव गृह्यत इति तस्याप्राप्यकारित्वनियमे न व्यभिचारः, मनसः स्वकीयहृदयादिचिन्तायां प्राप्यकारित्वाभ्युपगमेऽपि वा न व्यञ्जनावग्रहसम्भव इति दर्शयन्नाह–

तद्देसचिन्तणे होज्ज, वंजणं जइ तंओ न समयम्मि । पढमे चेव तमत्थं, गेण्हेज्ज न वंजणं तम्हा ॥ २४१ ॥

व्या० स्वकीयहृदयादिदेशचिन्तने सति भवेन्मनसो व्यञ्जनावग्रहः यदि प्रथमसमय एव तं स्वकीयहृदयादिकमर्थं न

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसोऽप्राप्यकारित्वेसिद्धेप्यभिनिवेशतो व्यञ्जनावग्रहत्वस्थापनाय परकृतारेकायाः परिहरणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गृह्णीयात्, न चैवम्, यतो मनसः प्रथमसमय एवार्थावग्रहो जायते न तु श्रोत्रादीन्द्रियस्येव प्रथमं व्यञ्जनावग्रहः, क्षयोपशमापाटवेन श्रोत्रादीन्द्रियस्य प्रथमं नार्थोपलब्धिरिति युज्यते तस्य व्यञ्जनावग्रहः, चक्षुरिन्द्रियस्येव पटुक्षयोपशमत्वान्मनसोऽर्थानुपलब्ध-कालाभावेन प्रथममर्थावग्रह एव जायत इति न व्यञ्जनावग्रहस्यावसरः, अत्र चानुमानप्रकार इत्थम्, इह यस्य ज्ञेयसम्बन्धे सत्यप्यनुपलब्धिकालो नास्ति न तस्य व्यञ्जनावग्रहः, यथा चक्षुषस्तथा मनसः, तस्मान्न तस्य व्यञ्जनावग्रहः, व्यतिरेके तु श्रोत्रादिर्दृष्टान्तस्तस्य ज्ञेयसम्बन्धेऽर्थानुपलम्भकालसम्भवात्, तत्र व्यञ्जनावग्रहाभ्युपगमः, एवञ्च परोक्तपक्षद्वयस्याप्यघटमान-त्वान्मनसो व्यञ्जनावग्रहासम्भवमुपसंहरति । ' न वंजणं तम्हत्ति, ' तस्मादुक्तप्रकारेण मनसो न व्यञ्जनावग्रहः ॥ २४१ ॥

प्रथमसमय एव मनसोऽर्थग्रहणम्भवतीत्यत्रोपपत्तिमुपदर्शयति–

समए समए गिण्हइ, दव्वाइं जेण मुणइ य तमत्थं ॥ जं चिंदिओवओगे वि, वंजणाऽवग्गहेऽतीते ॥२४२॥
होइ मणोवावारो, पढमाओ चेव तेण समयाओ ॥ होइ तदत्थग्गहणं, तदण्णहा न प्पवत्तेज्जा ॥२४३॥

व्याख्या–येन कारणेन कस्यचिदर्थस्य चिन्तावसरे प्रतिसमयं मनोद्रव्याणि गृह्णाति मनोद्रव्यग्रहणशक्तिसम्पन्नो जीवः चिन्तनीयश्च तथा जानाति, एतत्प्रथमगाथापूर्वार्द्धार्थेन सह द्वितीयगाथाद्वितीयतृतीयचरणार्थौ सम्बन्धनीयौ । ततश्च तेन कारणेन प्रथमसमयादेव भवति चिन्तनीयार्थस्य ग्रहणमित्यर्थः।अर्थानुपलब्धिकालस्त्वेकोऽपि समयो नास्ति, कुत्र तस्य व्यञ्जनावग्रह-इति भावः । नन्विन्द्रियव्यापाररहितस्य जीवस्य मनोमात्रेणैवार्थान्पर्यालोचयतो मा भवतु मनसो व्यञ्जनावग्रहः श्रोत्रादी-न्द्रियेणार्थान् गृह्णतस्तु जीवस्य मनोऽपि तत्र व्याप्रियतीति तत्र प्रथममनुपलब्धिकालसम्भवाद् व्यञ्जनावग्रहः किन्न स्यादित्यत आह,

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे पटुक्षयोपशमत्वाच्चक्षुष इव मनसः प्रथमत एवार्थग्राहकत्वेन व्यञ्जनावग्रहाभाव एवेति प्रदर्शनम् ॥ ॥ ४८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'जं चिंदिओवओगे वि' इत्यादि, यस्मात् श्रोत्रादेः शब्दाद्यर्थग्रहणलक्षणोपयोगकालेऽपि व्यञ्जनावग्रहेऽतीते सति मनसो व्यापारो भवति,यथा केवलेन मनसाऽर्थचिन्तनेऽर्थावग्रहादारभ्यैव मनोव्यापारस्तथा श्रोत्रादीन्द्रियेण सहापि तस्य व्यापारोऽर्थावग्रहादारभ्यैव न तु व्यञ्जनावग्रहसमय इति न मनसस्तत्रापि व्यञ्जनावग्रहः। तत्र मनसो व्यञ्जनावग्रहे व्यापाराभ्युपगमे स व्यञ्जनावग्रहो मनसोऽपीति मतेरष्टाविंशतिभेदभिन्नता न स्यात्, तस्मात्प्रथमसमयादेव तस्यार्थग्रहणमभ्युपगन्तव्यम्। एवमनभ्युपगमे दण्डमाह— 'तदण्णहा न प्पवत्तेज्जत्ति,' यदि प्रथमसमयादेव मनसोऽर्थग्रहणं नेष्यते तदा तस्य मनस्त्वेन प्रवृत्तिरेव न स्यादनुत्पत्तिरेव स्यादित्यर्थः, यथा भाषाऽवध्यादीनां भाषमाणावबुद्धयमानलक्षणान्वर्थमुपादायैव प्रवृत्तिस्तथा प्रथमसमयादारभ्य मननलक्षणान्वर्थमुपादायैव मनस्त्वेन मनसः प्रवृत्तिः, अन्यथा न स्यादेव मनोऽवध्यादिवत्, तस्मादर्थानुपलब्धिसमयाभावान्न तस्य व्यञ्जनावग्रहः, श्रोत्रादीन्द्रियव्यापारकाले व्यञ्जनेऽतीत एव मनसो व्यापार इत्यत्राऽऽगमस्यापि संवादः। तदुक्तं कल्पभाष्ये—"अत्थाणंतरचारी, चित्तं निययं तिकालविसयंति॥ अत्थे उ पडुप्पन्ने, विणिओगं इंदियं लहइ॥१॥" अर्थे—शब्दादौ श्रोत्रादीन्द्रियव्यञ्जनावग्रहेण गृहीतेऽनन्तरमर्थावग्रहादारभ्य चरति प्रवर्तते इत्यर्थानन्तरचारि मनः, न तु व्यञ्जनावग्रहकाले तस्य प्रवृत्तिरिति भावः, "त्रिकालविषयं चित्तं,साम्प्रतकालविषयं त्विन्द्रियम्"॥ २४२—२४३॥ मनसोऽर्थानुपलब्धिकालासम्भवं सयुक्तिकं भावयन्नाह—

नेयाउ च्चिय जं सो, लहइ सरूवं पईवसद्दव्व॥ तेणाजुत्तं तस्सा—संकप्पियव्वंजणग्गहणं ॥ २४४॥

व्याख्या—यस्माज्ज्ञेयादेव चिन्तनीयवस्तुन एव मनः स्वरूपं लभते नान्यतः, तस्माद्यदि प्रथमसमयमेव तज्ज्ञेयं नावगच्छेत् तर्हि ततो ज्ञेयादुत्पत्तिरप्यस्य न स्यात्, मनुते मन्यते वा मन इत्येवं सान्वर्थक्रियावाचकशब्दाभिधेयस्य मनसः, प्रदीपयतीति

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनसोऽप्राप्यकारित्वं मनः शब्दान्वर्थनिरूपणेनागमसंवादेनच निष्टङ्कितम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रदीपः, शब्दयति भाषत इति शब्दः, दहतीति दहनः, तपतीति तपनः इत्येवं सान्वर्थक्रियावाचकशब्दाभिधेयप्रदीपादेः प्रदीपनादिलक्षणार्थक्रियां कुर्वत एवात्मलाभो नान्यथा, तद्वन्मननादिक्रियां कुर्वत एवात्मलाभः, यथा च प्रदीपस्याप्रदीपनं भाषायाश्चाशब्दनमयुक्तं तथा मनसोऽप्यमननमयुक्तं, तेन कारणेन असङ्कल्पितशब्दादिविषयभावपरिणतद्रव्यलक्षणव्यञ्जनग्रहणं मनसोऽयुक्तम्, किन्तु सङ्कल्पितानामेवार्थावग्रहद्वारेणावगतानामेव शब्दादिद्रव्याणां ग्रहणं युक्तम्, अतोऽर्थानुपलब्धिकालासम्भवान्न मनसो व्यञ्जनावग्रहसम्भव इति ॥ २४४ ॥

उक्तरीत्या नयनमनसोरप्राप्यकारित्वे विस्तरेण प्रसाधितेऽपि नयनस्याप्राप्यकारित्वे दूषणम्पश्यन्पर आह–

जइ नयणिन्दियमपत्त–कारि सव्वं न गिण्हए कम्हा? ॥ गहणागहणं किं कय–मपत्तविसयत्तसामन्ने ॥२४५॥

व्याख्या–यदि नयनेन्द्रियमप्राप्तकारि, तर्हि सर्वमपि त्रिभुवनान्तर्वर्ति वस्तुनिकुरम्बं कस्मान्न गृह्णाति, अप्राप्तत्वस्य सन्निहित इवान्यत्राप्यविशिष्टत्वात्, अप्राप्तविषयत्वसामान्ये सति कस्यचिद्वस्तुनो ग्रहणं कस्यचिद्वस्तुनोऽग्रहणमित्येवं ग्रहणाग्रहणं किं कृतं स्यात्, प्राप्यकारित्वे तु येन सह सम्बन्धस्तस्य ग्रहणं येन च तदभावस्तस्याग्रहणमित्युपपद्यत इति ॥२४५॥

तस्मादप्राप्यकारित्वपक्षे चक्षुषो विषयपरिमाणनियमाभाव आपद्यत इत्याह– [॥२४६॥

विसयपरिमाणमनियय–मपत्तविसयंति तस्स मणसोव्व॥ मणसोवि विसयनियमो,न कमइ जओ स सव्वत्थ

व्याख्या–तस्य चक्षुषोऽपरिमितं विषयपरिमाणं प्राप्नोति, अस्यां प्रतिज्ञायां हेतुमाह,अप्राप्तविषयमिति कृत्वा, मनस इवेति दृष्टान्तः, अत्रानुमानप्रयोग इत्थम्, यदप्राप्तमपि विषयं परिच्छिनत्ति, न तस्य तत्परिमाणं युक्तम्, यथा मनसः, अप्राप्तश्च

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारित्वेव्यवस्थापित्तेपिमनोदृष्टान्तेनचक्षुषोपिविषयमानाभावापत्तिरितिपरोक्तदोषदर्शनम् ॥

॥ ४९ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषयमवगच्छति चक्षुः, तस्मान्न तस्य तत्परिमाणं युक्तमिति । अत्र प्रतिज्ञाहेत्वोरनुपदर्शनश्चावयवत्रयवादिनो मीमांसकादयोऽप्यत्र चक्षुषः प्राप्यकारित्वमभ्युपगच्छन्तो वादितां बिभ्रतीत्यभिप्रायेण, यदि नैयायिकोऽत्र वादी भवेत्तदा चक्षुर्न नियतविषयपरिमाणं स्यादिति प्रतिज्ञा, अप्राप्तविषयपरिच्छेदकत्वादिति हेतुश्चोपदर्शनीयौ, अप्राप्तविषयपरिच्छेदकत्वलक्षणहेतुमतोऽपि मनसो नियतविषयपरिमाणत्वेन तदभावलक्षणसाध्यवैकल्यादुक्तानुमाने मनसो दृष्टान्तता न सम्भवतीति सूरिरुत्तरयति–मनसो दृष्टान्तीकृतस्याप्राप्तकारिणो विषयनियमोऽस्त्येव, यतस्तदपि मनः सर्वेष्वर्थेषु न क्रामति न प्रसरतीति ॥२४६॥ एतदेवोपदर्शयति–

अत्थगहणेसु मुज्झइ, संतेसु वि केवलाइगम्मेसु ॥ तं किं कयमग्गहणं, अपत्तकारित्तसामन्ने ॥ २४७ ॥

व्याख्या–अर्था एव मतेर्दुष्प्रवेश्यत्वाद् गहनानि अर्थगहनानि,तेष्वनन्तेषु,सत्स्वपि विद्यमानेष्वपि,केवलज्ञानावध्याऽऽगमादिगम्येषु कस्यचिन्मन्दमतेर्मनो मुह्यति कुण्ठीभवति,तान्सतोऽप्यर्थान् न गृह्णातीति तात्पर्यम्, तदेतदर्थानां मनसोऽग्रहणं किं कृतम्, अप्राप्तकारित्वसामान्ये तुल्येऽपि,इति परम्प्रति सूरेः पृच्छा, तस्मात्साध्यविकलो दृष्टान्त इति ॥२४७॥ अप्राप्तत्वाविशेषेऽपि यत एव कारणाद्विषयपरिमाणनियमं मनसि परो ब्रूयात्तत एव चक्षुष्यपि विषयपरिमाणनियमस्सूपपाद इत्याशयवान् सूरिराह–

कम्मोदयओ व सहा–वओ व नणु लोयणे वि तं तुल्लं ॥ तुल्लो व उवालंभो, एसो संपत्तविसए वि ॥२४८॥

व्याख्या–यत्केषाञ्चिदर्थानां मनसोऽग्रहणं तत् तदावरणकर्मोदयाद्वा, स्वभावाद्वा, इति परो ब्रूयात्, नन्वेतल्लोचनेऽपि तुल्यम्, यतस्तदप्यप्राप्यकारित्वे तुल्येऽपि कर्मोदयात्, तत्स्वाभाव्याद्वा कांश्चिदेवार्थान् गृह्णाति न सर्वानिति न परोक्तदूषणम्, अथवा "यत्रोभयोस्समो दोषः,परिहारोऽपि वा समः॥ नैकःपर्यनुयोज्यः स्यात्, तादृश्यर्थविचारणे ॥१॥" इति वचनात् चक्षु-

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वे परोक्तदूषणान्तःपतिमनोदृष्टान्तेऽपि विषयनियमसद्भावेनासङ्गतिनिरूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंनसोः प्राप्यकारित्वमभ्युपगच्छतो मते चक्षुषाऽतिसम्प्राप्ताञ्जनादेः किमिति न ग्रहः मनसैकदैव सम्प्राप्तानां घटपटादीनां किमिति न ग्रहो मेर्वादेरतिव्यवहितस्यापि ग्राहकस्य मनसो न कुत्राप्यसम्प्राप्तिरिति दोषोद्धाराय कर्मोदयस्य स्वभावस्य वा प्रतिनियतग्रहणे नियामकत्वं परेण तदुभयप्राप्यकारित्ववादिना वाच्यं तन्नयनस्याप्राप्यकारित्ववादिनाऽपि वक्तुं शक्यमेवेति दोषपरिहारयोस्समत्वेन नात्र वादिना यत्नो विधेय इति भावः ॥ २४८ ॥ ततश्च यद्व्यवस्थितं तदाह—

सामत्थाभावाओ, मणोव्व विसयपरओ न गिण्हेइ ॥ कम्मक्खओवसमओ, साणुग्गहओ य सामत्थम् ॥२४९॥

व्याख्या—चक्षुः सिद्धान्तनिर्दिष्टनियतविषयपरिमाणात्परतो न गृह्णातीति प्रतिज्ञा, सामर्थ्याभावादिति हेतुः, मनोवदिति दृष्टान्तः,तदावरणकर्मक्षयोपशमात्स्वानुग्रहतश्च सामर्थ्यं येष्वप्राप्तेष्वर्थेषु चक्षुषस्समस्ति तेषामप्राप्तानामपि चक्षुषा ग्रहणम्, येषु चाप्राप्तेषूक्तसामर्थ्यं नास्ति तेषां चक्षुषा न ग्रहणमित्यर्थापत्त्या लभ्यते, अनुग्रहश्च चक्षुषो रूपालोकमनस्कारादिसामग्रीतो भवति, तस्माद्व्यवस्थितमप्राप्यकारित्वं नयनमनसोः, स्पर्शनादीनां चतुर्णामेवेन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रह इति तस्य चतुर्विधत्वम् ॥ २४९ ॥

व्यञ्जनावग्रहस्य स्वरूपं नन्द्यध्ययनागमसूत्रे प्रतिबोधकमल्लकोदाहरणाभ्यां "वंजणोग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य " इत्यारभ्य "जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे हुं ति करेइ, नो चेव णं जाणाइ के वेस सद्दाइ " इत्यन्तग्रन्थेन प्रतिपादितं,तदेवमस्य व्यञ्जनावग्रहस्वरूपप्रतिपादकस्य नन्दिसूत्रस्य शेषं प्रायः सुगममिति मन्यमानो भाष्यकारः 'जाहे तं वंजणं पूरियं होइ " इत्येतद्व्याचिख्यासुराह—

तोएण मल्लगं पिव, वंजणमापूरियं ति जं भणियं ॥ तं दव्वामिंदियं वा, तस्संजोगो व न विरुद्धम् ॥२५०॥

मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे मनोविषयनियमत्वे पराभिप्रेतहेत्वोर्नेत्रेपि समत्वेन परदोषपरिहारः, नयनमनसोर्विना व्यञ्जनावग्रहचतुर्विधत्वनिष्टङ्कनम् ॥ ॥ ५० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्याख्या—'जं भणियं' यदुक्तं नन्दिसूत्रकारेण, किं तत्, इत्याह, व्यञ्जनमापूरितमिति, केन किंवत्, इत्याह-तोयेन जलेन मल्लकं शरावं तद्वदिति, तस्मिन् सूत्रकारभणिते व्यञ्जनं द्रव्यं गृह्यते, इन्द्रियं वा, तयोर्वा द्रव्येन्द्रिययोः संयोगः सम्बन्धः, इति सर्वथाऽप्यविरोधः, त्रिष्वपि व्यज्यते प्रकटीक्रियतेऽर्थोऽनेनेति व्यञ्जनमित्यस्या व्युत्पत्तेर्घटनात् ॥ २५० ॥

व्यञ्जनशब्दवाच्येषु त्रिष्वपि द्रव्यादिषु प्रत्येकमापूरितत्वे विशेषमुपदर्शयति—

दव्वं माणं पूरिय-मिंदियमापूरियं तहा दोण्हं ॥ अवरोप्परसंसग्गो, जया तया गिण्हइ तमत्थं ॥ २५१ ॥

व्याख्या-दव्वंति,द्रव्यव्यञ्जनेऽधिकृते 'जाहे तं वंजणं पूरियं होइ' इत्यस्यार्थः शब्दादिद्रव्यस्य प्रमाणं प्रतिसमयप्रवेशेन प्रभूतीकृतत्वात् स्वप्रमाणमानीतं प्रकर्षमुपनीतं स्वग्राहकज्ञानोत्पादे समर्थीकृतमिति यावत्,अथेन्द्रियमितीन्द्रियव्यञ्जनेऽधिकृते तु तदर्थः तदा पूरितं व्याप्तं भृतं वासितमित्यर्थः, द्वयोः द्रव्येन्द्रिययोः सम्बन्धलक्षणव्यञ्जनेऽधिकृते पुनः, तयोः परस्परं सम्यक्सम्बन्ध इति तदर्थः, द्रव्येन्द्रियसम्बन्धलक्षणव्यञ्जनपक्षे द्रव्येन्द्रिययोः परस्परमतीवसंयुक्तता वा अङ्गाङ्गीभावेन परिणाम एव सम्बन्धलक्षणव्यञ्जनस्यापूरणम्, यदोक्तप्रकारत्रयेण त्रिविधमपि व्यञ्जनमापूरितं भवति, तदा तं नामजात्यादिकल्पनारहितं विवक्षितं शब्दाद्यर्थं गृह्णाति, एतच्च 'ताहे हुं ति करेइ' इत्यस्य व्याख्यानं, अयमेवार्थावग्रह एकसामयिकः, व्यञ्जनावग्रहस्तु द्रव्यप्रवेशादिरूपत्वादान्तर्मौहूर्तिकः इति ॥ २५१ ॥ अर्थावग्रहो यादृशमर्थं गृह्णाति तमुपदर्शयति—

सामन्नमणिद्देसं, सरूवनामाइकप्पणारहियं ॥ जइ एवं जं तेणं, गहिये सद्देत्ति तं किह णु ? ॥ २५२ ॥

व्याख्या-सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनो रूपादेः स्वरूपनामजातिगुणाक्रियाद्रव्यकल्पनारहितत्वेन शब्दानभिलाप्यं सामा-

(योजित: पाठः) मतिनिरूपणे व्यञ्जनावग्रहप्रस्तावे नन्दिसूत्रोक्तपाठपठितव्यञ्जनशब्दस्य भाष्यकारव्याख्यानेन द्रव्येन्द्रियसम्बन्धरूपत्रिविधवाच्यत्वप्रदर्शनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(योजितःपाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणं तत्रपरकृतविरोधाशङ्कापरिहारश्च ॥

न्यरूपमेवैकसामयिकत्वेन विशेषग्रहणाऽसमर्थोऽर्थावग्रहो गृह्णाति, एवमुक्ते पर आह–यद्येवं व्याख्यायते भवद्भिः तर्हि यन्नन्द्यध्ययनसूत्रे प्रोक्तं "तेणं गहिये सद्देत्ति" उपलक्षणत्वादित्थं सम्पूर्णं द्रष्टव्यम्–"से जहा नामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा तेणं सद्देत्ति उग्गहिए, न उण जाणइ के वेस सद्दाइत्ति" 'तं किह णु त्ति' तदेतत्कथमविरोधेन नीयते, उपदर्शितनन्दिसूत्रे तन प्रतिपत्त्राऽर्थावग्रहेण शब्दोऽवगृहीत इति प्रतिपाद्यते भवद्भिस्तु शब्दाद्युल्लेखरहितं सामान्यमवगृह्णातीत्युच्यत इति विरोधः स्पष्ट एवेति भावः ॥ २५२ ॥ अत्रोत्तरमाह—

सद्दे त्ति भणइ वत्ता, तम्मत्तं वा न सद्दबुद्धीए ॥ जइ होइ सद्दबुद्धी, तोऽवाओ चेव सो होज्जा ॥ २५३ ॥

व्याख्या–शब्दस्तेनावगृहीत इति यदुक्तं तत्र शब्द इति वक्ता प्रज्ञापकः सूत्रकारो वा भणति प्रतिपादयति अथवा तन्मात्रं शब्दमात्रं रूपरसादिविशेषव्यावृत्त्याऽनवधारितत्वाच्छब्दतयाऽनिश्चितं गृह्णातीति, एतावतांशेन शब्दस्तेनावगृहीत इत्युच्यते, न पुनः शब्दबुद्ध्या, शब्दोऽयमित्यध्यवसायेन तच्छब्दवस्तु तेनावगृहीतं, शब्दोल्लेखस्यान्तर्मुहूर्तिकत्वात्, अर्थावग्रहस्य त्वेकसामयिकत्वादसम्भव इति भावः, यदि भवति शब्दबुद्धिरर्थावग्रहे शब्दनिश्चयस्स्यात्, तदा, अपाय एवासौ भवेत्, न त्वर्थावग्रहः, निश्चयस्यापायरूपत्वात्, एवं सत्यर्थावग्रहेहयोरभाव एव स्यात्, न चैवं दृष्टमभ्युपगम्यते वा ॥ २५३ ॥

ननु प्रथमसमय एव शब्दोऽयमिति ज्ञानमर्थावग्रहः, ततः माधुर्यादयः शङ्खशब्दधर्मा इह घटन्ते न तु खरकर्कशत्वादयः शार्ङ्गधर्मा इति विमर्शबुद्धिरीहा, तस्माच्छाङ्ख एवायं शब्द इत्यपाय इत्येवमभ्युपगमेनावग्रहेहयोरभावप्रसङ्गः 'तेणं सद्देत्ति उग्गहिए' इति यथाश्रुतार्थक एवोपपद्यते ' नो चेव णं जाणइ ' इत्यादिरप्यविरोधः, इत्येतत्परोक्तमनूद्य सूरिर्दूषयति–

॥ ५१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जइ सद्दबुद्धिमेत्तय-मवग्गहो तव्विसेसणमवाओ ॥ नणु सद्दो नासद्दो, न य रूवाई विसेसोऽयम् ॥ २५४ ॥

व्याख्या–यदि शब्दोऽयमिति निश्चयज्ञानमप्यवग्रहः शाङ्ख एवायं शब्द इत्यादिविशेषज्ञानमवायो भवताऽङ्गीक्रियते, तर्हि मतिज्ञानस्य प्रथमभेदोऽवग्रहो न स्यादेव, विशेषज्ञानस्यापायरूपतया भवताऽपि स्वीकृतत्वेन शब्दोऽयमिति निश्चयस्य शब्दत्वलक्षणविशेषग्राहकत्वेनापायत्वस्यैव भावात्, यथा च शब्दत्वस्यावान्तरसामान्यरूपतया शाङ्खत्वादिकं विशेष इति तज्ज्ञानस्यापायता, यतः शाङ्खत्वेनाशाङ्खव्यवच्छेद इति कृत्वा शाङ्खत्वं विशेष इति, तथैव महासामान्यस्यावान्तरसामान्यतया शब्दत्वादिकमपि विशेषस्तेनापि नाशब्दो न रूपादिरयमित्येवमन्यविशेषव्यावृत्तिः क्रियत इति तज्ज्ञानस्यापायतैवेत्याह–' नणु ' इत्यादि, नन्वित्यक्षमायां, परामन्त्रणे वा, शब्दत्वस्य रूपत्वादिना विरोधात्तन्निश्चयेन रूपादिरिति निश्चयस्यावश्यम्भावादित्याह–न च रूपादिरिति रूपादिव्यावृत्तिनिश्चयबलादेव रूपोऽयमिति निश्चयस्ततो नारूपोऽयमिति निश्चयस्ततोऽपायत्वेऽस्य निर्णीतेऽवग्रहाभावप्रसङ्गः, अवग्रहत्वेन कक्षीकृतस्यापायत्वस्यैव भावादिति भावः ॥ २५४ ॥

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणे पुनःपरकृतयुक्त याऽपायाभावापत्तिदोषोपदर्शनम् ॥

स्तोकविशेषग्राहकत्वेन शब्दोऽयमिति निश्चयस्यावग्रहत्वं ततोऽधिकविशेषग्राहकत्वेन शाङ्ख एवायमितिनिश्चयस्यापायत्वमित्येवमवग्रहापाययोर्विषयविभागमवलम्ब्यावग्रहसमर्थनं यदि परः कुर्यात्तदा शाङ्खोऽयमितिनिर्णयस्यापि तदुत्तरोत्तरमन्द्रमधुरत्वादि-तरुण-मध्यम-वृद्ध-स्त्री-पुरुषसमुत्थत्वावगाहिनिर्णयापेक्षया स्तोकविशेषग्राहकत्वेनावग्रहत्वमेव स्यादित्यपायाभावप्रसङ्ग इत्याह–

थोवमियं नाऽवाओ, संखाइविसेसणमवाओ त्ति ॥ तब्भेयावेक्खाए, नणु थोवमेवे त्ति नावाओ ॥ २५५ ॥

अवतरणावेदितार्थेयं गाथेति ॥ २५५ ॥ उत्तरज्ञानापेक्षया स्तोकविशेषग्राहिणो निर्णयस्यावग्रहत्वाभ्युपगमे उत्तरोत्तरज्ञान-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्यापि तदुत्तरोत्तरज्ञानापेक्षया स्तोकविशेषग्राहकत्वेनावग्रहत्वप्राप्तौ विशेषाणामनन्तत्वेन यदपेक्षयोत्तरविशेषो न भवत्येवेत्यस्यासम्भवेनोत्तरोत्तरविशेषनिर्णयेऽपि तदुत्तरोत्तरविशेषाकाङ्क्षायास्सद्भावतोऽन्तिमविशेषावगमोऽयमेवेति निर्णयस्य कर्तुमशक्यत्वेन शाङ्खोऽयमित्यादिज्ञानानामपि स्वोत्तरविशेषग्राहिज्ञानापेक्षया स्तोकविशेषग्राहकत्वेनावग्रहत्वेऽपायाभावप्रसङ्गस्सुस्पष्ट एवेत्याह—

इय सुबहुणा वि काले–ण सव्वभेयावहारणमसज्झं ॥ जम्मि हवेज्ज अवाओ, सव्वो च्चिय उग्गहो नाम ॥२५६॥

व्याख्या–इति शब्द उपदर्शनार्थः, यथा शाङ्खोऽयं शब्द इति बुद्धौ शब्दगतविशेषावधारणमिदानीमसाध्यं मन्द्रत्वाद्युत्तरोत्तरबहुविशेषसद्भावात्, तेन स्तोकविशेषग्राहित्वेनेयं नापायः किन्त्ववग्रहस्तथा सुबहुनापि कालेन सर्वेणापि पुरुषायुषा शब्दगतमन्द्रत्वाद्युत्तरोत्तरविशेषावधारणं तद्भेदानामनन्तत्वेनासाध्यं, यस्मिन्विशेषावधारणेऽन्यविशेषाकाङ्क्षानिवृत्त्याऽपायत्वम्भवेत्, तस्मात्सर्वोऽपि विशेषावगम उत्तरोत्तरापेक्षया स्तोकत्वाद्भवदभिप्रायेणार्थावग्रह एव स्याच्छब्दोऽयमिति निश्चयवन्नापाय इति ॥ २५६ ॥

अथ शब्द एवायमितिज्ञानमर्थावग्रहतया परसम्मतमपि तदीहापूर्वकमेव ततो नास्यार्थावग्रहत्वसम्भव इत्याह—

किं सद्दो किमसद्दो–त्तणीहिए सद्द एव किह जुत्तं ॥ अह पुव्वमीहिऊणं, सद्दोत्ति मयं तई पुव्वं ॥ २५७ ॥

व्याख्या–किं शब्दोऽयम्, आहोस्वित् अशब्दो रूपादिः,इत्येवं पूर्वमनीहितेऽकस्मादेव शब्द एवेति निश्चयज्ञानं कथं युक्तम्, विमर्शपूर्वकस्य तस्य तमन्तरेण न सम्भवः, अन्यव्यावृत्तिग्रहणे सत्येव विशेषरूपेण निश्चयः, अन्यव्यावृत्तिग्रहणञ्च न विमर्शं विना विमर्शश्चेहेति, अथ निश्चयकालात्पूर्वमीहित्वा शब्द एवायमिति निश्चयज्ञानं भवतोऽप्यभिमतं तर्हि निश्चयज्ञानात्पूर्वमीहा भवद्वचनतोऽपि सिद्धा ॥ २५७ ॥ ततः किमित्यपेक्षायामाह—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किं तं पुव्वं गहियं, जमीहओ सद्द एव विण्णाणं ॥ अह पुव्वं सामण्णं, जमीहमाणस्स सद्दोत्ति ॥ २५८ ॥

व्याख्या–शब्द एवायमिति निश्चयस्येहापूर्वकत्वे त्वयाऽभ्युपगते तत्र वक्तव्यं किमीहायाः पूर्वं तद्वस्तु प्रमात्रा गृहीतं यस्मिन्नीहिते शब्द एवायमिति निश्चयप्रवृत्तिः ज्ञात एव वस्तुनि भवतीहा नाज्ञात इत्याशयः, उत्तरदानेऽसमर्थे परे स्वयमेवोत्प्रेक्ष्य तन्मतमाशङ्कते, अथ–ब्रूयात्परः सामान्यं नामजात्यादिकल्पनारहितं वस्तुमात्रमीहायाः पूर्वं गृहीतं, यदीहमानस्य शब्द इति निश्चयज्ञानमुत्पद्यत इत्यर्थः ॥ २५८ ॥ अत्र सूरिः स्वसमीहितसिद्धिमुपदर्शयन्नाह—

अत्थोग्गहओ पुव्वं, होयव्वं तस्स गहणकालेणं ॥ पुव्वं च तस्स वंजण–कालो सो अत्थपरिसुण्णो ॥२५९॥

व्याख्या–ईहायाः पूर्वं यत्सामान्यग्रहणन्तदस्मन्मतेऽर्थावग्रह एकसामायिकः तस्य कालो य एकसमयस्तेनैव ग्रहणकालेन भवताऽपि सामान्यग्रहणकालस्य व्यवहृतावस्मन्मतसिद्धार्थावग्रह एव भवतोऽप्यभिमत इति न शब्दोऽयमिति ज्ञानस्यार्थावग्रहत्वं स्यादतस्तदनुरोधेनास्मदभिमतार्थावग्रहात्पूर्वमेव भवदभिमतेन ईहायाः पूर्वं गृह्यमाणस्य सामान्यस्य ग्रहणकालेन भवितव्यं, अस्मदभिमतार्थावग्रहस्य पूर्वं व्यञ्जनकालः व्यञ्जनानां शब्दादिद्रव्याणामिन्द्रियमात्रेणादानकालः, सोऽर्थपरिशून्यः न हि तत्र सामान्यरूपो विशेषरूपो वाऽर्थः प्रतिभाति, तदा मनोरहितेन्द्रियमात्रव्यापारात्, अत ईहायाः पूर्वं यत्सामान्यग्रहणमर्थावग्रहत्वेनास्माभिरुपेयते तत्तथैव भवताऽप्युपेयमिति, तस्यार्थावग्रहत्वे सिद्धं शब्द एवायमिति निर्णयस्यान्वयव्यतिरेकधर्मपर्यालोचनरूपेहोत्तरकालभाविनोऽपायत्वमिति ॥ २५९ ॥ "न उण जाणइ के वेस सद्दोत्ति" इति नन्दिसूत्रानुरोधाच्छब्दोऽयमिति ज्ञानं प्रथमतोऽभ्युपगमनीयमेव अन्यथा तथा सूत्रनिर्दिष्टस्यायुक्तत्वं स्यादित्याशयेन पर आह—

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणे परक्तारेकापरिहारादिप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जइ सद्दोत्ति न गहियं, न उ जाणइ जं क एस सद्दोत्ति ॥ तमजुत्तं सामण्णे, गहिए मग्गिज्जइ विसेसो ॥२६०॥

व्याख्या–यदि प्रथममेव शब्दोऽयमित्येवं तद्वस्तु न गृहीतं, तर्हि 'न उण जाणइ के वेस सद्दोत्ति' इति यत् नन्दिसूत्रे निर्दिष्टं तदयुक्तं, यतः शब्दसामान्ये रूपादिव्यावृत्ते गृहीते सति पश्चान्मृग्यतेऽन्विष्यते विशेषः, 'किमयं शब्दः शाङ्खः उत शार्ङ्ग' इति, 'न उण' इत्यादिना सूत्रे विशेषस्यैवापरिज्ञानमुक्तं, शब्दसामान्यमात्रग्रहणं त्वनुज्ञातमेव, सामान्याग्रहणे विशेषमार्गणासम्भवात्, विशेषजिज्ञासायां सामान्यज्ञानस्य कारणत्वात् ॥ २६० ॥ अत्रोत्तरमाह—

सव्वत्थ देसयंतो, सद्दो सद्दोत्ति भासओ भणइ ॥ इहरा न समयमेत्ते, सद्दोत्ति विसेसणं जुत्तम् ॥ २६१ ॥

व्याख्या–सर्वत्र पूर्वस्मिन् अत्र च सूत्रावयवे, अवग्रहस्वरूपं प्ररूपयन् भाषकः प्रज्ञापक एव शब्दः शब्द इति वदति, न त्ववग्रहे शब्दप्रतिभासोऽस्ति, अन्यथा समयमात्रेऽवग्रहकाले शब्द इति विशेषणं न युक्तम्, शब्दनिश्चयस्यान्तर्मुहूर्तिकत्वात्, सांव्यवहारिकार्थावग्रहमाश्रित्य वा सूत्रमिदं व्याख्यास्यते ॥ २६१ ॥ सूत्रावलम्बिनम्प्रति सौत्रमेव परिहारमाह—

अहव सुए च्चिय भणियं, जह कोइ सुणेज्ज सद्दमव्वत्तं ॥ अव्वत्तमणिद्देसं, सामण्णं कप्पणारहियं ॥२६२॥

व्याख्या–अथवा सूत्र एव भणितं प्रथममव्यक्तस्यैव शब्दोल्लेखरहितस्य शब्दमात्रस्य ग्रहणम्, तत्प्रतिपादकसूत्रावयवमुल्लिखति–'जह कोई सुणेज्ज सद्दमव्वत्तं' ति अस्य नन्द्यध्ययन इत्थमुपन्यासः "से जहा नामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जत्ति" तत्राव्यक्तमित्यनिर्देश्यं, तदपि सामान्यं, तच्च नामजात्यादिकल्पनारहितम्, शाङ्खशार्ङ्गभेदापेक्षया शब्दोल्लेखस्याप्यव्यक्तत्वमिति नाशङ्कनीयं, सूत्रेऽवग्रहस्यानाकारोपयोगरूपतयैव भणनात्, अनाकारोपयोगो हि सामान्यमात्रविषयक एव,

(वोजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणे परकृतारेकापरिहारादिप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किञ्च शब्दोऽयमित्यस्य प्रथममेव स्वीकारे तस्यापायरूपत्वेन तत्पूर्वनियतयोरवग्रहेहयोरभावप्रसङ्ग इत्यस्य पूर्वमुपदर्शितत्वाच्च न प्रथमं तस्य भावः ॥ २६२ ॥ अथ सूरिरुत्प्रेक्ष्य पराभिप्रायमाशङ्कते—

अहव मई, पुव्वं चिय, सो गहिओ वंजणोग्गहे तेणं ॥ जं वंजणोग्गहम्मि वि, भणियं विण्णाणमव्वत्तं ॥२६३॥

व्याख्या—अथवा परस्यैषा मतिः यदुत सोऽव्यक्तोऽनिर्देश्यादिस्वरूपः शब्दोऽर्थावग्रहात्पूर्वमेव व्यञ्जनावग्रहे तेन श्रोत्रा गृहीतः, यस्माद्व्यञ्जनावग्रहेऽपि भवद्भिरव्यक्तं विज्ञानमुक्तम्, ज्ञानस्याव्यक्तता चाव्यक्तविषयग्रहण एवोपपद्यत इति भावः ॥ २६३ ॥ अत्रोत्तरमाह—

अत्थि तयं अव्वत्तं, न उ तं गिण्हइ सयंपि सो भणियं ॥ न उ अग्गहियम्मि जुज्जइ,सद्दोत्ति विसेसणंबुद्धी २६४

व्याख्या—अस्ति श्रोतुर्व्यञ्जनावग्रहे, तद्,अव्यक्तं ज्ञानं, न पुनरसौ श्रोताऽतिसौक्ष्म्यात् तत् स्वयमपि गृह्णाति संवेदयते, एतच्च प्रागपि भणितम् " सुत्त-मत्ताइसुहुमबोहोव्व " इति वचनात्, तथा, "सुत्तादओ सयं पि य विन्नाणं नावबुज्झंति" इति वचनाच्च, तस्माद्व्यञ्जनमात्रस्यैव तत्र ग्रहणं, न शब्दस्य, व्यञ्जनावग्रहत्वान्यथानुपपत्तेरेव, न च सामान्यरूपतयाऽव्यक्ते शब्देऽगृहीतेऽकस्मादेव शब्दः इति विशेषणबुद्धिर्युज्यते,अनुस्वारस्यालाक्षणिकत्वं,अस्याः प्रथमतो भावेऽवग्रहकालेऽप्यपायप्रसङ्गः।२६४

व्यञ्जनावग्रहेऽव्यक्तशब्दरूपार्थभाने दोषमुपदर्शयति—

अत्थो त्ति विसयगहणं,जइ तम्मिवि सो न वंजणं नाम ॥ अत्थोग्गहो चिय तओ,अविसेसो संकरो वावि॥२६५॥

व्याख्या—अर्थावग्रहे अर्थ इत्यनेन विषयस्य रूपादिभेदेनानिर्धारितस्याव्यक्तस्य शब्दादेर्ग्रहणमभिप्रेतम् , यदि च तस्मि-

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रह-विषयनिरूपणे परकृता-रेकापरिहारादिप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणे परकृता रेकापरिहारादिप्ररूपणम् ॥

ऽपि व्यञ्जनावग्रहेऽसावव्यक्तशब्दः प्रतिभासत इत्यभ्युपगम्यते, तदा न व्यञ्जनं नाम व्यञ्जनावग्रहो न स्यादित्यर्थः, एवञ्च व्यञ्जनावग्रहकथैवोच्छिद्येत, व्यञ्जनमात्रसम्बन्धस्यैव तत्रोक्तत्वात्, भवता तु तत्राव्यक्तशब्दरूपार्थग्रहणस्याभिधीयमानत्वात्, अव्यक्तशब्दग्रहणेत्वसावर्थावग्रह एव, एवमपि सूत्रोक्तत्वाद् व्यञ्जनावग्रहत्वे द्वयोरपि व्यञ्जनार्थावग्रहयोरविशेषः स्यात्, मेचकमणिप्रभावात्सङ्करो वा स्यादिति ॥ २६५ ॥ एतावता व्यञ्जनावग्रहे व्यञ्जनसम्बन्धमात्रम्, अर्थावग्रहे त्वव्यक्तशब्दाद्यर्थस्यैव ग्रहणं न तु व्यक्तशब्दाद्यर्थग्रहणमिति प्रतिपादितम्, इदानीमर्थावग्रहे युक्त्यन्तरेण व्यक्तशब्दाद्यर्थसंवेदनं निराकरोति–

जेणत्थोग्गहकाले. गहणेहावायसंभवो नत्थि ॥ तो नत्थि सद्दबुद्धी, अहत्थि नावग्गहो नाम ॥ २६६ ॥

व्याख्या—येनार्थावग्रहकाले क्रमोत्पित्सुस्वभावानामर्थग्रहणेहापायानां मतिज्ञानभेदानां सम्भवो नास्ति, ततोऽर्थावग्रहे नास्ति शब्द इति विशेषबुद्धिः, तस्या अपायरूपाया अर्थग्रहणेहापूर्वकत्वात्, अथास्त्यसौ तत्र, तर्हि नायमर्थावग्रहः किन्त्वपाय एव स्यात्, तथाप्युपगमे त्वर्थावग्रहेहयोरभाव एव स्यात् ॥ २६६ ॥ अर्थावग्रहे शब्द इति विशेषबुद्ध्युपगमे दोषान्तरमाह—

सामण्णतयण्णविसे–सेहा–वज्जण–परिग्गहणओ से ॥ अत्थोग्गहेगसमओ–वओगबाहुल्लमावण्णं ॥ २६७ ॥

व्याख्या- अर्थावग्रहैकसमये भवतोपगम्यमाना निश्चयरूपा शब्द इति विशेषबुद्धिरकस्मादनुपजायमानाऽव्यक्तशब्दसामान्यग्रहणशब्दसामान्यविशेषशब्दान्यरूपादिविशेषधर्मालोचनलक्षणेहारूपादिविशेषधर्मपरिवर्जनशब्दविशेषधर्मपरिग्रहणतः श्रोतुरुपजायत इत्यर्थावग्रहैकसमये उपयोगबाहुल्यमापन्नम्, न चैतद्युक्तम्, उपयोगयौगपद्याभावप्रतिपादकागमविरोधादिति नार्थावग्रहकाले शब्द इति विशेषबुद्धिः किन्तु शब्द इति प्रज्ञापको भणतीति सिद्धम् ॥२६७॥ अथास्मिन्नेवार्थावग्रहे परवाद्यभिप्रायं निराचिकीर्षुराह-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अण्णे सामण्णग्गह–णमाहु बालस्स जायमेत्तस्स ॥ समयम्मि चेव परिचिय–विसयस्स विसेसविन्नाणं ॥२६८॥

अन्ये वादिन एवमाहुः–जातमात्रस्य तत्क्षणजातमात्रस्य बालस्य सङ्केतादिविकलत्वेनापरिचितविषयस्य सामान्यमात्रस्याशेषविशेषविमुखस्याव्यक्तस्य सामान्यस्य ग्रहणमालोचनम्, परिचितविषयस्य तु, समय एवाद्यशब्दश्रवणसमय एव, विशेषविज्ञानं जायते, ततस्तमाश्रित्य ''तेणं सद्दे त्ति उग्गहिये'' इत्यादि यथाश्रुतमेव व्याख्यायते न कश्चिद्दोष इत्याशयः।।२६८।।अत्रोत्तरमाह–

तदवत्थमेव तं पुव्व–दोसओ तम्मि चेव वा समये ॥ संखमहुराइसुबहुय–विसेसगहणं पसज्जेज्जा ॥ २६९ ॥

'जेणत्थोग्गहकाले' इत्यादि 'सामण्णतयण्णविसेसेहा' इत्यादिग्रन्थोक्तपूर्वदोषतस्तदेतत्परोक्तं, तदवस्थमेव दूषितावस्थमेव, नान्यदूषणाभिधानप्रयासोऽत्राभिधेय इत्याशयः, वा अथवा, तस्मिन्नेव समये शब्दोऽयमित्येकोपयोगसमय एव शङ्खमधुरादिसुबहुविशेषग्रहणं प्रसज्येत, 'न पुण जाणइ के वेस सद्दे' इतिसूत्रावयवस्य सर्वप्रमातृन्प्रत्यविशेषेण प्रवृत्तस्य विरोधेन कस्यचित्प्रथमसमये एव सर्वविशेषविषयकं ग्रहणम्भवत्येवेत्यभ्युपगन्तुमशक्यमेव,शब्दरूपधर्मिग्रहणमन्तरेण प्रकृष्टमतेरप्युत्तरोत्तरबहुधर्मग्रहणत्वासम्भवादिति ॥ २६९ ॥ एकसमये शब्दोऽयमितिविज्ञानमभ्युपगच्छन्तम्प्रति समयविरोधाददोषान्तरमुपढौकयति–

अत्थोग्गहो न समयं,अहवा समओवओगबाहुल्लं ॥ सव्वविसेसग्गहणं, सव्वा वि मइरवग्गहो गिज्झो ॥२७०॥
एगो वाऽवाओ च्चिय, अहवा सोऽगहियणीहिए पत्तो ॥ उक्कम–वइक्कमा वा पत्ता धुवमोग्गहाईणं ॥२७१॥
सामण्णं च विसेसो, सो वा सामण्णमुभयमुभयं वा ॥ न य जुत्तं सव्वमियं, सामण्णालंबणं मोत्तुं ॥२७२॥

विशेषविज्ञानस्यासङ्ख्येयसामायिकत्वेनार्थावग्रहे विशेषविज्ञानाभ्युपगमे '' उग्गहो एक्कं समयं '' इति सिद्धान्तनिर्दिष्टः

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयक परकृतारेकापरिहारादिप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामयिकोऽसौ न स्यात्, अथवा "सामण्ण–तयण्णविसेसेहा ॥२६७॥" इत्यादिपूर्वग्रन्थोक्तं समयोपयोगबाहुल्यं स्यात्, अथवा परिचितविषयस्य विशेषविज्ञानेऽभ्युपगम्यमाने परिचिततरविषयस्य तस्मिन्नेव सर्वविशेषग्रहणमनन्तरोक्तं प्रसज्येत, अथवा सर्वोऽपि मतिरवग्रहो ग्राह्यः प्राप्तः स्यात्, विशेषविषयकत्वेन वा सर्वोऽपि मतिरपाय एव स्यात्, एवं सत्यपायस्यैक-सामयिकत्वप्राप्तौ "ईहावाया मुहुत्तमन्तं तु" इति विरुध्यते। अथवा तथाऽभ्युपगमेऽनवगृहीतेऽनीहितेऽपायः प्राप्तः। एवञ्चावगृहीते ईहिते चाऽपाय इत्युपपादकस्य सिद्धान्तस्य विरोधः, अथवा पाटववैचित्र्येणावग्रहेहाऽपायधारणानां ध्रुवमुत्क्रमव्यतिक्रमौ स्याताम्, 'पश्चानुपूर्वीभवनमुत्क्रमः,' 'अनानुपूर्वीभावस्तु व्यतिक्रमः,' एवमुपगमे "उग्गहो ईहा अवायो य, धारणा एव होन्ति चत्तारि" इति परममुनिनिर्दिष्टस्य तेषां क्रमस्य विरोधः स्यात्, तथा यत्प्रथमसमये गृह्यते स विशेष इतिनियमाऽभ्युपगमे सामान्यं विशेषस्स्यात् प्रथमसमये सामान्यस्यैव ग्रहणात्, अथवा प्रथमसमये सामान्यमेव गृह्यत इति वस्तुस्थितिमाश्रित्य भवन्मते प्रथमसमये गृह्यमाणो विशेषः सामान्यं स्यात्, अथवा सामान्यं विशेषश्चेत्युभयं, उभयं वा स्यात्, सामान्यं सामान्यविशेषोभयरूपं, विशेषश्च सामान्यविशेषोभयरूपः स्यात्, तथाहि, 'अव ईषत् सामान्यं गृह्णातीत्यवग्रह' इतिव्युत्पत्त्या वस्तुस्थितिसमायातं यत्सामान्यं तत्स्वरूपेण तावत्सामान्यं भवदभ्युपगमेन तु विशेष इत्येकस्यापि सामान्यस्योभयरूपता, तथा योऽपि भवदभ्यु-पगतो विशेषः सोऽपि त्वदभिप्रायेण विशेषः, वस्तुस्थित्या तु सामान्यम्, इति विशेषस्याप्येकस्योभयरूपता, अर्थावग्रहस्य सामा-न्यमालम्बनं मुक्त्वा न च युक्तं सर्वमिदम्, अघटमानकत्वात्, पूर्वोक्तस्यापि दूषणस्यात्र प्रसङ्गायातत्वेन न पौनरुक्त्यावहत्वमिति ॥ २७०-२७१-२७२ ॥ प्रथमं सामान्यमात्रग्राहि आलोचनाज्ञानं तदनन्तरं रूपादिविशेषव्यावृत्तशब्दत्वग्राही अर्थावग्रह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति केषाञ्चिन्मतं निराकर्तुमुपन्यस्यति–

केइ दिहालोयणपु–व्वमोग्गहं बेंति तत्थ सामण्णं ॥ गहियमहत्थावग्गह–काले सद्देत्ति निच्छिण्णं ॥२७३ ॥

केचिद्वादिन इहास्मिन् प्रक्रमे आलोचनपूर्वमालोचनं पूर्वं यत्र स तथा तं आलोचनपूर्वकमित्यर्थः । तथाभूतमवग्रहं ब्रुवते प्रथममालोचनाज्ञानं ततोऽर्थावग्रह इत्येवं व्याचक्षते, तथा च तैरुक्तम्–"अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं, प्रथमं निर्विकल्पकम् ॥ बालमूकादिविज्ञान–सदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ १ ॥" इति तत्र आलोचनाज्ञाने सामान्यमव्यक्तं वस्तु गृहीतं, प्रतिपत्त्रेति गम्यते, अथानन्तरम्, अर्थावग्रहकाले निच्छिन्नं पृथक्कृतं रूपादिभ्यो व्यावृत्तं शब्दविशेषणविशिष्टं तदेव, गृहीतमित्यनुवर्तते, एवमुपगमे "से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा" इत्येतदालोचनाज्ञानापेक्षया नीयते 'तेणं सद्दे त्ति उग्गहिए' एतत्त्वर्थावग्रहापेक्षयेति सर्वं सुस्थम् ॥ २७३ ॥ तदेवं वादिनमीषद्गर्वाध्मातमज्ञं विज्ञाय परं मार्गावतारणाय विकल्पयन्नाह सूरिः—

तं वंजणोग्गहाओ, पुव्वं पच्छा स एव वा होज्जा ॥ पुव्वं तदत्थवंजण–संबन्धाभावओ णत्थि ॥२७४॥

तद्भवदुत्प्रेक्षितमालोचनं व्यञ्जनावग्रहात्पूर्वं पश्चात्स एव वा भवेत्, स्थानान्तराभावात्, अर्थव्यञ्जनसम्बन्धाभावात्पूर्वं तावत्तन्नास्ति, अर्थः शब्दादिविषयभावेन परिणतद्रव्यसमूहः, व्यञ्जनं श्रोत्रादीन्द्रियं, तयोस्सम्बन्धस्य सामान्यविषयग्राह्यालोचनस्य सर्वत्र सर्वदोत्पत्तिप्रसङ्गपरिहाराय तत्कारणतयाऽवश्यमभ्युपेयत्वेन तदभावे तदसम्भवात्, यद्युक्तालोचनोत्पत्तयेऽर्थव्यञ्जनसम्बन्धाभाव उपेयते तदा तत्स्वरूपस्य व्यञ्जनावग्रहस्यैवोक्तालोचनात्पूर्वं सत्त्वं न त्वालोचनस्य व्यञ्जनावग्रहात्पूर्वं सत्त्वमिति प्रथमविकल्पो नात्मानमासादयेदित्याशयः ॥ २७४ ॥ व्यञ्जनावग्रहात्पश्चादुक्तालोचनं भवतीति द्वितीयविकल्पमाधिकृत्याह—

॥ द्वितोयः तरङ्गः॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणे पुनरन्यकृतयुक्त्याऽऽलोचनापूर्वकत्वंतस्येतिमतं विकल्प्य परास्तम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अत्थोग्गहो वि जं वं-जणोग्गहस्सेव चरमसमयम्मि ॥ पच्छा वि तो न जुत्तं, परिसेसं वंजणं होज्जा ॥२७५॥

अर्थावग्रहोऽपि यस्माद्व्यञ्जनावग्रहस्यैव चरमसमये भवतीति निर्णीतं प्राग्, तस्मात्पश्चादपि व्यञ्जनावग्रहादालोचनज्ञानं न युक्तं, व्यञ्जनार्थावग्रहान्तरालकालस्यैवाभावेन तदानीं तदुत्पत्तेर्वक्तुमशक्यत्वात्तदेवं पूर्वपश्चात्कालयोस्तत्सत्त्वनिषेधे पारिशेष्यान्मध्यकालवर्ती तृतीयविकल्पोपन्यस्तो व्यञ्जनं व्यञ्जनावग्रह एव भवताऽऽलोचनाज्ञानत्वेनाभ्युपगतो भवेत्, एवं च न कश्चिद्दोषः, नाममात्र एव विवादात् ॥२७५॥ किञ्च तद्व्यञ्जनकालेऽभ्युपगम्यमानमालोचनं किमर्थस्य व्यञ्जनानां वा, प्रथमपक्षे व्यञ्जनावग्रहत्वाभावान्न व्यञ्जनावग्रहस्य नामान्तरमप्यालोचनमिति, द्वितीयपक्षेऽर्थविषयकत्वाभावादन्वर्थादालोचनसंज्ञाभावप्रसङ्ग इत्याह—

तं च समालोयणम-त्थदरिसणं जइ न वंजणं तो तं ॥ अह वंजणस्स तो कह-मालोयणमत्थसुण्णस्स ॥२७६॥

तत्समालोचनं यदि सामान्यरूपस्यार्थस्य दर्शनमिष्यते, ततस्तर्हि न व्यञ्जनं व्यञ्जनावग्रहात्मकं भवति व्यञ्जनावग्रहस्य व्यञ्जनसम्बन्धमात्ररूपत्वेनार्थशून्यत्वात्, अथ व्यञ्जनस्य शब्दादिविषयपरिणतद्रव्यसम्बन्धमात्रस्य तत्समालोचनमिष्यते, तर्हि कथमालोचनं कथमालोचकत्वं तस्य घटते, तत्र हेतुः अर्थशून्यस्येति, व्यञ्जनसम्बन्धमात्रान्वितत्वेन सामान्यार्थालोचकत्वानुपपत्तेरित्यर्थः ॥२७६॥ नन्वेतदालोचनाज्ञानं शास्त्रान्तरे प्रसिद्धमस्ति तत्किं स्वरूपमुररीकृत्येत्यत्र प्रतिविधानं वक्तव्यमित्यत्राह—

आलोयणत्ति नामं, हवेज्ज तं वंजणोग्गहस्सेव ॥ होज्ज कहं सामण्ण-ग्गहणं तत्थत्थसुण्णम्मि ॥ २७७ ॥

तस्मादालोचनमिति यन्नाम तदन्यत्र निर्गतिकं सत् पारिशेष्यात् व्यञ्जनावग्रहस्यैव द्वितीयं नाम भवेत्, एवं सति भवतो यदभिमतं सामान्यमात्रग्रहणमालोचनन्तन्न तत्, यतः प्रागुक्तयुक्तिभिः अर्थशून्ये तत्र कथं सामान्यग्रहणं भवेत्,तस्मादर्थावग्रह

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितःपाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहविषयनिरूपणं तत्र पुनरन्यसम्मतालोचनापूर्वकत्वं विकल्प्य परिहृतम् ॥

For Private And Personal Use Only

एव सामान्यार्थग्राहकः, "अस्ति ह्यालोचनाज्ञानम्" इत्याद्यपि तमाश्रित्यैव घटत इति ॥ २७७ ॥

'तुष्यतु दुर्जन' इति न्यायेन व्यञ्जनावग्रहे सामान्यं गृहीतमित्युपगम्याप्याह—

गहियं व होउ तहियं, सामण्णं कहमणीहिए तम्मि ॥ अत्थावग्गहकाले, विसेसणं एस सद्दो त्ति ॥ २७८ ॥

अथवा भवतु तस्मिन्व्यञ्जनावग्रहे सामान्यं गृहीतम्, तथापि कथमनीहितेऽविमर्शिते तस्मिन्नकस्मादेवार्थावग्रहकाले शब्द एषः इति विशेषणं विशेषज्ञानं युक्तम्, न हि निश्चयो झगित्येवेहामन्तरेण युज्यते, तस्मान्नार्थावग्रहे शब्द इत्यादिविशेषबुद्धिर्युज्यते ॥ २७८ ॥ अर्थावग्रहसमय एवेहापायौ भविष्यत इति मन्यमानम्परम्प्रत्याह—

अत्थावग्गहसमए, वीसुमसंखेज्जसमइया दो वि ॥ तक्का-वगमसहावा, ईहा-ऽवाया कहं जुत्ता ? ॥ २७९ ॥

अर्थावग्रहसम्बन्धिन्येकस्मिन् समये कथमीहापायौ युक्तौ ? इति सम्बन्धः, यतः तर्कावगमस्वभावौ, तर्को विमर्शस्तत्स्वभावेहा, अवगमो निश्चयस्तत्स्वभावोऽपायः, द्वावपि चैतौ पृथगसङ्ख्येयसमयौ, तथा च यदिदमर्थावग्रहसमये विशेषज्ञानं त्वयेष्यते सोऽपायः स चावगमस्वभावो निश्चयस्वरूपः, या च तत्समकालमीहाऽभ्युपगम्यते सा तर्कस्वभावाऽनिश्चयात्मिका, तथा च विरुद्धनिश्चयाऽनिश्चयस्वभावयोरनयोर्नैकस्मिन्नवग्रहसमये भावो युक्तः परस्परपरिहारव्यवस्थितत्वात्, इत्येकानुपपत्तिः । तथा, अवग्रहस्यैकस्समयः, अनयोश्च पृथक् पृथक् असंख्येयाः समयाः, एवञ्च पृथगसंख्येयसमययोरीहापाययोरेकस्मिन् समये भावोऽपि समयविरोधान्न सम्भवति, इति द्वितीयानुपपत्तिः ॥ अतोऽत्यन्तासम्बद्धत्वादुपेक्षणीयमेतत् ॥ २७९ ॥

सामान्यमात्रग्राहित्वेऽवग्रहस्य ग्रन्थान्तरोक्तक्षिप्रेतरादिभेदासम्भवाद्विशेषग्राहित्व एव तस्य घटनाद्विशेषग्राह्यवग्रह इति निः-

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे परस्यार्थावग्रहसमकालमीहापाययोः सत्त्वसम्भावनां युक्त्याऽपहस्तयति॥

संख्यप्रेरकान्तर्गतप्रेरकाविशेषस्यावशिष्टामाशङ्कामपहस्तयितुं सूरिरुपन्यस्यति--

खिप्पेयराइभेओ, जमोग्गहो तो विसेसविण्णाणं ॥ जुज्जइ विगप्पवसओ, सद्दोत्ति सुयम्मि जं केइ ॥२८०॥

क्षिप्रेतरादिभेदो यस्मादवग्रहः, ततः शब्द इति विशेषविज्ञानं युज्यते, अर्थावग्रहे इति प्रस्तावाल्लभ्यते, 'तेणं सद्दे त्ति उग्गहिए' इत्यादिवचनात् यत्सूत्रे निर्दिष्टमिति शेषः, विशेषविज्ञानत्वे हेतुः विकल्पवशतः इहान्यत्रोक्तनानात्ववशतः, अवग्रहस्य द्वादशभेदोपदर्शनार्थमिह शास्त्रान्तरे तत्त्वार्थादौ चैवमुक्तिः–क्षिप्रमवगृह्णाति १, चिरेणावगृह्णाति २, बह्ववगृह्णाति ३, अबह्ववगृह्णाति ४, बहुविधमवगृह्णाति ५, अबहुविधमवगृह्णाति ६, एवमनिश्रितं ७, निश्रितं ८, असन्दिग्धं ९, सन्दिग्धं १०, ध्रुवम् ११, अध्रुवमवगृह्णाति १२ इति ॥ ततः क्षिप्रं चिरेण वाऽवगृह्णातीति विशेषणान्यथानुपपत्त्या ज्ञायते नैकसमयमात्रमान एवार्थावग्रहः, किन्तु चिरकालिकोऽपि, तथा बहूनां श्रोतॄणामविशेषेण प्राप्तिविषयस्थे शङ्खभेर्यादिबहुतूर्यनिर्घोषे क्षयोपशम-वैचित्र्यात् कोऽप्यबहु सामान्यमवगृह्णाति,अन्यो बह्ववगृह्णाति भिन्नांस्तांस्तान् शब्दान्गृह्णाति,अपरः स्त्रीपुरुषवाद्यत्वादिबहुविधवि-शेषधर्मविशिष्टत्वेन बहुविधमवगृह्णाति, तदन्यस्त्वबहुविधविशिष्टत्वादबहुविधमवगृह्णाति, अत एतस्माद् बहुबहुविधाद्यनेकविकल्प नानात्ववशादवग्रहस्य क्वचित्सामान्यग्रहणं क्वचित्तु विशेषग्रहणमित्युभयमप्यविरुद्धं, ततो यत् सूत्रे 'तेणं सद्दे त्ति उग्गहिए' इतिवचनात् शब्दः इति विशेषविज्ञानमुपदिष्टम्, तदप्यर्थावग्रहे युज्यत एव, इति केचित् ॥ २८० ॥ अत्रोत्तरमाह--

स किमोग्गहो त्ति भण्णइ, गहणेहाऽवायलक्खणत्ते वि ॥ अह उवयारो कीरइ, तो सुण जह जुज्जए सो वि ॥२८१॥

बहुशः समाहितमप्यर्थं पुनः पुनः प्रेरयन्तं प्रेरकं साक्षेपं काक्वा सूरिः पृच्छति, किंशब्दः क्षेपे, स पूर्वोक्तो विशेषावगमः,

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) अर्थावग्रहे क्षिप्राक्षिप्रादिभेदासम्भवतो विशेषग्राहित्वमेव युक्तमितिप्रेरकविशेषारेकायाः समाधानम् ॥ ॥ ५७ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अवग्रहोऽर्थावग्रहो भण्यते ग्रहणेहापायलक्षणत्वेऽपि, क्षेपार्थककिंशब्दसमभिव्याहारात्कथं ग्रहणेहापायलक्षणत्वे सत्यपि बहुबहुविधादिविशेषग्राहकत्वेन निश्चयरूपतयाऽपायः सन्नर्थावग्रह इति भण्यते ?, ग्रहणेहयोःपूर्वभावित्वेन अपायस्य स्वस्वभावत्वेनापायलक्षणत्वं बोध्यम्, स्वस्वरूपस्यापि च लक्षणत्वं भवत्येव।यदाह॥ "विषामृते स्वरूपेण, लक्ष्येते कलशादिवत्॥एवं च स्वस्वभावाभ्यां, व्यज्येते खलसज्जनौ ॥१॥"इति॥ बहुबहुविधादिग्रहणस्योक्तलक्षणत्वबलादपायत्वे कथं शास्त्रान्तरेऽवग्रहादीनां बह्वादिग्रहणमुक्तम् ?, सत्यमुक्तम्, किन्तूपचारतः बह्वादिग्राहकस्यापायस्य कारणेष्ववग्रहादिषु योग्यतया कार्यस्वरूपमस्तीति कृत्वोपचारतस्तेऽपि बह्वादिग्राहकाः प्रोच्यन्ते, अथ यदि उक्तन्यायेन त्वयाऽप्युपचारं कृत्वा विशेषग्राहकोऽर्थावग्रह इत्युच्यते, स वाङ्मात्रेण तव न युज्यते, " यत्र मुख्यार्थो न घटते तत्र प्रयोजने सति उपचारः प्रवर्तते, " त्वया त्ववग्रहस्य विशेषविषयकत्वोपपादनाय यद्यदुक्तं तदन्यथैव समर्थितमिति प्रयोजनाभावान्नोपचारो युक्तः, यदि मां शिष्यो भूत्वा पृच्छसि त्वं 'कथमुपचारः क्रियमाणो घटत इति ?,' ततः शृणु समाकर्णय, सोऽपि यथा युज्यते तथा कथयामि ॥ २८१ ॥

यथाप्रतिज्ञातमेव सम्पादयन्नाह–

सामण्णमेत्तगहणं, नेच्छइओ समयमोग्गहो पढमो ॥ तत्तोऽणंतरमीहिय–वत्थुविसेसस्स जोऽवाओ ॥२८२॥
सो पुणरीहाऽवाया–ऽवेक्खाओ वग्गहोत्ति उवयरिओ ॥ एस्सविसेसावेक्खं, सामण्णं गेण्हए जेणं ॥२८३ ॥
तत्तोऽणंतरमीहा, तत्तोऽवाओ य तव्विसेसस्स ॥ इय सामण्णविसेसा–वेक्खा जावंतिमो भेओ ॥ २८४ ॥

इहैकसमयमात्रमानो नैश्चयिको निरुपचरितः सामान्यवस्तुमात्रग्राहकोऽर्थावग्रहः प्रथमः, निश्चयवेदिपरमयोग्यवगम-

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहे प्रेरकविशेषारेकां निरस्य बह्वादिग्राहित्वोपचारोपपादनम्॥

For Private And Personal Use Only

विषयत्वान्नैश्चयिकोऽयमुच्यते, ततो नैश्चयिकार्थावग्रहादनन्तरमीहितस्य वस्तुविशेषस्य योऽपाय. स पुनर्भाविनीमीहामपायं चापेक्ष्योपचरितोऽवग्रहोऽर्थावग्रहः, स छद्मस्थव्यवहारिभिर्व्यवह्रियमाणत्वाद्व्यावहारिकोर्थावग्रहः, उपचारे निमित्तान्तरमाह–एस्सेत्यादि, एष्यो भावी योऽन्यो विशेषस्तदपेक्षया येन कारणेनायमपायोऽपि सन् सामान्यं गृह्णाति, सामान्यग्राहित्वात्प्रथमनैश्चयिकार्थावग्रहवदयमर्थावग्रहः, ततस्सामान्येन शब्दनिश्चयरूपात्प्रथमापायादनन्तरं किमयं शाङ्खः शब्दः शार्ङ्गो वेत्यादिरूपेहा भवति, ततस्तद्विशेषस्य शाङ्खत्वादेरीहितस्य शाङ्ख एवायमित्यादिरूपेणापायश्च निश्चयरूपो भवति, अयमपि च भाविताद्विशेषेहामपायञ्चापेक्ष्य सामान्यालम्बनत्वादुपचरितोऽर्थावग्रहः, इयं च सामान्यविशेषापेक्षाऽसम्भवत्स्वविशेषान्तरान्त्यविशेषं यावद्भवति, अथवा यतो विशेषात्परतः प्रमातुर्विशेषजिज्ञासा निवर्तते तमन्त्यविशेषं यावत् व्यावहारिकार्थावग्रहेहापायार्थं सामान्यविशेषापेक्षा कर्तव्या एवमिहोपचारघटना युज्यते ॥२८२–२८३–२८४ ॥ उक्तगाथात्रयपर्यवसितमर्थमुपदर्शयति—

सव्वत्थेहावाया, निच्छयओ मोत्तुमाइसामण्णं ॥ संववहारत्थं पुण, सव्वत्थाऽवग्गहोऽवाओ ॥ २८५ ॥

आदिसामान्यमव्यक्तं सामान्यमात्रालम्बनमेकसामयिकं ज्ञानं मुक्त्वा सर्वत्र विषयपरिच्छेदे कर्तव्ये निश्चयतः परमार्थत ईहापायौ भवतः, ईहा, पुनरपायः, पुनरीहा, पुनरप्यपाय, इत्येवंक्रमेण यावदन्त्यो विशेषः, न त्वर्थावग्रहः, अर्थावग्रहस्तु सामान्यमात्रालम्बनमेकसामयिकं प्रथमज्ञानमेव,न तदीहाऽपायो वा संव्यवहारार्थं पुनः सर्वत्र यो योऽपायः स स उत्तरेहापायापेक्षयैष्यविशेषापेक्षया चोपचारतोऽर्थावग्रहः ॥ २८५ ॥ यावत्तारतम्येनोत्तरोत्तरविशेषाकांक्षा प्रवर्तते तावदवग्रहः, तरतमयोगाभावे त्वपाय एव भवति न तस्यावग्रहत्वमिति दर्शयति—

॥ द्वितीयः तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहे- गाथात्रयेण बह्वादिग्राहित्वोपचार उपपादितः, गाथात्रयैदम्पर्यार्थश्च निरूपितः ॥ ॥ ५८ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तरतमजोगाभावे-ऽवाओ च्चिय धारणा तदंतम्मि॥ सव्वत्थ वासणा पुण, भणिया कालंतरे सई य॥२८६॥

तरतमयोगाभावे ज्ञातुरग्रेतनविशेषाकाङ्क्षानिवृत्तावपाय एव भवति, तस्यावग्रहत्वाभावात्तन्निमित्तानामीहादीनामभावे तदन्ते धारणा तदर्थोपयोगाप्रच्युतिरूपा भवति, वासना वक्ष्यमाणरूपा कालान्तरे स्मृतिश्चेति धारणाभेदद्वयं पुनः सर्वत्र भवति ॥२८६॥ सांव्यवहारिकार्थावग्रहापेक्षयेदानीं "तेणं सद्दे त्ति उग्गहिए" इत्यादिसूत्रं विशेषविज्ञानपरतयाप्युपपादयितुं शक्यत इत्याह—

सद्दो त्ति व सुयभणियं, विगप्पओ जइ विसेसविण्णाणं॥ घेप्पेज्ज तं पि जुज्जइ, संववहारोग्गहे सव्वं ॥२८७॥

वा अथवा, शब्द इति सूत्रभणितं शब्दस्तेनावगृहीत इति सूत्रे प्रतिपादितं यदि विकल्पतो विवक्षावशतो विशेषविज्ञानं गृह्येत, संव्यवहारोपग्रहे गृह्यमाणे सति सर्वं तदपि युज्यते ॥ २८७ ॥ व्यावहारिकार्थावग्रहाभ्युपगमे सविशेषं गुणमुपदर्शयन्नाह—

खिप्पेयराइभेओ, पुव्वोइयदोसजालपरिहारो॥ जुज्जइ संताणेण य, सामण्णविसेसववहारो ॥ २८८ ॥

क्षिप्रेतरादिभेदं यत्पूर्वोदितदोषजालमेकसामयिकसामान्यमात्रग्राहकनैश्चयिकार्थावग्रहव्याख्यातारम्प्रत्येकसामयिकत्वेऽस्य कथं क्षिप्राचिरग्रहणविशेषणं ? सामान्यमात्रग्राहकत्वे च कथं बहुबहुविधादिविशेषणोक्तं विशेषग्रहणं?, तथाऽस्यैव विशेषग्राहकत्वे समयोपयोगबाहुल्यमित्यादिस्वरूपम्, तस्य परिहारो व्यावहारिकार्थावग्रहे सति युज्यते, नैश्चयिकार्थावग्रहवादिभिरपि उपचाराद्व्यावहारिकार्थावग्रहस्यासंख्येयसमयनिष्पन्नविशेषग्राहकज्ञानरूपस्य स्वीकृतत्वेन तत्र क्षिप्रेतरादिभेदस्य बहु-बहुविधादिविशेषणोक्तविशेषग्राहकत्वस्य सम्भवात्, तस्य चाऽसंख्येयसामयिकत्वेनैकसमयोपयोगबाहुल्यस्यावकाश एव नास्ति, एवं च क्षिप्रेतरादिविशेषणकलापो मुख्यतया सांव्यवहारिकार्थावग्रह एव घटते कारणे कार्यधर्मोपचारतस्तु नैश्चयिकार्थावग्रहेऽपीत्युक्तं प्राग्, सन्तानेन च

॥ द्वितीया तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिनिरूपणे अर्थावग्रहस्य नैश्चयिकव्यावहारिकभेदौ व्युत्पाद्याऽवग्रहतत्त्वनिष्टङ्कनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामान्यविशेषव्यवहारो लोकरूढोऽपि व्यावहारिकार्थाऽवग्रहे युज्यते, लोके विशेषोऽप्यपेक्षया सामान्यं, यत्सामान्यं तदप्यपेक्षया विशेषः, इत्येवमन्त्यविशेषं यावत्,एतच्चौपचारिकावग्रहे सत्येव घटते, नान्यथा, 'यदनन्तरमीहादि प्रवृत्तिः सोऽवग्रह'इत्येबमवग्रहलक्षणस्य नैश्चयिकावग्रह इव विशेषग्राहिज्ञानेऽपायरूपे औपचारिकार्थावग्रहतया स्वीक्रियमाणेऽपि भावात् ॥ २८८ ॥

॥इति सविवरणे श्रीज्ञानार्णवे मतिज्ञानाऽऽद्यभेदलक्षणद्विविधावग्रहतत्त्वप्ररूपणात्मको द्वितीयस्तरङ्गः सम्पूर्णः॥

(योजितः पाठः) द्वितीय तरङ्गो पसंहारः।तृतीय तरङ्गोपक्रमः। मतिज्ञान निरूपणे द्वितीयभेद - रूप—ईहा-तत्त्वनिरूपणम् ॥

अथ तृतीयस्तरङ्गः ॥ अथ मतिज्ञानद्वितीयभेदलक्षणामीहां व्याचिख्यासुराह—

इय सामण्णग्गहणा–णंतरमीहा सदत्थवीमंसा ॥ किमिदं सद्दोऽसद्दो, को होज्ज व संख–संगाणं ?॥ २८९ ॥

इत्येवं प्रागुक्तेन प्रकारेणाभिहिताऽव्यक्तवस्तुमात्रग्रहणलक्षणनैश्चयिकार्थावग्रहशब्दादिसामान्यग्रहणलक्षणव्यावहारिकार्थावग्रहात्मकसामान्यग्रहणानन्तरमीहा प्रवर्तते, सा सदर्थमीमांसा, सतस्तत्र विद्यमानस्य गृहीतार्थस्य विशेषविमर्शद्वारेण मीमांसा विचारणा, किमिदं वस्तु मया गृहीतं शब्दोऽशब्दो वेत्येवंस्वरूपा, इयं विचारणा निश्चयार्थावग्रहानन्तरभाविनी, वा अथवा शाङ्खशार्ङ्ग्योर्मध्ये कोऽयं भवेत् शब्दः शाङ्खः शार्ङ्गो वा, इयं विचारणा व्यवहारार्थावग्रहानन्तरभाविनी, यद्यपीत्थं विचारणा संशयात्मिका नेहा, तथाप्यनयाऽनन्तरभावी व्यतिरेकधर्मनिराकरणपरः अन्वयधर्मघटनप्रवृत्तश्चापायाभिमुख एव बोध उपलक्षित ईहा ॥ तद्यथा–"अरण्यमेतत् सवितास्तमागतो, न चाधुना सम्भवतीह मानवः ॥ प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्यं स्मरारातिसमाननाम्ना ॥ १ ॥" इति ॥ एतेन स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयानन्तरं पुरुषधर्मव्यतिरेकतः स्थाणुधर्मसमन्वयतश्च प्रायः स्थाणुरेवायमिति बोध ईहेत्युपदर्शितम्भवतीति ॥ २८९ ॥ अथ मतिज्ञानतृतीयभेदस्यापायस्य स्वरूपमाह—

For Private And Personal Use Only

महुराइगुणत्तणओ, संखस्सेव त्ति जं न संगस्स ॥ विण्णाणं सोऽवाओ, अणुगमवइरेगभावाओ ॥ २९० ॥

व्याख्या–मधुरस्निग्धादिगुणत्वात् शङ्खस्यैवायं शब्दो न शृङ्गस्य इत्यादि यद्विशेषविज्ञानं सोऽपायो निश्चयज्ञानरूपः, तत्र हेतुः, अनुगमव्यतिरेकभावतः इति, पुरोवर्त्यर्थधर्माणामनुगमभावात् तत्राविद्यमानार्थधर्माणां व्यतिरेकभावात्, अनुगमव्यतिरेकौ अस्तित्वनास्तित्वनिश्चयौ । अयं च व्यवहारार्थावग्रहानन्तरभावी अपाय उक्तः । निश्चयावग्रहानन्तरभावी तु श्रोत्रग्राह्यत्वादिगुणतः शब्द एवायं न रूपादिरिति ॥ २९० ॥ अथ मतिज्ञानतुरीयभेदलक्षणां धारणां सभेदामाह–

तयणंतरं तयत्था–विच्चवणं जो य वासणाजोगो ॥ कालंतरे य जं पुण–रणुसरणं धारणा सा उ ॥२९१॥

व्याख्या–तस्मादपायादनन्तरं यत्तदर्थादविच्यवनम्, उपयोगमाश्रित्याभ्रंशः, यश्च वासनाया जीवेन सह योगः सम्बन्धः, यच्च तस्यार्थस्य कालान्तरे पुनरिन्द्रियैरुपलब्धस्यानुपलब्धस्य वा एवमेव मनसाऽनुस्मरणं स्मृतिर्भवति, सेयं पुनस्त्रिविधाऽप्यर्थस्यावधारणरूपा धारणा विज्ञेया, वासना च तदावरणक्षयोपशमरूपा ज्ञेया॥ २९१ ॥

इदमत्रैदम्पर्यं–धारणाया अविच्युतिलक्षणभेदस्य दीर्घोपयोगमाश्रित्याभ्युपगमादेव पराभ्युपगतनिरन्तरसमानविषयकज्ञानसन्तानलक्षणधारावाहिकज्ञानफलस्य स्थिरार्थग्रहणस्योपपत्तौ निष्प्रयोजनमेव धारावाहिकज्ञानकल्पनं, पूर्वज्ञानमुत्पाद्य व्युपरतव्यापारस्य कारणस्य पुनर्व्यापारान्तराभावेन कारणाभावाच्च न निरन्तरज्ञानसन्तानलक्षणधा(*सप्तचत्वारिंशपत्रादिह यावद्योजितःपाठः)

*रावाहिकज्ञानाभ्युपगमो युज्यते न चैकापायोत्पत्तावपि सामग्रीसत्त्वात्पुनस्तदुत्पत्तेरवारणीयत्वात्तत्सन्तानोत्पत्तिर्निराबाधेति वाच्यम्, अपायस्यापायोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वात्प्रागभावस्य तद्धेतुत्वाद्वा पुनस्तदुत्पत्त्यापत्तेरभावात्, अन्यथैकवारं घटोत्पादेऽपि सा-

॥ तृतीय तरङ्गः ॥ (योजितः पाठः) मतिज्ञाननिरूपणे अपायस्वरूपतृतीयभेदस्य धारणास्वरूपचतुर्थभेदस्य तद्भेदस्य च निरूपणम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मग्रीमहिम्ना कपाले पुनस्तदुत्पत्त्यापत्तिप्रसङ्गादिति चेत्, उच्यते, घटोऽयं घटोऽयमित्यनुभवधारादर्शनेन तदपलापो दुष्करोऽपायसत्त्वेऽपायान्तरोत्पत्तिप्रतिबन्धस्याप्रामाणिकत्वात् स्पष्टस्पष्टतरस्पष्टतमवासनाजनकत्वेनापायजन्यापायपरम्पराया अवश्याभ्युपेयत्वादीहावग्रहादिभेद इवापायनानात्वेऽप्युपयोगभेदानापत्तेरेकसन्ततिकैकविषयकज्ञानस्यैवोपयोगत्वात् , तस्य च नानात्वेऽप्येकत्वाविरोधात् ततश्चापायसमानाकारस्मृतिजननी स्मृतिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमरूपा वासना विजृम्भते, कालान्तरे च तद्विषयिणी स्मृतिः प्रवर्त्तते इति,यद्यपीयं भिन्नोपयोगरूपत्वाभावान्नाधिकीभवितुमुत्सहते, तथापि क्षयोपशममहिम्नाऽव्यक्ततया स्थितं पूर्वज्ञानमेबोद्बोधकवशात् स्मृत्युपयोगरूपतामास्कन्दत्कथञ्चिद्भेदोपविद्धं सन्तानगामित्वलक्षणं भेदमास्कन्दतीति द्रष्टव्यं, ननु स्मृतिर्न प्रमाऽतीतश्यामत्वे वर्तमानावगाहिन्याः पाकरक्ते श्यामोऽयमिति प्रतीतेरिवातीततत्तांशे वर्त्तमानत्वावगाहिन्यास्तस्या अयथार्थत्वात्तत्ताविशिष्टस्यानागतवर्तमानस्य वर्त्तमानत्वानुभवबलादननुभूतस्य वा तत्र वर्त्तमानत्वस्य ज्ञानसामग्रीमहिम्नैव भानात्, अन्यथा विषयस्य वर्त्तमानत्वाज्ञाने तत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तिप्रसङ्गादत एव यदा धूमस्तदा वह्निरिति व्याप्त्यप्रतिसन्धानेऽपि ज्ञानसामग्रीमहिम्नैव वह्न्यनुमितौ वह्नेर्वर्तमानत्वज्ञानात्तत्र निःशङ्कं प्रवृत्तिरिति चेत्, न,पाकरक्ते श्यामोऽयमिति प्रतीतेरयथार्थत्वासिद्धेरिदानीमयं श्याम इत्याकाराभावेन तत्र श्यामतांशे वर्त्तमानत्वानवगाहनात्, अथ प्रकारतया तत्र विद्यमानत्वाभावेऽपि विशेष्यावच्छेदककालावच्छिन्नविशेषणसम्बन्धस्य संसर्गत्वात्संसर्गतया तद्भानात्सा प्रतीतिरयथार्थेति चेत्, तथापि पूर्वं श्याम इत्यत्रातीतश्यामतायामिव स घट इत्यत्राऽप्यतीतधर्मवैशिष्ट्यरूपायां तत्तायां विद्यमानत्वप्रतिसन्धानायोगेन स्मृतियाथार्थ्यस्य बाधितुमशक्यत्वात्कादाचित्कसम्बन्धपुरस्कारेणातीतधर्मज्ञानस्याप्यप्रामाण्ये च कादाचित्कसम्बन्धेन सत्प्रतिपक्षितत्वज्ञाने हेतुरपि हेत्वाभासतां भजेत्, अपि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चानुभवस्मरणयोर्विषयकृतविशेषाभावेऽपि प्रत्यक्षज्ञानस्येदम्पदप्रयोगहेतुत्वात्संस्कारजन्यज्ञानस्य तच्छब्दप्रयोगहेतुत्वात्तदुभयाभिलापवैलक्षण्यात्स्मृतेरप्रामाण्येऽनुभवस्याप्यप्रामाण्यापत्तिः, स्मृतेर्याथार्थ्येऽप्यनुभवप्रमात्वपारतन्त्र्यादप्रमात्वमितिचेत्, न, अनुमितेरपि व्याप्तिज्ञानादिप्रमात्वपारतन्त्र्येणायथार्थत्वप्रसङ्गाद्, अनुमितेरुत्पत्तौ परापेक्षा विषयपरिच्छेदे तु स्वातन्त्र्यमेवेति चेत्, न, स्मृतेरप्युत्पत्तावेवानुभवसव्यपेक्षत्वात्स्वविषयपरिच्छेदे तु स्वातन्त्र्यात्, अनुभवविषयीकृतभावावभासिन्याः स्मृतेर्विषयपरिच्छेदेऽपि न स्वातन्त्र्यमिति चेत्, तर्हि व्याप्तिज्ञानादिविषयीकृतानर्थान् परिच्छिन्दन्त्या अनुमितेरपि प्रामाण्यं दूर एव, नैयत्येनाभात एवार्थोऽनुमित्या विषयीक्रियत इति चेत्, तर्हि तत्तयाऽभात एवार्थः स्मृत्या विषयीक्रियत इति तुल्यमिति न किञ्चिदेतत् ।

वस्तुतः स्मृतित्वप्रमात्वे जन्यत्वप्रयोज्यत्वरूपं नानुभवप्रमात्वपारतन्त्र्यं यद्दृच्छोपकल्पितं त्वप्रयोजकं, यदि वाऽनुभूतधर्माश्रयत्वरूपा तत्ता स्मृतौ भासते इदन्तांशे उद्बुद्धसंस्कारस्यैव तत्तांशे स्मारकत्वात्फलबलेन तथात्वकल्पनाद्धर्मविशेषमादाय सहप्रयोगस्य समर्थनाद्, अनुभवस्मरणयोर्विषयकृतविशेषाभावेऽपि संस्कारजज्ञानत्वेन स्मृतेस्तच्छब्दप्रयोगहेतुत्वे तु प्रमुष्टतत्ताकस्मरणादपि तच्छब्दोल्लेखप्रसङ्गात्, अनुभवे यद्धर्मवैशिष्ट्यभानं तस्यातीतत्वं तत्ता स्मृतौ भासत इत्यभ्युपगमे चानागतविषयकस्मरणादौ तत्तांशेऽप्ययथार्थत्वप्रसङ्गादिति विभाव्यते, तदाप्यनुभूतधर्मे विद्यमानत्वस्याबाधान्न तस्या अयथार्थत्वम् ॥

सम्प्रदायानुसारिणस्त्वनुभूयमानत्वलक्षणेदन्तानुभवे भासतेऽनुभूतत्वरूपा च तत्ता स्मृतौ भासतेऽत एव स घट इति स्मृत्यभिलापस्य यः प्रागनुभूत इति विवरणं सङ्गच्छते, इदन्ताविषयकानुभवादेव च तत्ताविषयकं स्मरणमुन्मीलति तं विना तु प्रमुष्टतत्ताकं तत्, न चानुभूतत्वमेव यदि तत्ता तदा तदवगाह्यनुमितावपि तत्तोल्लेखप्रसङ्ग इति वाच्यम्, उल्लेखो यदि विषयता

|| मतिज्ञानभेदधारणाप्ररूपणाप्रसङ्गेन पराभिमतस्मृत्यप्रामाण्याशंकापरिहारः अनुमितिनिदर्शनेन युक्त्या च तत्प्रामाण्यव्यवस्थापनं साम्प्रदायिकतत्त्वप्रदर्शनंच

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदा तदभ्युपगमेऽविवादात्, यदि पुनरभिलापस्तदा संस्कारजज्ञानत्वेन तद्धेतुत्वेन तदापत्त्यभावात्, तथाप्यनुभूतो घटोऽनुभूयमानो घट इत्यनुभवप्रभवस्मरणे तत्तोल्लेखप्रसङ्ग इति चेत्, न, पूर्वानुपस्थितानुभूतत्वानुभूयमानत्वयोरेत्र तत्तेदन्तापदार्थत्वात्, प्रागनुभूतस्यापि कस्यचित् संसर्गत्वस्येव प्रकारत्वस्यापि सम्भवादित्याहुः, इदन्तानुल्लेख्यनुभवप्रभवस्मरणेऽपि तत्ताभानात्स्वसामग्रीमहिम्नैव तत्र तत्ता भासत इत्यन्ये, यत्तु तत्तेदन्ते स्मृत्यनुभवभासिनी अखण्डे एव वस्तुनी, एवं चेदन्तासंस्कारेणेदन्तैव तत्तया स्मर्यते प्रमुष्टतत्ताकं तु स्मरणं नास्त्येव ॥ हरिहराद्यनुचिन्तनं(ना) च कविकाव्यमूलज्ञानवन्मनःप्रभवेति सर्वा स्मृतिरयथार्थैव, न च क्वचित्प्रमितस्यैवान्यत्रारोपात्कथमन्यत्राप्रमितायास्तत्तायाः स्मृतात्रारोप इति वाच्यम्, इदन्तायाः पृथग्भानेन विषयकत्वेन प्रत्यभिज्ञायां तत्तायाः प्रमितत्वात् स्मृतात्रिदन्तायां तत्तारोपसम्भवात्, न च स्मृतेर्भ्रमत्वे तन्नियामकनानादोषकल्पने गौरवमिति वाच्यम्, इदन्तांशे उद्बुद्धसंस्कारस्यैव दोषत्वात्, इदन्तानुल्लेख्यनुभवप्रभवस्मरणेऽपि तत्तया धर्मान्तरस्यैवावगाहनान्न तस्या याथार्थ्यमिति, तत्तुच्छं, तत्तास्मृतेः पूर्वमिदन्तोपस्थितिं विना तदारोपासम्भवादिदन्तोल्लेखानन्तरमेव तदारोप इत्यत्र मानाभावाद्, भावे वा इदन्तात्वेन तदुल्लेखे विशेषदर्शनादारोपस्यैवाऽसम्भवात्, अपि चेदन्ताविषयकसंस्कारस्य स्वरूपत एव तत्ताविषयकस्मृतित्वावच्छेदेनैव हेतुत्वात् स्मृतौ तत्तयेदन्ताभानासम्भवः, तत्तावच्छिन्नप्रकारताकस्मृतित्वावच्छेदेन तद्धेतुत्वकल्पने तु तत्र तत्तया जगद्विषयकत्वप्रसङ्गात्,तत्तावच्छिन्नेदन्ताप्रकारकत्वस्य च स्वरूपतस्तत्ताप्रकारकत्वापेक्षया गौरवात्, अपि च तत्ताया अखण्डत्वे स्वरूपतस्तत्प्रकारकत्वावच्छिन्नं प्रत्येव प्रत्यभिज्ञानसाधारण्येनेदन्तांशे उद्बुद्धसंस्कारस्य हेतुत्वमुचितम्, न च प्रकारतयाऽनुभवत्वावच्छिन्नं प्रति विषयतया ज्ञानत्वेनैव हेतुत्वात्,अन्यथा दण्डाज्ञानेऽपि

॥ तृतीयस्तरङ्गः मतिज्ञाननिरूपणप्रसङ्गे युक्त्या धारणाभेदरूपस्मृतिप्रामाण्यव्यवस्थापनं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्संस्काराद्दण्डीतिबुद्धिप्रसङ्गात्, तत्ताज्ञानं विना कथं तदनुभव इति वाच्यम्, प्रकारतया संस्काराजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रत्येव विषयतया ज्ञानत्वेन हेतुत्वात्, इत्थं च तच्छब्दप्रयोगहेतुतापि तत्ताप्रकारकज्ञानत्वेनैवेति स्मृतिप्रत्यभिज्ञयोस्तत्तोल्लेख इति न किञ्चिदेतत्, किं बहुना ? स घटः सोऽयं घट इति स्मृतिप्रत्यभिज्ञानयोस्तत्तांशे समानाकारत्वात्प्रत्यभिज्ञायाः प्रामाण्ये स्मृतेरपि प्रामाण्यं,स्मृतेरप्रामाण्ये च तथा प्रत्यभिज्ञाया अपि तथात्वं प्रसजेदिति दुरुद्धरा प्रतिबन्दी,न चेदन्तासंस्कारस्यातीततत्तद्धर्मवैशिष्ट्य-स्मृतावेव हेतुत्वमिति युक्तं,एकाकारत्वभङ्गप्रसङ्गाद् गौरवाच्च, यत्तु'स्मृतेर्याथार्थ्येऽपि न प्रमात्वं यथार्थानुभवत्वस्यैव तत्त्वात्, अन्यथा स्मृतेः प्रमात्वे तदसाधारणकारणस्य संस्कारस्य पृथक्प्रमाणत्वप्रसङ्गे मुनिप्रणीतप्रमाणविभागव्याघातप्रसङ्गादिति', तत्तु स्वगृह एव प्रोच्यमानं भ्राजमानतां भजेन्न तु कथायां, अस्माकं तु प्रत्यक्षत्वपरोक्षत्वाभ्यां द्विधैव प्रमाणविभागाभिधानात्, स्मृतेः परोक्षकुक्षावेव निक्षिप्तत्वान्न किञ्चिदनुपपन्नं ॥ तस्मात्सत्यप्रवृत्तिजनकत्वादनुभवस्येव स्मृतेरपि प्रामाण्यस्य निराबाधत्वात् साधूक्तमवग्रहेहापायधारणाभेदाच्चतुर्विधं मतिज्ञानमिति, अत्र चावग्रहादीन् शब्दोदाहरणेन सूत्रकारः प्रतिपाद्य " एवं एएणं अभिलावेणं अव्वत्तं रूवं रसं गंधं फासं" इत्याद्यतिदेशसूत्रमाह,ईहादीनामुभयवस्त्ववलम्बनं प्रति नियमकारणं पूरयंस्तदेवानुवदतिस्म भाष्यकारः–"सेसेसु वि रूवाइसु, विसएसु हुन्ति रूवलक्खाइं ॥ पायं पच्चासन्न–त्तणेणमीहाइवत्थूणि ॥ २९२॥ [शेषेष्वपि रूपादिषु, विषयेषु भवन्ति रूपलक्षाणि ॥ प्रायः प्रत्यासन्नत्वेनेहादिवस्तूनि ॥] प्रायः 'प्रत्यासत्तिर्हि बहुभिर्द्धर्मैः सादृश्यं' तत्प्रतियोग्यनुयोगिनावेव धर्मिणावालम्ब्येहादीनां प्रवृत्तिस्वभाव इति, किमयं स्थाणुरुत पुरुष इतिवत्किमयं स्थाणुरुतोष्ट्र इति नेहोदयः, उष्ट्रे स्थाणुप्रत्यासत्त्यभावादत एव श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यासन्नवस्तूपदर्शनं बहुशः प्रदर्शितमिति शेषेन्द्रियप्रत्यासन्नवस्तूनि

मतिज्ञान-निरूपणप्र-सङ्गेस्मृतेः प्रामाण्ये प्र-माणविभाग-व्याघाता-शंकापरिहारः तदुपसंहारः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सञ्जिघृक्षुराह–" थाणुपुरिसाइकुट्ठु–प्पलाइसंभियकरिल्लमंसाइ ॥ सप्पुप्पलणालाइ व, समाणरूवाइं विसयाइं ॥ २९३ ॥ " [स्थाणुपुरुषादिकुष्ठोत्पलादिसम्भृतकरीलमांसादि ॥ सर्पोत्पलनालादिवत्समानरूपादिविषयाणि ॥] संभियकरिल्लत्ति संभृतानि संस्कृतानि, करीलानि वंशजालफलानि, स्पष्टमन्यत् ॥४॥ ननु प्रत्यासत्तिर्यदि स्वरूपसतीहानिबन्धनं तर्ह्येकत्र धर्मिणि दृष्टे सकलतत्प्रत्यासन्नवस्त्ववलम्बीहोदयप्रसङ्गोऽविशेषात्, न च प्रत्यासत्तिग्रहस्य तद्धेतुत्वान्न दोष इति वाच्यम्, सदृगर्भायाः सादृश्यरूपप्रत्यासत्तेर्ग्रहे संशयाभावात्तत्पूर्वकेहाया अप्रवृत्तेरित्यत आह—

सारूप्यज्ञानमीहादौ, कोटिस्मारकतां भजत् ॥ नियन्तुं प्रभवत्युच्चै–रुभयस्यावलम्बनम् ॥ ५ ॥

स्थाणुपुरुषयोः सादृश्यज्ञाने सति हि स्थाणुदर्शनोत्तरमुद्बुद्धसंस्कारेण स्थाणुत्वपुरुषत्वोभयकोटिस्मरणेन तदुभयसहचरितधर्मवत्ताज्ञानेन दोषमहिम्नाऽसंसर्गाग्रहाच्च संशयोत्पत्तावीहादिप्रादुर्भावात्तत्रोभयावगाहित्वं नानियतं, एतेन ' भ्रमसंशयोत्तरप्रत्यक्षं प्रत्येव विशेषदर्शनस्य हेतुत्वात्सर्वत्र प्रत्यक्षनिर्णये ईहाया हेतुत्वमप्रमाणिकमिति' निरस्तं, संशयोत्तरमेव निर्णयाभ्युपगमाद्, वस्तुतः संशयोत्तरप्रत्यक्षत्वं न विशेषदर्शनकार्यतावच्छेदकं, संशयोत्तरत्वस्य दुर्वचत्वात्, संशयोत्तरं विशेषदर्शनं विनाऽपि संशयानुत्तरप्रत्यक्षप्रसङ्गाच्च, संशयानुत्तरप्रत्यक्षे संशयाभावस्य हेतुत्वकल्पनेऽतिगौरवात् प्रत्यक्षनिश्चयत्वावच्छिन्नं प्रतीहाया हेतुत्वस्यैव युक्तत्वात्, ॥५॥ अथ " से जहा णामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा " इत्यादि सूत्रमनुसृत्येन्द्रियाणामिव मनसोऽप्यवग्रहादयः स्वप्नादौ सम्भवन्तीत्याह–

स्वप्नादावपि शब्दादि–विषयाऽवग्रहादयः ॥ मनसोऽपि लसन्त्येव, हृषीकव्यापृतिं विना ॥ ६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनसोऽपि स्वप्नादाविन्द्रियव्यापारं विनाऽवग्रहादयः प्रादुर्भवन्ति, तथाहि, स्वप्ने गीतादिश्रवणे प्रथममव्यक्तशब्दज्ञानं भवति, ततः किमयं शब्दोऽशब्दो वेतीहा प्रवर्तते, ततः शब्द एवायमित्यपायः, ततश्च धारणेति ॥ एवं जाग्रतोऽपि मनसैव बहलतमे तमसि घटादिपदार्थपर्यालोचनदशायां मानसा अवग्रहादयो द्रष्टव्या । आह च–" एवं चिय सिमिणाइसु, मणसो सद्दाइएसु विसएसु ॥ होन्तिंदियवावारा–भावे वि अवग्गहादीया ॥ २९४ ॥ " [एवमेव स्वप्नादिषु, मनसः शब्दादिषु विषयेषु ॥ भवन्तीन्द्रियव्यापारा–भावेऽप्यवग्रहादयः ॥] ॥ ६ ॥ अथावग्रहादीनां सूत्रोक्तक्रमनियमे हेतुमाह—

॥ मतिज्ञानप्रसङ्गे स्वप्नदृष्टान्तेन मानसावग्रहादिप्ररूपणं, अवग्रहादिक्रमकारणप्रदर्शनं च ॥

व्यतिक्रमोत्क्रमौ नैतै–र्नैतेषां तत्त्वनिर्णयः ॥ नेदृग् ज्ञेयस्वभावोऽपि, तदेते नियतक्रमाः ॥ ७ ॥

अनानुपूर्वीभवनं व्यतिक्रमः, पश्चानुपूर्वीभवनमुत्क्रमः, अन्यतरवैकल्यं शून्यत्वमेतैर्वस्तुनस्तत्त्वनिर्णयो न स्यात्, तदेते एव वस्तुनिर्णयाय सर्वेऽपि क्रमनियमेनान्वेषणीयाः, न ह्यनवगृहीतमीह्यते, धर्मिणोऽप्रसिद्धौ निरालम्बनविचाराप्रवृत्तेः, न चानीहितं निश्चीयते, तस्य विचारपूर्वकत्वात्, न च विचारं विनाऽपि कारणमहिम्ना तदुत्पादो युक्तो विचारस्यापि तत्कारणत्वेन तद्विरहे कारणमहिम्न एवासिद्धेः, न चानिश्चितं धार्यते, अन्यथा सन्देहादपि तत्प्रसङ्गादिति, वस्तुनोऽपि च सामान्यविशेषरूपः स्वभावस्तथा ज्ञानयोग्यतयैव व्यवस्थित इति तस्य तथाभावो युक्तः ॥ यदाह–" उक्कमओऽइक्कमओ, एगाभावे वि वा ण वत्थुस्स ॥ जं सब्भावाहिगमो, तो सव्वे णियमियकमा य ॥ २९५ ॥ " [उत्क्रमतोऽतिक्रमत, एकाभावेऽपि वा न वस्तुनः ॥ यत्स्वभावाधिगमः, ततः सर्वे नियमितक्रमाश्च ॥] " ईहिज्जइ णाऽगहियं, णज्जइ नाणीहियं न याणायं ॥ धारिज्जइ जं वत्थुं, तेण कमोवग्गहाईओ ॥२९६॥ " [ईह्यते नाऽगृहीतं, ज्ञायते नानीहितं न चाज्ञातम् ॥ धार्यते यद्वस्तु तेन, क्रमोऽवग्रहादिकः]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"एत्तो च्चिय ते सव्वे, भवन्ति भिन्ना य णेव समकालं ॥ न वइक्कमो य तेसिं, ण अन्नहा नेयसब्भावो ॥२९७॥" [इत एव ते सर्वे भवन्ति भिन्नाश्च नैव समकालं ॥ न व्यतिक्रमश्च तेषां, नान्यथा ज्ञेयसद्भावः] ॥७॥ नन्वभ्यस्ते पुरुषेऽयं पुरुष इति प्रथममेव निर्णयः समुन्मीलति, अनुभूते च संस्कारोद्बोधात्प्रथममेव स पुरुष इति स्मृतिरुल्लसत्यनुभूयते च झटित्येवायं पुरुषो निरणायि. झटित्येव चैनमस्मार्षमिति च, तथा च कथमन्यतराभावे न वस्तुभावज्ञानम् ? ॥ आह च–"अब्भत्थेऽवाओ च्चिय, कत्थइ लक्खिज्जइ इमो पुरिसो ॥ अण्णत्थ धारण च्चिय, पुरोवलद्धे इमं तं ति ॥ २९८ ॥" [अभ्यस्तेऽपाय एव क्वचिल्लक्ष्यतेऽसौ पुरुषः ॥ अन्यत्र धारणैव पुरोपलब्धे इदं तदिति ॥] अत्रोच्यते—

अभ्यस्ते निर्णयस्मृत्यो-र्लक्ष्यः सौक्ष्म्येण न क्रमः ॥ पद्मपत्रशतच्छेदे, यथा वाऽन्यत्र बुद्धिषु ॥ ८ ॥

उक्तापायस्मृत्योरवग्रहेहादिष्वीहादेः कालसौक्ष्म्यादलक्षणेऽप्युक्तक्रमस्य प्रमाणसिद्धत्वान्न तत्र तदपलापः कर्तुं शक्यः, न हि पद्मपत्रशतच्छेदे सत्यपि कालभेदे तदलक्षणेन तदभावो नाम, न वा दीर्घशुष्कशष्कुलीभक्षणे तद्रूपदर्शनतज्जनितशब्दश्रवणतद्गन्धाघ्राणतद्रसास्वादनतत्स्पर्शोपलब्धीनां यौगपद्याभिमानेऽपि कारणक्रमनियतस्तत्क्रमो प्रमाणासिद्धोऽपि नास्तीति वक्तुं शक्यते, एकदैकोपयोगस्वभावत्वान्मनसः सर्वेन्द्रियेषु तदसम्बन्धादाशुसञ्चारित्वेनैव तेनाशुकार्यजननात्, तथा च पारमर्षे–"णो मणे देवासुरमणुआणं, तंसि तंसि समयंसित्ति ॥" ननु भवतां मनसः शरीरव्यापित्वेन सर्वदा सर्वेन्द्रियसंयोगाद्युगपदनेकज्ञानोत्पत्तिर्दुर्वारा तदणुत्वाभ्युपगम एवेन्द्रियेषु तत्संयोगक्रमेण ज्ञानक्रमसम्भवादिति चेत्, न, अणुत्वाभ्युपगमेऽपि तस्य रसनेन्द्रियसंयोगकाले त्वक्संयोगस्य दुर्निवारत्वाद् युगपदुभयज्ञानोत्पत्तेरनिवार्यत्वात्, अदृष्टवैचित्र्यमहिम्नैव तद्धारणे च चित्तोपयोगक्रमादेव ज्ञानक्रम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति युक्तमभ्युगन्तुमिति दिग् ॥ तदिदमभिप्रेत्याह–"उप्पलदलसयवेहे व्व, दुव्विभावत्तणेण पडिहाई ॥ समयं व सुक्कसक्कुलिदसणे, विसयाणमुवलद्धी ॥ २९९ ॥" [उत्पलदलशतवेध इव दुर्विभावत्वेन प्रतिभाति ॥ समयं वा शुष्कशष्कुलीदशने विषयाणामुपलब्धिः ॥] अभ्यासस्थलेऽप्ययं पुरुष इति निर्णयेऽयं पुरुष इति प्रयोगे कुत इति कस्यचिदाकाङ्क्षायां करचरणादिमत्त्वादिति प्रयोगात्तदनुगुणेहादेरनुमानात्तत्र तत्सत्त्वं सिद्धयतीत्यप्याहुः ॥ ८ ॥ अथ 'भेयवत्थू समासेणं' ति निर्युक्तिगाथाऽवयवेनावग्रहादयो मतिज्ञानस्य सामान्यभेदा इत्युक्तमिति विशेषभेदाः किमधिका अपि सम्भवन्तीति शिष्याकाङ्क्षायामाह—

|| मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गे सामान्यतो विशेषतश्च मतिज्ञानभेदप्रदर्शनं तत्र परारेका परिहारश्च ||

श्रोत्रादिभेदात् षोढा स्यु-र्यदर्थावग्रहादयः ॥ चतुर्द्धा व्यञ्जनं तेन, स्युरष्टाविंशतिर्भिदाः ॥ ९ ॥

श्रोत्रादीन्द्रियपञ्चकं नोइन्द्रियश्च मन आश्रित्यार्थावग्रहादयश्चत्वारो भेदाः षड्भिः संगुणिताश्चतुर्विंशतिर्भवन्ति तत्र च नयनमनोवर्जेन्द्रियभेदाच्चतुर्विधव्यञ्जनावग्रहप्रक्षेपे पूर्वोक्तभेदचतुष्टयापेक्षया विस्तरेण वक्ष्यमाणभेदापेक्षया च सङ्क्षेपेणाष्टाविंशतिः श्रुतनिश्रितमतिज्ञानस्य भेदाः सम्पद्यन्ते । आह च–" सोइंदिआइभेएण, छव्विहावग्गहादओऽभिहिया ॥ ते हुन्ति चउव्वीसं, चउव्विहं वंजणोग्गहणं ॥३००॥ अट्ठावीसइभेयं एयं सुअणिस्सिअं समासेणं ति ॥ [श्रोत्रेन्द्रियादिभेदेन षड्विधा अवग्रहादयोऽभिहिताः ॥ ते भवन्ति चतुर्विंशतिश्चतुर्विधं, व्यञ्जनावग्रहणम् ॥ अष्टाविंशतिभेदमेतच्छ्रुतनिश्रितं समासेन ॥] ॥९॥

अथ केचित्तु चतुर्विधव्यञ्जनावग्रहस्थले औत्पत्तिक्यादिभेदेन चतुर्विधमश्रुतनिश्रितं प्रक्षिप्य सामान्यतो मतिज्ञानस्याष्टाविंशतिभेदानुपपादयन्ति तन्मतं पूर्वमनूद्य दूषयति—

व्यञ्जनावग्रहस्थाने, चतुर्द्धा श्रुतनिश्रितम् ॥ केचित् क्षिपन्ति तदस–त्तदन्तर्भूतिसम्भवात् ॥ १० ॥

For Private And Personal Use Only

न खलु व्यञ्जनावग्रहार्थावग्रहावग्रहत्वेन रूपेणैकीकृत्यौत्पत्तिक्यादिभेदचतुष्टयप्रक्षेपेण श्रुतनिश्रिताश्रुतनिश्रितसाधारण्येनाष्टाविंशतिभेदपरिगणनं युक्तं, औत्पत्तिक्यादीनां चतुर्णां भेदानामवग्रहादिष्वेवान्तर्भावात्, तथा हि 'द्वितीयकुर्कुटमन्तरेण मदीयः कुर्कुटो योद्धव्य' इति राज्ञादिष्टे परीक्षापात्रस्य भरतस्यौत्पत्तिकी प्रादुर्बभूव, तत्र दर्पाध्मातत्वादयं स्वप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा युध्येतेत्यवगृह्यते, तत्प्रतिबिम्बं किं तडागपयःपूरादिगतं तदनुगुणीभवति दर्पणादिगतं वेति तदनन्तरमीह्यते, ततः कल्लोलादिभिः प्रतिक्षणमपनीयमानत्वादस्पष्टत्वाच्च जलादिगतं बिम्बं न तथा, स्थिरत्वेन स्पष्टत्वेन चरणघाताद्यन्वीक्षणयोग्यत्वेन च दर्पणगतमेव तत्तथेति निश्चीयते इति । आह च–"केइत्तु वंजणोग्गह–वज्जे छोढूणमेयम्मि ॥२०१॥ अस्सुअणिस्सिअमेयं, अट्ठावीसइविहन्ति भासन्ति ॥ जमवग्गहो दुभेओ–वग्गहसामन्नओ गहिओ ॥ ३०२ ॥" [केचित्तु व्यञ्जनावग्रहवर्जे क्षिप्त्वैतस्मिन् ॥ अश्रुतनिश्रितमेवमष्टाविंशतिविधमिति भाषन्ते ॥ यदवग्रहो द्विभेदोऽवग्रहसामान्यतो गृहीतः ॥] "चउवइरित्ताभावा, जम्हा ण तमोग्गहाइओ भिन्नं ॥ तेणोग्गहाइसाम–न्नओ अ तं तग्गयं चेव ॥३०३॥" [चतुर्व्यतिरिक्ताभावाद्, यस्मान्न तदवग्रहादयः ॥ भिन्नं तेनावग्रहादिसामान्यतश्चतत्तद्गतमेव ॥] किह पडिकुक्कुडहीणो, जुज्झे बिंबेण वग्गहा ईहा॥। किं सुसिलिट्ठमवाओ, दप्पणसंकंतबिम्बं ति ॥३०४॥" [कथं प्रतिकुर्कुटहीनो युध्येत बिम्बेनाऽवग्रह ईहा ॥ किं सुश्लिष्टमपायो दर्पणसंक्रान्तप्रतिबिम्बमिति ।] नन्ववग्रहादिभ्य औत्पत्तिक्यादीनामपि कथञ्चिद्भेदोऽस्त्येव सर्वथा भेदस्त्ववग्रहोत्तरविशेषाणामपि नास्त्येवावग्रहत्वेन तयोरभेदादिति चेत्, न, अश्रुतनिश्रितविभाजकोपाधीनामवग्रहादिविभाजकोपाध्यव्याप्यत्वेनोत्तरभेदासम्भवात्, औत्पत्तिक्यादिभेदेन मतिज्ञानस्य साक्षाद्विभागे तु न्यूनत्वापातात, अवग्रहाद्यन्तर्भावेन विभागे त्वाधिक्याद् व्याप्यव्याप्योपाधिना साक्षाद्विभागाऽयोगाच्च, अत एव श्रुत-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निश्रितत्वाश्रुतनिश्रितत्वाभ्यां मतिज्ञानत्वसाक्षाद्व्याप्योपाधिभ्यां द्विधा तद्विभागः सूत्रोक्तो न विशीर्येत, मतिज्ञानत्वेन तयोरभेदेऽपि प्रातिस्विकरूपाभ्यां भेदसम्भवाद्, अवग्रहत्वेनाभिन्नानामिव श्रोत्राद्यवग्रहाणाम् ॥ तदुक्तम्–" जह उग्गहाइ-सामण्णए वि, सोइंदिआइणा भेयो ॥ तह ओग्गहाइसामण्णए वि, तमणिस्सिया भिण्णं ॥ ३०५ ॥ " [यथाऽवग्रहादि-सामान्येऽपि, श्रोत्रेन्द्रियादिना भेदः ॥ तथाऽवग्रहादिसामान्येऽपि, तदानिश्रितत्वाद् भिन्नम् ॥] एवं च–श्रुतनिश्रितविभाजको-पाधिभिरौत्पत्तिकीत्वादिभिस्तस्यापि चतुर्द्धा विभागः सङ्गच्छते । तस्मान्मतिज्ञानस्य श्रुतानिश्रितत्वाश्रुतानिश्रितत्वाभ्यां सामान्यतो द्विधाविभागः, श्रुतनिश्रितस्य चाष्टाविंशतिभेदैरश्रुतनिश्रितस्य च चतुर्भिर्भेदैर्विशेषविभाग इति विवेकः, अत एव सम्पूर्णं श्रुतनिश्रितं प्ररूप्य ' से किं तं अस्सुअणिस्सिअं ' इत्यादिना ग्रन्थेन सूत्रेऽश्रुतनिश्रितप्ररूपणं प्रत्यज्ञायि, अन्यथा तु प्रागेव तदनिरूपणे न्यूनत्वप्रसङ्गः ॥ आह च–'अट्ठावीसइभेअं, सुअणिस्सिअमेव केवलं तम्हा ॥ जम्हा तम्मि समत्ते, पुणरस्सु-अणिस्सिअं भणिअं॥३०६॥[अष्टाविंशतिभेदं श्रुतनिश्रितमेव केवलं तस्मात् ॥ यस्मात्तस्मिन्समाप्ते, पुनरश्रुतानिश्रितं भणितम् ॥] ननु मतिज्ञानस्यावग्रहादयश्चत्वार एव भेदा अवग्रहादिभेदास्तु प्रभेदा इति कथमुच्यतेऽष्टाविंशतिर्मतेर्भेदा इति, सत्यम्, प्रभे-दानामपि भेदत्वेन विवक्षणादाधिक्येऽपि तावतां भेदानां तावदन्यतरत्वेन मतिज्ञानत्वव्यापक(प्य)त्वाद्विभागवचनस्याव्याघाताच्च सम्प्रदायानुरोधादिकं विनैव हि क्वचिदेतादृशविभागस्याप्रामाणिकत्वमिति, अथवा 'समासेन भेदवस्तूनि'इत्यत्र भेदवस्तुत्वे समासे-नेत्यनुकूलं विशेषणं प्रभेदास्तु बहवोऽपि भवन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

अथैवमष्टाविंशतिविधत्वं मतिज्ञानस्योपदर्श्य प्रकारान्तरेण प्रभेदबाहुल्यघटितं बहुभेदत्वमुपदर्शयति—

। मतिज्ञान-प्ररूपणप्रसङ्गेऽष्टाविंशतिसंख्यापूरणाय परकल्पितस्य अश्रुतनिश्रितभेदक्षेपणस्य तेषामवग्रहादावन्तर्भावप्रदर्शनात्परिहारः ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाना-नानाविध-क्षिप्रा-ऽनिश्रिता-ऽनिश्चित-ध्रुवैः ॥ षट्त्रिंशच्छतभेदाः स्युः, सेतरावग्रहादिभिः ॥ ११ ॥

अवग्रहादयः प्रागुक्तदिशाष्टाविंशतिभेदभाजो बहुबहुविध(धादिभिः)नानानानाविधक्षिप्राऽनिश्रितानिश्चितध्रुवैः सप्रतिपक्षैः द्वादशभिर्भेदैर्गुणिताः षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि भेदा भवन्ति। अत्र बहुबहुविधेतिस्थाने नानानानाविधेति बन्धानुलोम्यादुक्तम्। तदाह-"जं बहुबहुविहखिप्पा-ऽणिस्सिअणिच्छियधुवेयरविभिन्ना ॥ पुणरुग्गहादओ तो, तं छत्तीसतिसयभेअं ॥३०७॥" [यद् बहुबहुविधक्षिप्राऽनिश्रितनिश्चितध्रुवेतरविभिन्नाः ॥ पुनरवग्रहादयस्ततस्तत्षट्त्रिंशत्रिशतभेदम् ॥]॥११॥ अथ बह्वादीनां स्वरूपमाह-

नानार्थानां बहुत्वं हि, पृथग्जात्यवभासिता ॥ नानात्वान्नैव(त्वेन न) तज्ज्ञप्ति-रबहुत्वं प्रचक्षते ॥ १२ ॥

प्रत्येकं बहुधर्माणां, ज्ञानं बहुविधं मतम् ॥ प्रत्येकं स्वल्पधर्माणां, विज्ञानं तद्विपर्ययः ॥ १३ ॥

क्षिप्रं त्वरितमुत्पन्न-मक्षिप्रं तु विलम्बितम् ॥ अनिश्रितमलिङ्गोत्थं, निश्रितं लिङ्गसम्भवम् ॥ १४ ॥

निश्चितं संशयातीतं, तेन ग्रस्तमनिश्चितम् ॥ सर्वदा यत्तथाग्राहि, ध्रुवं तच्चान्यदाऽध्रुवम् ॥ १५ ॥

बहूनां विषयाणां प्रातिस्विकधर्मप्रकारकग्रहो बहुज्ञानं, यथा तत्त्वं बहुत्वं च 'सकलस्वविषयनिष्ठयावदसाधारणधर्मप्रकारकत्वं,' साकल्यञ्चानेकाशेषत्वं, न त्वशेषत्वमात्रं, यावत्त्वं च व्यापकत्वं, तेन घटोऽयमित्याद्यव्यावहारिकावग्रहेऽशेषस्वविषयनिष्ठाशेषधर्मग्राहिण्यपि बहुत्वव्यवहाराभावे न क्षतिर्न वा नानातूर्यजनितेषु शब्देषु कतिपयविशेषावभासेऽपि बहुत्वव्यवहारः, कतिपयविशेषावभासेऽपि ततः स्वल्पविशेषापेक्षया बहुत्वव्यवहाराद्, यावत्त्वमनेकत्वमेव वा विवक्षितं, नैश्चयिकार्थावग्रहापेक्षयाऽऽद्यव्यावहारिकार्थावग्रहेऽपि बहुत्वव्यवहारे तु साकल्यमप्यशेषत्वमेव, अबहुत्वं च 'तद्भिन्नज्ञानत्वं,' तत्त्वं चासाधारणधर्मानुपरागेण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुविषयग्राहित्वं 'नानाशब्दा एते' इत्यादिसामान्यज्ञानं हि तदिति, एवम् 'अशेषस्वविषयनिष्ठानेकासाधारणधर्मव्याप्यबहुतरधर्मावगाहिज्ञानं' बहुविधं, न चैवं बहुविधस्यापि बहुत्वापत्तिस्तल्लक्षणसत्त्वादिति वाच्यम्, उपधेयसङ्करेऽप्युपाध्योरसङ्कराद्विवक्षाद्वैविध्येन तत्र द्विधाव्यवहाराच्च, अबहुविधत्वं च न बहुविधभिन्नज्ञानत्वं, बहुज्ञानेऽतिव्याप्तेः, किन्त्वबहुविधमित्यत्र नञः पर्युदासाश्रयणाद् 'अशेषस्वविषयनिष्ठानेकासाधारणधर्मव्याप्यस्वल्पतरधर्मावगाहित्वं' तदिति, बहुज्ञानेन पृथग्भिन्नजातीयतया गृहीतेषु नानाशङ्खपणवादिशब्देषु एकैकं शङ्खभेर्यादिशब्दमाश्रित्य स्निग्धत्वमधुरत्वतरुणमध्यमवृद्धपुरुषवाद्यत्वादिबहुविधधर्मवैशिष्ट्यं गृण्हदेव हि बहुविधज्ञानमुदाह्रियते. तत्र स्निग्धमधुरत्वादिस्वल्पधर्मवैशिष्ट्यज्ञानञ्चाबहुविधमिति । क्षिप्रत्वं च नाविलम्बितोत्पत्तिकत्वम्, अक्षिप्रत्वञ्च न विलम्बितोत्पत्तिकत्वं, सामग्रीसन्निधानासन्निधानाभ्यां सर्वस्यापि विलम्बिताविलम्बितोत्पत्तिकत्वात्, नापि विमर्शानपेक्षोत्पत्तिकत्वं क्षिप्रत्वम्, अपायस्य सतो विमर्शसव्यपेक्षत्वनियमात्, किन्तु 'झटित्युपनतसामग्रीकत्वं' क्षिप्रत्वं, अतादृशत्वं त्वक्षिप्रत्वमिति ।। 'झटिति सामग्र्युपनिपातनियामकादृष्टजन्यतावच्छेदकजातिविशेषवत्त्वं' क्षिप्रत्वमित्यपि कश्चित्, 'प्रबलतरसंस्काराधीनझटित्युपस्थितिकविमर्शजन्यत्वं' तत्त्वमित्यन्ये ।। अनिश्रितं लिङ्गानपेक्षोत्पत्तिकं पताकादिनिश्रया देवकुलादिदर्शनवद्, यद्य लिङ्गनिश्रामपेक्षते यद्यप्यन्वयव्यतिरेकधर्मान्वेषणरूपामीहामपेक्षमाणः सर्व एवाऽपायो लिङ्गमपेक्षत एव तथाप्यनुमितिसामग्रीसम्पत्तिरूपा लिङ्गनिश्रा यत्र नाऽस्ति तदनिश्रितं, अन्यत्तु निश्रितमिति ध्येयम् ।। निश्चितत्वमसन्दिग्धविषयकत्वं 'प्रामाण्यसंशयादिरूपविषयसंशयसामग्र्यनास्कन्दितत्वम्', तद्विपरीतत्वमनिश्चितत्वं, ध्रुवत्वं च 'सर्वकालमेकजातीयसामग्रीसमुत्पाद्यत्वम्', अतादृशत्वं त्वध्रुवत्वमिति ।। आह च–

॥ मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गे बहुबहुविधादिभेदानां लक्षणानि तात्पर्यप्रकाशनं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

" नाणासद्दसमूहं, बहुं पिहं मुणइ भिन्नजातीयं ॥ बहुविहमणेगभेयं, एक्केकं णिद्धमहुराइ ॥ ३०८ ॥ [नानाशब्दसमूहं, बहु पृथग्जानाति भिन्नजातीयम् ॥ बहुविधमनेकभेदमे–कैकं स्निग्धमधुरादिम् ॥] "खिप्पमचिरेण तं चिय, सरूवओ जं अणिस्सिअमलिंगं ॥ निच्छियमसंसयं जं, धुवमच्चंतं न य (उ) कयाइ ॥३०९॥ " [क्षिप्रमचिरेण तमेव स्वरूपतो यमनिश्रितमलिङ्गम् । निश्चितमसंशयं ध्रुवमत्यन्तं नतु कदाचित् ॥] " एत्तो चिय पडिवक्खं साहिज्जा [एतस्मादेव प्रतिपक्षं कथयेद्] ॥३१०॥" निश्रितानिश्रितयोश्चायमपि विशेषः, यद् 'अतस्मिंस्तद्धर्मग्रहो निश्रितं' यथा गव्यश्वत्वग्रह इति, इतरच्चानिश्रितमिति ॥ आह च– " निस्सिए विसेसो वा ॥ परधम्मेहि विमिस्सं, निस्सिअमविणिस्सियं इयरं ॥३१०॥ " [निश्रिते विशेषो वा, परधर्मैर्विमिश्रं निश्रितमविनिश्रितमितरत्] स्यादेतत्, बह्वादयो भेदाः स्पष्टार्थग्राहकेष्वपायादिषु सम्भवन्तु, अस्पष्टार्थग्राहिण्यर्थावग्रहे तु कथं तत्सम्भवः ? न च नैश्चयिकार्थावग्रहे तदसम्भवेऽपि व्यावहारिकार्थावग्रहे तत्सम्भवान्न दोष इत्युक्तमिति वाच्यम्, तथापि व्यञ्जनावग्रहे सर्वथा तदसम्भवेनोक्तसङ्ख्याव्याघातादिति, मैवं, व्यञ्जनावग्रहादीनामप्यपायादिकारणत्वेन तद्गतबहुत्वादिविशेषस्य योग्यतया व्यञ्जनावग्रहादिष्वपि सत्त्वाद्, 'न ह्यविशिष्टात् कारणाद्विशिष्टं कार्यमुत्पत्तुमर्हति' कोद्रवबीजादेरपि शालिफलादिप्रसवप्रसङ्गादिति सम्प्रदायः । ननु कार्यगतयावद्धर्माणां कारणगतत्वाभ्युपगम एव सूक्ष्मतारूपयोग्यतया तत्र तत्सत्त्वमभ्युपगमार्हं स्यात्, तच्च साङ्ख्यप्रक्रियादूषण एव दूषितं 'अविशिष्टात् कारणाद्विशिष्टकार्यानुत्पत्तिस्तु' तादृशातिशयव्यतिरेकाद्वा तथाविधसहकारिव्यतिरेकाद्वेत्यन्यदेत्, तथा च कथमेतदुक्तमिति चेत्, न, एकसन्तानगामित्वरूपयोग्यतां पुरस्कृत्य बह्वादिविशेषस्य व्यञ्जनावग्रहादिषु सम्भवाभिप्रायेण तदभिधानात् । नन्वेवंविधं वैचित्र्यं मतिज्ञानस्य विवक्षाभेदादनवस्थितमित्यनवस्थितो विभागः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्यादिति चेत्, सत्यं, सामान्यविशेषभावेन विभागस्य विवक्षाधीनव्यवस्थितिकत्वाद् बाह्यनिमित्तस्यालोकविषयादिकस्य स्पष्टाव्यक्तमध्यमाल्पमहत्त्वसन्निकर्षप्रकर्षादिभेदेन वैचित्र्यादभ्यन्तरनिमित्तस्य चावरणक्षयोपशमोपयोगोपकरणेन्द्रियरूपस्य शुद्धाशुद्धमतिभेदेन वैचित्र्यान्मतिज्ञानस्य नानात्वसम्भवाद् यथोक्तनिमित्तद्वयस्य केनचिद्रूपेण विशेषे तु मतिज्ञानवतां जीवानामनन्तत्वात्तेषां क्षयोपशमादिभेदेन मतिज्ञानस्यानन्तत्वात्, आह च–"एवं बज्झब्भन्तर–णिमित्तवइचित्तओ मइबहुत्तं ॥ किंचिम्मेत्तविसेसेणं, भिज्जमाणं पुणोणंतं ॥३११॥" [एवं बाह्याभ्यन्तरनिमित्तवैचित्र्यतो मतिबहुत्वम् ॥ किञ्चिन्मात्रविशेषेण, भिद्यमानं पुनरनन्तम् ॥] नन्ववग्रहादयः स्पष्टार्थनिर्भासाभावान्न ज्ञानं, न च संशयाद्यनन्तर्भावात्तेषां ज्ञानत्वमनुमानवदिति वाच्यम्, असिद्धेः, तथाहि, सन्दिग्धे ज्ञानसंशयस्तावद् व्यक्त एव ज्ञानप्रामाण्यसंशयमहिम्ना जनितस्यापि विषयसंशयस्यैकोपयोगसन्तानान्तर्भावित्वेन निश्चयस्वरूपपरावर्त्तकत्वात्सन्दिग्धे च कदाचिन्निश्चयाद्विपर्ययोऽपि भवत्येव, दोषमहिम्ना विपरीतविशेषदर्शनेन सत्यकोटिज्ञानप्रतिबन्धेऽर्थात्तत्सम्भवात्, अथवेहैव स्पष्टं संशयरूपां गामश्वत्वेनावगाहमानं निश्चितज्ञानं च व्यक्तं विपर्यय एवेति किमितरगवेषणया, नैश्चयिकोऽर्थावग्रहश्च स्पष्टमनध्यवसाय एवानिर्देश्यसामान्यमात्रग्राहित्वादिति ॥ आह च–"इह संसयादणन्त–ब्भावाओ वग्गहादओ नाणं ॥ अणुमाणमिवाह, ण सं-सयाईसब्भावओ तेसुं ॥३१२॥ नणु संदिद्धे संसय–विवज्जया संसओत्थ चेहा वि॥ वच्चासो वा निस्सिअ–मवग्गहोऽणज्झवसिअं तु ॥३१३॥ "[इह संशयाद्यनन्तर्भावादवग्रहादयो ज्ञानम् ॥ अनुमानमिवाऽऽह, न, संशयादिसद्भावतस्तेषु ॥ ननु संदिग्धे संशय–विपर्ययौ संशय इह चेहापि ॥ व्यत्यासो वा निश्चितमवग्रहोऽनध्यवसितं तु] अत्राहुः॥ यदुक्तम्–'सन्दिग्धे संशयविपर्ययाविति'। तदयुक्तम्–वस्त्वप्रापकसन्दिग्धत्वस्य तत्राभावात्, अन्यादृशसन्दिग्धत्वमात्रेण चाज्ञानतानापत्ते-

मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गे तद्भेदानां निमित्तभेदाद्विभागवैचित्र्यं, अवग्रहादीनां ज्ञानत्वव्यवस्थापनं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रन्यथा व्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात्, न खलु धूमबलाकादेः सकाशात्सम्यग्दहनजलादौ निश्चितेऽपि मुखेन तन्निश्चयं ब्रुवतामपि सर्वेषां प्रमातॄणां चेतासि शङ्कामात्रविनिवर्त्तनेन च ते सर्वेऽपि निश्चितं वस्तु न प्राप्नुवन्तीति ॥ वस्तुतः सन्दिग्धस्थले सन्देहानुविद्धस्वरूपो निश्चय एव वस्तुप्रापको ज्ञानप्रामाण्यसंशयाद्विषयसंशयस्तु भिन्नोऽप्यन्तर्गत एवेति, न तत्र निष्कम्पप्रवृत्तिजनकतावच्छेदकनिश्चयत्वाभावोऽपि सुवचः, ईहायाश्च संशयत्वं प्रागेव निराकृतं, निश्चयादन्यज्ञानमात्रस्यैव संशयत्वेनाज्ञानताभ्युपगमे निश्चयोपादानलक्षणस्यापि सर्वथाऽज्ञानत्वप्रसङ्गे निश्चयस्याप्यज्ञानतापत्तिः,'न ह्यविशिष्टात् कारणात्कार्योत्पत्तिः'इति परधर्ममिश्रं च निश्चितं यद्यत्र संगृह्यते तदा तत्र तटस्थतयैव परधर्ममिश्रितत्वं विवक्षणीयं, यथा गौरेवायं केवलमश्व इव प्रतिभातीति न त्वत्यन्तोपरागेणेति, न, तदप्यज्ञानं परधर्माणामाशंकामात्रमेव विमिश्रणम्, अनिश्रिते तु वस्त्वभावस्यैवाशंका न तु परधर्माणामित्यस्याप्ययमेवार्थः, उक्तोदाहरणे इवार्थसादृश्यस्यैव भानात्, अवग्रहश्च नाऽनध्यवसाय एकोपयोगान्तर्भूतत्वलक्षणयोग्यतया तत्राध्यवसायसम्बन्धात्, अतिमत्तमूर्च्छितानामेव ज्ञानस्य योग्यतयाऽप्यध्यवसायमस्पृशतोऽनध्यवसायत्वाभ्युपगमाद्, आह च–"इह सज्झमोग्गहाई–णं संसयाइत्तणं ॥३१४॥" [इह साध्यमवग्रहादीनां संशयादित्वम्] यद्यपीयं वस्तुस्थितिस्तथाप्यभ्युपगम्योच्यते—

न निश्रितादयोऽज्ञानं, ज्ञानं यत्संशयादयः ॥ वस्त्वेकदेशग्राहित्वं, समानं निश्चयेऽपि नः ॥ १६ ॥

संशयादयोऽपि हि ज्ञानमेव वस्त्वेकदेशगमकत्वाद्, इह हि घटादिकं वस्तु मृन्मयत्वाद्यर्थपर्यायैर्घटकुम्भकलशादिवचनपर्यायैः परव्यावृत्तिपर्यायैश्चानन्तधर्मांशिकं न तु निरंशं, तस्य चैकैकदेशपरिच्छेदं संशयादयोऽपि कुर्वन्त्येवेति तेऽपि ज्ञानमेव, अथ समस्तवस्तुग्राह्येव ज्ञानं न तु तदेकदेशग्राहकमिति चेत्, तर्हि निर्णयोऽपि ज्ञानं न स्याद्, गौरयमित्याद्याकारस्य तस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोत्वादिवस्त्वेकदेशग्राहित्वात्, देशग्रहणद्वारा तदभिन्नवस्तुग्रहणं च संशयेऽपि तुल्यं, अथ निर्णयेन तथाभूत एवार्थो गृह्यत इति तज्ज्ञानं, संशयादीनां त्वतथाभूतार्थग्राहित्वान्न ज्ञानत्वमिति चेत्, न, अर्थग्राहित्वेनैव तेषां ज्ञानत्वाद्, विशेषाभावस्य सामान्याभावनियतत्वात्सम्यग्दृष्टिसम्बन्धासादितनैश्चयिकज्ञानत्वरूपस्य मतिज्ञानसामान्यस्यैवात्र निरूपयितुमुपक्रान्तत्वात् ॥ न चैवमवग्रहेहापायधारणाः संशयविपर्ययानध्यवसायाश्चेति मतिज्ञानस्य सप्तभेदप्रसङ्ग इति वाच्यम्। अनध्यवसायस्याऽवग्रहे, संशयस्येहायां, विपर्यासस्य चापाये व्यक्तमन्तर्भावात्, इत्थं चैतदवश्यमङ्गीकर्त्तव्यम्, अन्यथा संशयादिकाले सम्यग्दृशामज्ञानित्वप्रसङ्गः, एवञ्च–"सम्मदिट्ठी णं भंते! किं नाणी अन्नाणी?, गोयमा! नाणी नो अन्नाणी" इत्याद्यागमविरोधः, न चानेन सूत्रेण सम्यग्दर्शनसामानाधिकरण्येनैव ज्ञानित्वप्रतिपादनान्न दोष इति वाच्यम् ॥ च्युतसम्यक्त्वस्य मिथ्यात्वं प्राप्तस्य तत्सामानाधिकरण्येन ज्ञानसत्त्वाद् ज्ञानित्वप्रसङ्गः। "मिच्छदिट्ठी णं भंते! नाणी अन्नाणी?, गोयमा! नो नाणी नियमा अन्नाणी" इत्याद्यागमविरोधस्य दुरुद्धरत्वाद्, ज्ञानस्य कालतः सम्यक्त्वनियतत्वप्रतिपादनात्संशयादीनामपि ज्ञानत्वमेव प्रामाणिकं, तदिदमभिप्रेत्याह–"तहवि णाम ॥ अब्भुवगन्तुं भण्णइ, नाणं चिअ संसयाईआ ॥२१४॥ वत्थुस्स देसगमगत्त–भावओ परमयप्पमाणं व ॥ किह वत्थुदेसविण्णाण–हेयवो सुणसु तं वोच्छम् ॥२१५॥ इह वत्थुमत्थवयणाइ–पज्जवाणंतसत्तिसम्पन्नं ॥ तस्सेगदेसविच्छेय-कारिणो संसयाईआ ॥२१६॥ अहवा ण सव्वधम्मा–वभासया तो न नाणमिट्ठन्ते ॥ नणु निण्णओ वि, तद्देस-मेत्तगाहित्ति अन्नाणं ॥२१७॥" [तथापि नाम ॥ अभ्युपगम्य भण्यते, ज्ञानमेव संशयादयः ॥ वस्तुनो देशगमकत्वभावतः परमतप्रमाणमिव ॥ कथं वस्तु-देशविज्ञानहेतवः, श्रृणु तद् वक्ष्ये ॥ इह वस्त्वर्थवचनादिपर्यायानन्तशक्तिसम्पन्नम् ॥ तस्यैकदेशविच्छेदकारिणः संशयादयः ॥

॥ मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गे परोक्तारेकापरिहारेण वस्तुव्यवस्थापनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिज्ञानप्रसङ्गे सम्यग्दृशां ज्ञानं मिथ्यादृशां चाज्ञानमित्युपपादनम् ॥

अथवा न सर्वधर्मावभासकास्ततो न ज्ञानमिष्टं ते ॥ ननु निर्णयोऽपि तद्देशमात्रग्राहीत्यज्ञानम् ॥] ॥ १६ ॥

ननु सम्यग्दर्शनकाल इव मिथ्यादर्शनकालेऽपि ज्ञानसामान्यसत्त्वात्कथमयं विभाग इत्यत्राऽऽह—

ज्ञानं मिथ्यादृशां सर्व–मज्ञानमुपवर्णितम् ॥ एकग्रहेऽपि सर्वस्य, ज्ञानं सम्यग्दृशां ग्रहात् ॥ १७ ॥

मिथ्यादृशां हि संशयादिरूपमतथाभूतं वा सर्वमेवाज्ञानमिति "सदसदविसेसणाओ" इत्यत्र सप्रपञ्चं व्यवस्थापितमिति, अत्र पुनस्तदुपदर्शनं पिष्टमेव पिनष्टि,अत एव "जइ एवं तेण तुहं, अन्नाणी कोत्ति नत्थि संसारे(री) ॥ मिच्छद्दिट्ठीणं ते, अन्नाणं नाणमियरेसिं॥३१८॥"[यद्येवं तेन तवाज्ञानी कोऽपि नास्ति संसारे(री)। मिथ्यादृष्टीनां तेऽज्ञानं ज्ञानमितरेषाम्]इति प्रतिज्ञाय भाष्यकारोऽपि 'सदसदविसेसणाओ' इति गाथामेवाम्रेडितवान् ,सम्यग्दृशस्त्वेकं वस्तु गृह्णतः सर्वग्रहात् ज्ञानमेव सर्वोऽपि बोधः,तथाहि, इह तावदेकैकं वस्तु समस्तत्रिभुवनमयं अनन्ताऽनन्तानां स्वपर्यायाणामिवान्यव्यावृत्तिरूपाणां परपर्यायाणामपि तत्र वृत्तेः,तथापि परे पदार्थाः कथं तत्र वर्त्तिष्यन्त इति चेत्,अभाववृत्तिद्वारा प्रतियोगिनामपि तद्वृत्तित्वाद्, अभावस्य तत्र विशेषणत्वलक्षणः साक्षात्सम्बन्धः; प्रतियोगिनां तु स्वाभाववृत्तित्वलक्षणः परम्परासम्बन्धः, इत्येव हि विशेषः, एवञ्च याथात्म्येनैकवस्तुज्ञाने सर्ववस्तुज्ञानमिति नियमः,सर्ववस्तुज्ञान एव चैकवस्तुज्ञानमिति नियम इति ॥ " जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ॥ " इत्यागमो व्यवस्थितः,तथा चैकं वस्तु गृह्णतः सर्ववस्तुग्रहो निराबाध एव,अथैवंविधं परिज्ञानं केवलिन एव सम्भवति, ननु सूक्ष्मव्यवहितार्थग्राहिणश्छद्मस्थस्येतिचेत्,न,साक्षात्तस्य तथापरिज्ञानाभावेऽपि "जो एगं जाणइ"इत्याद्यागमप्रामाण्याभ्युपगमद्वारा तस्यापि तथा परिज्ञानात्,तस्माज्जाग्रतः स्वपतस्तिष्ठतश्चलतो वा परमगुरुप्रणीतयथोक्तवस्तुस्वरूपाभ्युपगमस्य चेतसि सर्वदैवाविचलनात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सम्यग्दृष्टिः सर्वदा ज्ञान्येव, आह च–"एगं जाणं सव्वं, जाणइ, सव्वं च जाणमेगंति ॥ इय सव्वमयं सव्वं सम्मद्दिट्ठिस्स जं वत्थु ॥३२०॥ [एकं जानन्सर्वं जानाति सर्वं च जानन्नेकमिति ॥ इति सर्वमयं सर्वं सम्यग्दृष्टेः यद्वस्तु] ॥१७॥ तस्मात्तत्त्वाभ्युपगमविशिष्टस्य ग्रहणमात्रस्यैव ज्ञानत्वात्स्थाणौ व्यावृत्तिरूपाणामपि पुरुषत्वादिपर्यायाणां पररूपतया ग्रहेऽपि अनन्तपर्यायस्यापि वस्तुनः प्रयोजनवशादेकपर्यायग्रहेऽपि याथात्म्याभ्युपगमस्य निरुपप्लवत्वात्सम्यग्दृशो न ज्ञानं प्रच्यवत इत्याह—

तत्त्वोपगममाहात्म्याद्, ज्ञानमेवास्य संशये ॥ प्रयोजनवशादेक–पर्यायग्रहणेऽपि च ॥ १८ ॥

न खलु व्यवहारमात्रेणाज्ञानरूपा अपि सम्यग्दृशः संशयादयो निश्चयतो न ज्ञानं, तत्त्वोपगमविशेषितवस्तुधर्मग्रहणस्य तत्रानपायात्सिद्धान्तनियन्त्रितेन समभिरूढनयेनैवम्भूतार्थाबाधेन तादृशस्यैव ज्ञानस्याभ्युपगमाद्, नचैकपर्यायमात्रग्रहे वस्तुनोऽन्यथाग्रहात्तस्याज्ञानित्वप्रसङ्गः, यतः प्रयोजनवशादनन्तधर्मात्मकेऽपि वस्तुनि यद्यप्यसावेकं पर्यायमासादयति यथा सौवर्णघटे दृष्टे घटार्थी घटत्वमध्यवस्यति सुवर्णार्थी तु सुवर्णत्वं जलानयनार्थी तु जलभाजनत्वमिति व्यवस्यति, उपलक्षणं चेदं, अभ्यासपाटवप्रत्यासत्त्यादिभिरपि पर्यायविशेषग्रहाद् यथा ब्राह्मणे द्वारि दृष्टे कोऽप्यभ्यासवशाद् भिक्षुकोऽयमिति जानाति, अन्यस्तु पाटववशाद् ब्राह्मणोऽयमिति, अपरस्तु यस्तदभ्यर्णे भणति स प्रत्यासत्तिवशान्मदुपाध्यायोऽयमिति, तथापि तदानीं तस्य भावतोऽनन्तपर्यायात्मकतया वस्तुग्रहणपरिणामो न क्षीयत इति, तदाह–" जे संसयाइगम्मा, धम्मा वत्थुस्स ते वि पज्जाया ॥ तदहिगमत्तणओ ते, नाणं चिय संसयाईआ ॥ ३२१ ॥ पज्जायमासयन्तो, एक्कं पि तओ पओअणवसाओ ॥ तत्तियपज्जायं चिय, तं गिण्हइ भावओ वत्थु ॥ ३२२ ॥" [ये संशयादिगम्या धर्मा वस्तुनस्तेऽपि पर्यायाः ॥ तदधिगमत्वतस्ते ज्ञानमेव संशयादयः ॥

मतिज्ञाननिरूपणप्रसङ्गे सम्यग्दृशां संशयादयोऽपि ज्ञानमित्युपपादनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर्यायमाश्रयन्नेकमपि तकः प्रयोजनवशात् ॥ तावत्पर्यायमेव तद् गृह्णाति भावतो वस्तु ॥] ननु भावतस्तथा ग्रहणं न सार्वत्रिकं घटाद्युपयोगकाले तदुपयोगानियमादत एव तथाविधागमप्रामाण्याऽभ्युपगमोऽपि न तथेति तद्विशेषितं ग्रहणं ज्ञानमिति पर्यवसितार्थानुपपत्तिः, नचाऽभ्युपगमपदेनात्र तद्योग्यतैव विवक्षणीया, सा च सम्यग्दर्शनरूपैवेति सम्यग्दर्शनविशेषितमेव ज्ञानं नैश्चयिकं ज्ञानं, अत एव " निन्नयकाले वि जओ, ण तहारूवं विदन्ति ते वत्थुं ॥ मिच्छदिट्ठी तम्हा, सव्वं चिय तेसिमन्नाणं ॥ ३२३ ॥" [निर्णयकालेऽपि यतो न तथारूपं विदन्ति ते वस्तु ॥ मिथ्यादृष्टयस्तस्मात्सर्वमेव तेषामज्ञानम्] इति गाथया मिथ्यादृशां निर्णयकालेऽपि ज्ञानत्वनियामक तत्त्वाभ्युपगमयोग्यताभावभणनाद् ज्ञानाभावलक्षणमज्ञानमुक्तं, यदुक्तं "कट्ठयरं वन्नाणं, विवज्जओ चेव मिच्छदिट्ठीणं ॥ मिच्छाभिणिवेसाओ, सव्वत्थ घडेव्व पडबुद्धी ॥३२४॥" [कष्टतरं वाऽज्ञानं, विपर्ययत एव मिथ्यादृष्टीनां ॥ मिथ्याभिनिवेशात्सर्वत्र, घट इव पटबुद्धिः] इति गाथया चाऽभिनिवेशव्यपदेश्यमिथ्यादर्शनरूपायास्तदयोग्यताया एव कष्टतरत्वात्तज्ज्ञानजनकसम्यग्दर्शनविरोधि मिथ्यादर्शनजन्यं स्वतन्त्रमेवाज्ञानमुक्तं कष्टतरपदेनातिदुस्सहमहादुःखहेतुत्वाभिधानात्तत्त्वाभ्युपगमाभावनियामकत्वोक्तावपि तस्य स्वतः संसाराहेतुत्वात्, विपर्ययनियामकमिथ्याभिनिवेशोक्त्या फलतस्तद्धेतुभूतमिथ्यादर्शन–सत्ताभिधानाज्ञाननियामकत्वे मिथ्याभिनिवेशयोग्यताविशिष्टस्वरूपज्ञानस्य तत एवातिप्रसङ्गादिति वाच्यम्, सम्यग्दृष्टौ सम्यग्दर्शनविशिष्टज्ञानस्य प्रसिद्धत्वेन तमुद्दिश्य सम्यग्दर्शनविशिष्टज्ञानस्य प्रश्नप्रतिवचनाऽभावप्रसङ्गाद्विशिष्याज्ञातस्यैवार्थस्य प्रश्नारोहात्, न चापर्याप्ताद्यवस्थायां सम्यक्त्वकालेऽपि ज्ञानाभावशङ्कया प्रश्नावतारो मनोव्यापाररूपस्य व्यक्तज्ञानस्य तदानीमभावेऽपि ज्ञानसामान्यस्याप्रत्यूहत्वाच्च निर्वचनं फलवदिति वाच्यम्, तथापि विशेषमन्तर्भाव्य निर्वचनस्याऽनतिप्रयोजन-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वात्, न च निर्वचनेनैव विशेषान्तर्भाव इति शङ्कनीयं, मिथ्यादृष्टिसूत्रानुरोधेन तत्र विशेषान्तर्भावावश्यकत्वात्, न च मोक्षहेतोः सम्यग्दर्शनविशिष्टज्ञानस्य सम्यग्दृष्टौ विशेष्यशङ्काप्रयुक्तशङ्कया प्रश्नस्तन्निर्वचनञ्च सङ्गच्छेते इति वाच्यम्, सम्यग्दर्शनविशिष्टज्ञानत्वेन मोक्षाहेतुत्वाद्विशिष्टज्ञानत्वेनैव तथात्वात्सामान्यपदेन विशेषप्रश्नानौचित्याच्च, अपि च सम्यग्दृष्टिसूत्रस्थप्रश्नवाक्यद्वये ज्ञानपदस्यैकरूपस्यैव निवेशात्कथं निर्वचनसूत्रयोर्विशेषगर्भत्वं प्रश्नसमानाकारस्यैवोत्तरस्य युक्तत्वात्, नहि भूतले घटोऽस्ति नवेति प्रश्ने भूतले नीलघटोऽस्तीत्युत्तरमुदश्चन्ति विपश्चितः, एवञ्च स्वस्थितशङ्काविरहेऽपि शिष्यजिज्ञापयिषोत्थापितशङ्कया प्रश्न इत्युक्तिरपि न युक्तेति चेत्, न, सम्यग्दर्शनविशिष्टज्ञानस्यैव मोक्षौपयिकतया नैश्चयिकज्ञानत्वात्प्रश्ननिर्वचनवाक्ययोस्तु सामान्यपदगर्भयोरपि विशेषाभिप्रायप्रयुक्ततया विशेषे पर्यवसानात्, तथाहि, निश्चयाभिप्रायेण सम्यग्दृष्टिर्ज्ञानी नवेति प्रयुक्तस्य प्रश्नवाक्यस्य सम्यग्दृष्टिर्मोक्षौपयिकज्ञानवान्न वेत्यर्थात् ततः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञान्येवेति निर्वचनवाक्यस्य सम्यग्दृष्टिर्मोक्षौपयिकज्ञानवानेवेत्यर्थात् यदभिप्रायेण प्रश्नस्तदभिप्रायेणैवोत्तरप्रदानात्, एवं मिथ्यादृष्टिसूत्रेऽपि भावनीयं, न च विशेषाभिप्रायेणापि प्रयुक्तात् सामान्यपदान्न विशेषोपस्थितिरिति शङ्कनीयं, भोजनाभिप्रायेण सैन्धवप्रश्ने तदुत्तरवाक्यस्थसैन्धवपदाल्लवणानुपस्थितिप्रसङ्गादिति दिग् ॥ १८ ॥ अथ प्रकारान्तरेण संशयादिकालेऽपि सम्यग्दृशो ज्ञानं मिथ्यादृशश्च निर्णयकालेऽप्यज्ञानं समर्थयति—

सम्यग्दृशः संशयो वा, ज्ञानं ज्ञानोपयोगतः ॥ मिथ्यादृशां किलाज्ञानं, सर्वो बोधस्तमन्तरा ॥ १९ ॥

सम्यग्दृशः संशयः, उपलक्षणाद्विपर्यासानध्यवसायौ च ज्ञानमेव ज्ञानोपयोगात्, 'यो यदुपयुक्तः स तन्मयो' यथेन्द्रज्ञानोपयुक्तो दरिद्रोऽपीन्द्र एव, वर्तते च सम्यग्दर्शनलाभकाल एव मत्यादिज्ञानलाभात्सम्यग्दृशः सर्वदैव ज्ञानपरिणामरूपज्ञानोपयोग-

॥ मतिज्ञानप्ररूपणाप्रसङ्गे सम्यग्दृशां संशयादीनामपि ज्ञानत्वं मिथ्यादृशां चाज्ञानत्वमिति युक्त्यन्तरेणाप्युपपादनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मात्रं, तस्मात्तस्य संशयादिकालेऽपि मौलज्ञानोपयोगयोगादप्रत्यूहमेव ज्ञानमिति । तदाह–"अहवा जहिंदनाणो–वओगओ तम्मयत्तणं होइ ॥ तह संसयाइभावे, नाणं नाणोवओगाओ ॥३२५॥" [अथवा यथेन्द्रज्ञानोपयोगतस्तन्मयत्वं भवति । तथा संशयादिभावे ज्ञानं ज्ञानोपयोगात्] मिथ्यादृशस्तु निर्णयकालेऽपि सम्यग्दर्शनाविनाभाविज्ञानोपयोगयोर(स्याऽ)भावादज्ञानमेव, उपयोगग्राहिणा नयेन तत्कार्यान्तरमनपेक्ष्य तदुपयोगेनैव तन्मयत्वव्यवस्थापनादिन्द्रपदार्थं परमैश्वर्यमनपेक्ष्यैवेन्द्रोपयोगवत इन्द्रत्वाभ्युपगमात् ॥ तदाह–"तुल्लमिणं मिच्छस्स वि, सो सम्मत्ताइभावसुन्नोत्ति ॥ उवओगंमि वि तो तस्स, णिच्चमन्नाणपरिणामो ॥३२६॥ जं निन्नओवओगे वि, तस्स विवरीयवत्थुपडिवत्ती ॥ तो संसयाइकाले, कत्तो नाणोवओगो से॥३२७॥" [तुल्यमिदं मिथ्यादृष्टेरपि स सम्यक्त्वादिभावशून्य इति ॥ उपयोगेऽपि ततस्तस्य नित्यमज्ञानपरिणामः ॥ यन्निर्णयोपयोगेऽपि तस्य विपरीतवस्तुप्रतिपत्तिः । ततः संशयादिकाले कुतो ज्ञानोपयोगस्तस्य ॥] ॥ १९ ॥ तदेवं साधितमभ्युपगम्याऽनिश्रितादीनां संशयादिरूपत्वेऽपि सम्यग्दृशां ज्ञानत्वम्, अथ सामान्यतो ज्ञानाज्ञानरूपाया एव मतेर्निरूपणीयत्वान्न किञ्चिद्दुष्यतीत्याह—

सामान्यतो निरूप्यत्वा–न्मतेः कापि न च क्षतिः ॥ ज्ञानाज्ञानविभागस्तु, ज्ञेयो फलविभागतः ॥ २० ॥

इह हि 'आभिणिबोहियनाणं, सुअनाणं च' इत्यादिगाथायां श्रुतज्ञानं तावद् योगार्थमात्रपुरस्कारेण ज्ञानज्ञानोभयसाधारणमेव निर्दिष्टमिति,। यथा–'अक्खरसन्नीसम्मं' इत्यादिनाऽभिधास्यमानेषु चतुर्दशसु तद्भेदेषु मिथ्याश्रुतस्यैषां ग्रहप्रसङ्गाद्, एवं च मतिज्ञानमपि सङ्ग्रहलाघवाद् ज्ञानाज्ञानोभयसाधारणमेवोक्तमिति सम्यग्दृष्टिसम्बन्धिनां संशयादीनामज्ञानत्वेऽपि न क्षतिरिति॥तदाह–"अहवा जह सुयनाणा–वसरे सामन्नदेसणं भणिअं ॥ तह मइनाणावसरे, सव्वमइनिरूवणं कुणइ ॥३२८॥" [अथवा यथा श्रुतज्ञा-

तृतीयस्तरङ्गः मतिज्ञाननिरूपणप्रसङ्गेन सम्यग्दृशामुपयोगप्रकारेण ज्ञानत्वं मिथ्यादृशां चाज्ञानत्वमिति समर्थितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नावसरे सामान्यदेशनं भणितम्॥तथा मतिज्ञानावसरे, सर्वमतिनिरूपणं करोति] ज्ञानाज्ञानविभागचिन्तायां तु सम्यक्त्वानुगता मतिर्मतिज्ञानं, मिथ्यात्वविशेषिता तु सा मत्यज्ञानमिति द्रष्टव्यं,'अविसेसिया मइ'इत्यादिसूत्रेण प्राक्तथाविवेचितत्वाद्॥आह च– " एसा सम्माणुगया, सव्वा नाणं विवज्जए इयरं॥अविसेसिया मइ च्चिय, जम्हा णिद्दिट्ठमाईए॥३२९॥[एषा सम्यक्त्वाऽनुगता, सर्वा ज्ञानं विपर्यये इतरत् ॥ अविशेषिता मतिरेव यस्मान्निर्दिष्टमादौ ॥] नन्वेतत्सूत्रव्यावर्णन एव मतिज्ञानपदं सम्यग्दृष्टित्वविशेषितायामेव मतौ प्रवर्तत इत्युक्तम्, तत्कथमाभिनिबोधिकज्ञानपदेन ज्ञानाज्ञानोभयरूपाया मतेः सङ्ग्रह इति चेत्, सत्यम्–रूढिपुरस्कारेणैव सम्यग्दृष्टित्वविशेषितं मतिज्ञानं ज्ञानमित्युक्तेर्योगार्थमादायोभयसङ्ग्रहाविरोधात्,योगार्थस्य साधारणत्वेऽपि मोक्षसंसारलक्षणफलभेदेनैव सम्यग्मिथ्यादृष्टिसम्बन्धिनोर्ज्ञानयोरनाद्यलौकिकसङ्केतलक्षणज्ञानाज्ञानपदरूढिप्रवृत्तेर्निश्चयेन फलवत एव वस्तुनोऽभ्युपगमात्, अत एवाह–"विवरीयवत्थुगहणे, जं सो साहणा विवज्जयं कुणई ॥ तो तस्स अन्नाणफलं, सम्मद्दिस्स नाणफलं॥३३०॥" [विपरीतवस्तुग्रहणे, यत्स साधनविपर्ययं करोति ॥ ततस्तस्याऽज्ञानफलं सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानफलम् ॥] विपरीतवस्तुग्रहणशीलो हि मिथ्यादृष्टिर्यागीयहिंसादिकं संसारसाधनमपि मोक्षसाधनत्वेनाध्यवस्यतीति विपरीतफलकत्वेन तदज्ञानमिति परिभाष्यते, सम्यग्दृष्टिस्तु यथावद्ज्ञात्वा यथास्थानं साधनं विनियुङ्क्त इति फलवत्त्वात्तदीयो बोधो ज्ञान ××× (योजितः पाठः)[मेव॥ननु सर्वमयं सर्वमेव वस्त्विति भवत्सिद्धान्ततो मोक्षसाधनस्य सम्यग्ज्ञानादित्रिकस्य सम्यग्ज्ञानादिवन्मिथ्याज्ञानादिरपि धर्म इति सम्यग्दृष्टिना मोक्षसंसिद्धये 'यस्य साधनस्य धर्मोऽङ्गीकृतः मिथ्यादृष्टिनापि तस्यैव धर्मस्तत्सिद्धये स्वीकृतः, धर्मग्रहणद्वारेण च तस्य धर्मिणोऽपि कथञ्चिद्ग्रहणं समस्त्येवेति न मिथ्यादृष्टेर्विपरीतत्वमिति चेत्. न,

सम्यग्दृशां मोक्षफलसाधकत्वेन ज्ञानं मिथ्यादृशां तदसाधकत्वेन चाज्ञानमिति समर्थितम् ॥ लेखपुस्तकेऽत्र "गाथा इतोऽष्टपञ्चाशद्विशीर्णावृत्तिसङ्गऽता:" इतिलिखितमस्ति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यतोऽनन्तधर्माऽध्यासितस्यापि वस्तुनो न सर्वेऽपि धर्मा एकमर्थं साधयन्ति, किन्तु यो धर्मो यत्रार्थे योग्यस्स एव तमेवार्थं साधयति यथा कलशमल्लकादीनां मृद्धर्मत्वे समानेऽपि कलश एव मङ्गलादिकार्येषु व्याप्रियते, एवं यद्यपि मोक्षादिसाधनस्य मिथ्याज्ञानादिकोऽपि व्यावृत्तिरूपतया धर्मः, तथापि नासौ मोक्षस्य साधकः, किन्तु तद्विपक्षभूतस्य संसारादिकस्यैव, मोक्षादेस्तु तत्साधनयोग्यः सम्यग्ज्ञानादिको धर्म एव साधक इति वस्तुस्थितौ मोक्षेऽयोग्यं मिथ्याज्ञानादिकमयोग्यतयाऽपश्यंस्तत्र व्यापारयति मिथ्यादृष्टिरतस्साधनविपर्ययं कुर्वतोऽस्याज्ञानमेव, तदाह भाष्यकारः–"जइ सो वि तस्स धम्मो, किं विवरीयत्तणं ति तं न भवे ॥ धम्मो वि जओ सव्वो, न साहणं किंतु जो जोग्गो ॥ ३३१ ॥ जोग्गाजोग्गविसेसं, अमुणंतो सो विवज्जयं कुणइ ॥ सम्मद्दिट्ठी उण कुणई, तस्स सट्ठाणविणिओगं ॥३३२॥" [यदि सोऽपि तस्य धर्मः किं विपरीतत्वमिति तन्न भवेत् ॥ धर्मोऽपि यतः सर्वो न साधनं किन्तु यो योग्यः ॥ योग्यायोग्यविशेषमजानन् स(मिथ्यादृष्टिः) विपर्ययं करोति ॥ सम्यग्दृष्टिः पुनः करोति, तस्य स्वस्थानविनियोगम्] इति । योग्यमयोग्यञ्च धर्मं जानन् स्थाने व्यापारयँश्च सम्यग्दृष्टिः सम्यगाराधको भूत्वा समीहितफलभाग्भवति ॥ उक्तं च–"काले सिक्खइ नाणं, जिणभणिअं परमभत्तिराएण ॥ दंसणपभावगाणि अ, सिक्खइ सत्थाइं कालम्मि ॥१॥ काले य भत्तपाणं, गवेसए सयलदोसपरिसुद्धं ॥ आयरियाईणट्ठा, पवयणमायासु उवउत्तो ॥ २ ॥ एवं समायरंतो, काले कालं विसुद्धपरिणामो ॥ असवन्तजोगकारी, सलाहणिज्जो य भुवणम्मि ॥ ३ ॥ सयलसुरासुरपणमिय–जिण–गणहरभाणियकिरियविहिकुसलो ॥ आराहिऊण सम्म–त्त–नाण–चरणाइं परमाइं ॥ ४ ॥ सत्तट्ठभवग्गहण–ब्भंतरकालम्मि केवलन्नाणं । उप्पाडिऊण गच्छइ, विहुयमलो सासयं मोक्खं ॥५॥ तत्थ य जर–जम्मण–मरण–रोग–तण्हा–छुहा–भय–विमुक्को ॥ साइ अपज्जवसाणं,

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गे सम्यग्दृशां ज्ञानस्य मोक्षसाधकत्वं तदनुकूलाऽनुष्ठानक्रमोपदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालमणंतं सुहं लहइ ॥ ६ ॥" इति ॥[काले शिक्षते ज्ञानं, जिनभणितं परमभक्तिरागेण ॥ दर्शनप्रभावकाणि च शिक्षते शास्त्राणि काले ॥ काले च भक्तपानं, गवेषयेत्सकलदोषपरिशुद्धम्॥आचार्यादीनामर्थाय, प्रवचनमातृषूपयुक्तः ॥ एवं समाचरन्काले काले विशुद्धपरिणामः ॥ अस्तवद्योगकारी श्लाघनीयश्च भुवने ॥ सकलसुरासुरप्रणतजिन–गणधरभाषितक्रियाविधिकुशलः ॥ आराध्य सम्यक्त्वज्ञानचरणानि परमाणि ॥ सप्ताष्टभवग्रहणाभ्यन्तरकाले केवलज्ञानम् ॥ उत्पाद्य गच्छति विधुतमलः शाश्वतं मोक्षम् ॥ तत्र च जराजन्ममरणरोगतृष्णाक्षुधाभयविमुक्तः ॥ साद्यपर्यवसानं कालमनन्तं सुखं लभते ॥] तेषु मतिज्ञानभेदेषु चतुर्षु अर्थावग्रहादिषु एकसमयोऽर्थावग्रहः, समयः सर्वजघन्यः कालविशेषः, ईहापायावन्तर्मुहूर्तम्, व्यञ्जनावग्रहव्यावहारिकार्थावग्रहावपि तथैव, अविच्युतिस्मृतिवासनाभेदात् त्रिविधा धारणा, तत्राऽविच्युतिः स्मृतिश्च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं भवति, स्मृतिबीजभूता तदर्थज्ञानावरणक्षयोपशमरूपा वासना तु संख्येयवर्षायुषां सत्त्वानां संख्येयं कालम्, असंख्येयवर्षायुषां तु पल्योपमादिजीविनाम संख्येयं कालम्भवति, तदुक्तं निर्युक्तिकृता ॥ " उग्गहो एक्कं समयं, ईहा–वाया मुहुत्तमंतं तु ॥ कालमसंखं संखं च, धारणा होइ नायव्वा ॥ ३३३ ॥ " इति [अवग्रह एकं समयं, ईहापायौ मुहूर्तान्तस्तु ॥ कालमसंख्यं संख्यं च धारणा भवति ज्ञातव्या] नैश्चयिकार्थावग्रह एकसमयः, वासनारूपधारणाम्मुक्त्वाऽन्ये व्यञ्जनावग्रह–व्यावहारिकार्थावग्रहापायाविच्युतिस्मृतिरूपा मतिभेदाः पृथगेकमेवान्तर्मुहूर्तं भवन्ति। यदाह भाष्यकारः ॥ " अत्थोग्गहो जहन्नो, समयं सेसोग्गहादओ वीसुं ॥ अंतोमुहुत्तमेगं तु, वासनाधारणं मोत्तुं ॥३३४॥" [अर्थावग्रहो जघन्यः समयं शेषाऽवग्रहादयो विश्वक् अन्तर्मुहूर्तमेकं तु वासनाधारणां मुक्त्वा] इति स्थितिविचारः ॥ नयनमनोभिन्नानां श्रोत्रादीनां चतुर्णामिन्द्रियाणां प्राप्यकारित्वव्यवस्थापनतस्तेषां

(योजितः पाठः) । मतिज्ञानप्ररूपणप्रसङ्गेऽर्थावग्रहादीनां कालमानप्रदर्शनं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्धा नयनमनसोरप्राप्यकारित्वव्यवस्थापनतस्तयोर्न व्यञ्जनावग्रहः, इत्येवं पूर्वमेव निर्णयः कृतः, इदानीं तेषु तत्र विशेष उपदर्श्यते–श्रोत्रं स्पृष्टमात्राण्येव शब्दद्रव्याण्युपलभते, तानि घ्राणेन्द्रियादिविषयीभूतद्रव्येभ्यः सूक्ष्माणि, बहूनि, भावुकानि च, विषयपरिच्छेदे घ्राणेन्द्रियादिगणात्पटुतरं च श्रोत्रेन्द्रियम्, घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियाणि स्वस्वविषयं बद्धस्पृष्टं गृह्णन्ति, घ्राणस्य विषयो गन्धः, रसनाया विषयो रसः, स्पर्शनस्य विषयः स्पर्शः। स्पृष्टमित्यालिङ्गितं, बद्धं तु गाढतरमाश्लिष्टमात्मप्रदेशैः, घ्राणेन्द्रियादिविषयभूतानि गन्धादिद्रव्याणि शब्दद्रव्यापेक्षया स्तोकानि, बादराणि, अभावुकानि च, विषयपरिच्छेदे श्रोत्रापेक्षयाऽपटूनि च घ्राणादीनि, अत एव बद्धस्पृष्टमेव स्वस्वविषयं गृह्णन्ति, न स्पृष्टमात्रम्, चक्षुरिन्द्रियन्तु अप्राप्तमेव विषयं गृह्णाति, अप्राप्तत्वाविशेषे कथं न सर्वस्य ग्रहणमिति नाशङ्क्यं, यतोऽप्राप्तमपि योग्यदेशस्थमेव पश्यति, नायोग्यदेशस्थमिति, उक्तार्थोपोद्बलिकां 'पुट्ठं सुणेइ सद्दं' इत्यादिनिर्युक्तिगाथां सम्बन्धयन्नाऽऽह भाष्यकारः॥ "सोत्ताईणं पत्ताइ–विसयया पुव्वमत्थओ भणिया ॥ इह कंठा सट्ठाणे, भण्णइ विसयप्पमाणं च ॥३३५॥ पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु ॥ गन्धं रसं च फासं च, बद्धपुट्ठं वियागरे॥३३६॥" इति, 'पुट्ठं सुणेइ सद्दं' इति **निर्युक्तिगाथाव्याख्यानरूपाश्चेमा भाष्यगाथाः**, तद्यथा–"पुट्ठं रेणुं व तणुम्मि, बद्धमप्पीकयं पएसेहिं ॥ छिक्काइं चिय गिण्हइ, सद्दव्वाइं जं ताइं॥३३७॥ बहुसुहुमभावुगाइं, जं पडुयरं च सोत्तविण्णाणं ॥ गंधाईदव्वाइं, विवरीयाइं जओ ताइं॥३३८॥ फरिसाणंतरमत्त–प्पएसमीसीकयाइं घेप्पंति ॥ पडुयरविण्णाणाइं, जं च न घाणाइकरणाइं॥ ३३९॥"[श्रोत्रादीनां प्राप्तादि–विषयता पूर्वमर्थतो भणिता॥इह कण्ठात्स्वस्थाने, भण्यते विषयप्रमाणं च॥स्पृष्टं श्रृणोति शब्दं रूपं पुनः पश्यत्यस्पृष्टं तु ॥ गन्धं रसं च स्पर्शं च बद्धस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥ स्पृष्टं रेणुरिव तनौ बद्धमात्मीकृतं प्रदेशैः॥स्पृष्टा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न्येव गृह्णाति,शब्दद्रव्याणि यत्तानि।।आत्माङ्गुलेन लक्षमतिरिक्तं योजनानां तु ।। बहुसूक्ष्मभावुकानि यत्पटुतरं च श्रोत्रविज्ञानम् ।। गन्धादिद्रव्याणि विपरीतानि यतस्तानि ।। स्पर्शानन्तरमात्मप्रदेशैर्मिश्रीकृतानि गृह्यन्ते ।। पटुतरविज्ञानानि यच्च न घ्राणादिकरणानि ।।] इति ।। स्पष्टाश्चेमा गाथाः । नयनं मनश्चाप्राप्तस्यैव वस्तुनः परिच्छेदकारि, तेन नयनं रूपमस्पृष्टमेव पश्यति, नयनस्य चात्माङ्गुलेन सातिरेकं योजनलक्षमुत्कृष्टतोऽपि विषयपरिमाणमागमेऽभिहितं, तेनाप्राप्तत्वाविशेषेऽपि परतो न पश्यति, आत्माङ्गुलोच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणाङ्गुलभेदेनाङ्गुलं त्रिविधं ।। तत्राद्यं "जेणं जया मणूसा, तेसिं जं होइ माणरूवं तु ।। तं भणियमिहायंगुल–मणिययमाणं पुण इमं तु ।।१।।" द्वितीयं तु "परमाणू तसरेणू, रहरेणू अग्गयं च वालस्स ।। लिक्खा जूया य जवो, अट्ठगुणविवड्ढिया कमसो ।।२।।" इत्यादिग्रन्थोक्तम्, तृतीयं तु–"उस्सेहंगुलमेगं, हवइ पमाणंगुलं सहस्सगुणं ।। तं चेव दुगुणियं खलु, वीरस्सायंगुलं भणियं ।।३।। आयंगुलेण वत्थुं, उस्सेहपमाणओ मिणसु देहं।।नग–पुढवि–विमाणाइं, मिणसु पमाणंगुलेणंति।।४।। [ये यदा मनुष्यास्तेषां यद् भवति मानरूपं तु।।तद्भणितमिहात्माङ्गुल–मनियतमानं पुनरिदं तु।।परमाणुस्त्रसरेणू, रथरेणुरग्रकं च वालस्य।।लिक्षा यूका च यवोऽष्टगुणविवर्धिताः क्रमशः।। उत्सेधाङ्गुलमेकं,भवति प्रमाणाङ्गुलं सहस्रगुणम्।। तदेव द्विगुणितं खलु, वीरस्यात्माङ्गुलं भणितम्।। आत्माङ्गुलेन वस्तु, उत्सेध(धाङ्गुल)प्रमाणतो मिनु देहम्।। नगपृथ्वीविमानानि, मिनु प्रमाणाङ्गुलेनेति ।।] उक्तोपपत्तिप्रदर्शिका च भाष्यगाथा यथा–"अप्पत्तकारि नयणं, मणो य, नयणस्स विसयपरिमाणं ।। आयंगुलेण लक्खं, अइरित्तं जोयणाणं तु ।। ३४० ।। " [अप्राप्तकारि नयनं मनश्च, नयनस्य विषयपरिमाणम् । आत्माङ्गुलेन लक्षमतिरिक्तं योजनानां तु ।।] इति ।। ननु " उस्सेहपमाणओ मिणे देहं " इतिवचनाद्देहस्य तावदुच्छ्रयाङ्गुल-

(योजितः पाठः) मतिज्ञान-विषयमान-निरूपणप्रस्तावेऽङ्गुल-भेदत्रिकस्य तद्गोचरस्य च प्रदर्शनम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रमाणत्वं सिद्धमेव, देहग्रहणस्योपलक्षणत्वात्तत्रस्थमिन्द्रियं तद्विषयश्च गृह्यत इति चक्षुषस्तद्विषयस्य चोच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणमेयत्वेनात्माङ्गुलेन नयनविषयपरिमाणकथनमयुक्तमिति चेत्,न, देहग्रहणस्योपलक्षणार्थत्वास्वीकारेण देहस्यैवोच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणमेयत्वेनेन्द्रियविषयपरिमाणस्यात्माङ्गुलेनैव मेयत्वात्, तदुक्तं भाष्यकृता "नणु भणियमुस्सयंगुल–पमाणओ जीवदेहमाणाइ ॥ देहपमाणं चिय तं, न उ इंदियविसयपरिमाणं ॥३४१॥" [ननु भणितमुच्छ्रया–ङ्गुलप्रमाणतो जीवदेहमानानि ॥ देहप्रमाणमेव तद्, न त्विन्द्रियविषयपरिमाणम्] इति, युज्यते चेन्द्रियविषयपरिमाणमात्माङ्गुलेनैव, न तु उच्छ्रयाङ्लेन, यतः पञ्चार्धपञ्चमधनुःशतादिप्रमाणानां भरतादीनां चायोध्यादिनगर्यः स्कन्धावारश्चात्माङ्गुलेन द्वादशयोजनायामतया सिद्धान्ते निर्णीताः, भरतचक्रवर्त्याद्यात्माङ्गुलं च प्रमाणाङ्गुलं तद् उच्छ्रयाङ्गुलात्सहस्रगुणं " उस्सेहंगुलमेगं हवइ पमाणंगुलं सहस्सगुणं " इति वचनात्, ततश्चायोध्यादिनगर्यः स्कन्धावारश्च उत्सेधाङ्गुलेन पुनरनेकानि योजनसहस्राणि भवन्ति, एवञ्चायुधशालादिषु ताडितभेर्यादिशब्दश्रवणं सर्वेषामिन्द्रियविषयस्योच्छ्रयाङ्गुलमेयत्वपक्षे न प्राप्नोति, यतः श्रोत्रं "बारसहिं जोअणेहिं, सोयं अभिगिण्हए सद्दं " इत्यादिवचनात् द्वादशभ्य एव योजनेभ्यः समागतं शब्दं शृणोति न परतः, उक्तपक्षे च एतानि द्वादशयोजनानि किलोच्छ्रयाङ्गुलेन मीयन्ते, अत उच्छ्रयाङ्गुलनिष्पन्नेभ्योऽनेकयोजनसहस्रेभ्यः समागतं भेर्यादिशब्दं कथं श्रोत्रं गृह्णीयात्, इष्यते च भरतादिनगरीस्कन्धावारेषु तच्छ्रवणम्,अत आत्माङ्गुलेनैवेन्द्रियाणां विषयपरिमाणं नोत्सेधाङ्गुलेनेतिसिद्धम्, तदुक्तं भाष्यकृता " जं तेण पंचधणुसयनराइ–विसयववहारवोच्छेओ ॥ पावइ सहस्सगुणियं, जेण पमाणंगुलं तत्तो ॥ ३४२ ॥"
[यत्तेन पञ्चधनुःशतनरादिविषयव्यवहारव्यवच्छेदः ॥ प्राप्नोति सहस्रगुणितं, येन प्रमाणाङ्गुलं ततः ॥] इति ॥

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः देहस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणत्वाद्देहस्थत्वेनेन्द्रियाणां तद्विषयस्य च तन्मेयत्वमेवोचितमित्यारेकाया युक्त्यादिभिरपाकरणम् ॥
॥ ७३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किञ्च देहस्यात्मभूतान्यपीन्द्रियाणि सर्वाणि नोच्छ्रयाङ्गुलेन मीयन्ते यदा तदा कैव कथा तद्विषयाणामुच्छ्रयाङ्गुलमेयत्वस्य, यतः स्पर्शनेन्द्रियमेकमुच्छ्रयाङ्गुलेन मीयते शेषाणि तु द्रव्येन्द्रियाण्यात्माङ्गुलेनैव मीयन्ते, त्रिगव्यूतादिमानानां युगलधर्मिणां जिह्वेन्द्रियादिमानस्योच्छ्रयाङ्गुलेन ग्रहणे क्षुरप्राकारतयोक्तस्य जिह्वेन्द्रियस्य विशालदेहानुसारित्वेन विशालमुखगतत्वेन विशालस्याङ्गुलपृथक्त्वलक्षणो विस्तारो गृह्येत, एवञ्चात्यल्पतया सर्वामपि जिह्वां न व्याप्नुयात्, तदव्याप्तौ च सर्वया जिह्वया रसवेदनलक्षणो व्यवहारो न घटेत, तस्मादात्माङ्गुलेनैव जिह्वादिमानं घटत इति, तदुक्तं भाष्यकृता "इंदियमाणेवि तयं, भयणिज्जं जं तिगाउआईणं।।जिब्भिदियाइमाणं, संववहारे विरुज्झेज्जा।।३४३।।"[इन्द्रियमानेऽपि तद् भजनीयं यत् त्रिगव्यूतादीनाम् । जिह्वेन्द्रियादिमानं संव्यवहारे विरुध्येत।।]इति, चक्रवर्तिभरतनगर्यादिषु भेर्यादिशब्दश्रवणव्यवहारस्य युगलधर्मिणां रसवेदनव्यवहारस्य चाभावप्रसङ्गेनेन्द्रियविषयपरिमाणस्येन्द्रियपरिमाणस्य नोच्छ्रयाङ्गुलमेयत्वं किन्त्वात्माङ्गुलमेयत्वमेवेति व्यवस्थितौ "उस्सेहपमाणओ मिणे देहं" इत्यत्र देहशब्देन देहमानमेव पारिशेष्याद् गृह्यते, किञ्च परस्येन्द्रियतद्विषयपरिमाणयोरुच्छ्रयाङ्गुलमितत्वेऽर्थापत्तिरेव प्रमाणं न त्वागमवचनं, आगमे तु " इच्चेएणं उस्सेहंगुलप्पमाणेणं नेरइअ–तिरिक्खजोणिय–मणुस्स–देवाणं सरीरोगाहणाओ मिज्जंति " [इत्येतेनोच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणेन नैरयिकतिर्यग्योनिकमनुष्यदेवानां शरीरावगाहना मीयन्ते] इत्यस्मिन् शरीरावगाहनैवोच्छ्रयाङ्गुलमेयत्वेनोक्ता न त्विन्द्रियविषयपरिमाणं, ततस्तदात्माङ्गुलेनैवेति, तदाह भाष्यकृत्—" तणुमाणं चिय तेणं, हविज्ज भणियं सुए वि तं चेव।। एएण देहमाणाइं, नारयाईण मिज्जंति ।। ३४४ ।।" [तनुमानमेव तेन, भवेद् भणितं श्रुतेऽपि तदेव।। एतेन देहमानानि, नारकादीनां मीयन्ते।।] इति । ननु पुष्करवरद्वीपस्य मानुषोत्तरपर्वताद्विधाकृतस्य अर्वाग्भागवर्ति-

(योजितः पाठः) देहस्पर्शनेन्द्रिययोरेवोत्सेधाङ्गुलमेयत्वमन्येन्द्रियतद्विषयाणामात्माङ्गुलमेयत्वं व्यवस्थापितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न्यर्धे मानुषोत्तरसन्निधावुत्कृष्टे दिवसे कर्कटकसंक्रान्त्यामुदयेऽस्तमये च सातिरेकैरेकविंशतिलक्षैर्योजनानां व्यवस्थितं सूर्यं मनुष्याः पश्यन्ति, यदुक्तं "सीयालीससहस्सा, दो य सया जोयणाण तेवट्ठी ॥ एगवीस सट्ठिभागा, कक्कडमाइम्मि पेच्छ नरा ॥१॥" [सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते योजनानां त्रिषष्टिं । एकविंशतिं षष्टिभागान्कर्कादौ प्रेक्षन्ते नराः] इति, यथाऽत्र तथा पुष्करार्धेऽपि मानुषोत्तरसमीपे प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नैः सातिरेकैकविंशतियोजनलक्षैर्व्यवस्थितमादित्यं तत्र दिने तन्निवासिनो लोकाः समवलोकयन्ति, तदुक्तम्–" एगवीसं खलु लक्खा, चउतीसं चेव तह सहस्साइं ॥ तह पंच सया भणिया, सत्तत्तीसाए अइरित्ता ॥ १ ॥ इति नयनविसयमाणं, पुक्खरदीवद्धवासिमणुआणं ॥ पुव्वेण य अवरेण य, पिहं पिहं होइ नायव्वं ॥ २ ॥" इति । [एकविंशतिः खलु लक्षाणि चतुस्त्रिंशदेव तथा सहस्राणि ॥ तथा पञ्च शतानि भणितानि सप्तत्रिंशतातिरिक्तानि ॥ इति नयनविषयमानं पुष्करद्वीपार्धवासिमनुजानाम् ॥ पूर्वेण चापरेण च पृथक् पृथक् भवति ज्ञातव्यम् ॥] तस्मान्नयनेन्द्रियस्य सातिरेकयोजनलक्षस्वरूपं विषयपरिमाणं यथा प्रज्ञापनादिसूत्रेऽभिहितं तथाऽऽत्माङ्गुलोत्सेधाङ्गुलप्रमाणाङ्गुलानामेकेनापि गृह्यमाणं न युक्तं, प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नस्यापि योजनलक्षस्य तन्निष्पन्नसातिरेकैकविंशतियोजनलक्षेभ्य एकविंशतितमभागवर्तित्वेन बृहदन्तरत्वात्, तस्मादेकत्र सातिरेकं लक्षम्, अन्यत्र तु सातिरेकैकविंशतिलक्षाणि योजनानां नयनस्य विषयप्रमाणं ब्रुवतः सूत्रस्य पूर्वापरविरोधः, तदाह भाष्यकृत्–"लक्खेहिं एक्कवीसाए, साइरेगेहिं पुक्खरद्धम्मि ॥ उदये पेच्छन्ति नरा, सूरं उक्कोसए दिवसे ॥३४५॥ नयणिंदियस्स तम्हा, विसयपमाणं जहा सुएभिहियं ॥ आउस्सेहपमाणं–गुलाण एक्केण वि न जुत्तं ॥ ३४६ ॥" [लक्षैरेकविंशत्या, सातिरेकैः पुष्करार्धे ॥ उदये प्रेक्षन्ते नराः, सूर्यमुत्कृष्टे

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः नयनविषयप्रमाणस्य यथासूत्राभिहितत्वं तथाऽऽत्मोत्सेधाङ्गुलप्रमाणान्यतमेनापि न युक्तत्वमित्याशङ्कनम् ॥१

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिवसे ॥ नयनेन्द्रियस्य तस्मा-द्विषयप्रमाणं यथा श्रुते भणितम् ॥ आत्मोत्सेधप्रमाणा-ङ्गुलानामेकेनापि न युक्तम् ॥] इतीति चेत्, न, सातिरेकयोजनलक्षं नयनविषयप्रमाणं प्रतिपादयतः सूत्रस्याभिप्रायापरिज्ञानात्, तथाहि-स्वयं तेजोरूपप्रकाशरहितत्वात्परप्रकाशनीये पर्वतगर्तादिवस्तुन्येव सातिरेकयोजनलक्षं नयनविषयप्रमाणं, न तु स्वयमेव तेजोयुक्तत्वेन प्रकाश्ये चन्द्रार्कादिके प्रकाशके वस्तुनि, तत्र त्वनियम एव, "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न्न तु सन्देहादलक्षणम्" इति न्यायाद् व्याख्यानात्सूत्रं विषयविभागेन धरणीयं न तूभयपक्षोक्तिमात्रभ्रमितैस्तद्विरोध उद्भावनीयः. तदुक्तं-" जं जह सुत्ते भणियं, तहेव जइ तं वियालणा नत्थि ॥ किं कालियाणुओगो, दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ॥१॥" [यद्यथा सूत्रे भणितं, तथैव यदि तद् विचारणा नास्ति ॥ किं कालिकानुयोगो, दृष्टो दृष्टिप्रधानैः] ॥ इति, इदमेवात्र प्रतिविधानमुपाददे भाष्यकारः-"सुत्ताभिप्पाओऽयं, पयासणिज्जे तयं न उ पयासे ॥ वक्खाणओ विसेसो, न हि संदेहादलक्खणआ ॥३४७॥"[सूत्राभिप्रायोऽयं. प्रकाशनीये तन्न तु प्रकाशे ॥ व्याख्यानतो विशेषो, नहि सन्देहादलक्षणता ॥] इति । श्रोत्रं मेघगर्जितादिशब्दमुत्कृष्टतो द्वादशयोजनेभ्यः समायातं गृह्णाति, घ्राणरसस्पर्शनानीन्द्रियाणि तु गन्धरसस्पर्शलक्षणमर्थमुत्कर्षतो नवयोजनेभ्यः प्राप्तं गृह्णन्ति, अतः परतोऽप्यायातं शब्दादिकमेतानि न गृह्णन्ति, यथा प्रथमप्रावृषि मेघगर्जितादिविषयश्शब्दः प्रथममेघवृष्टौ सत्यां मृत्तिकादिगन्धश्च दूरादप्यागतो गृह्यमाणः समनुभूयते तथैव दूरादागतानां गन्धद्रव्याणां रसोऽपि रसनया सम्बन्धे सति केनाचिद् गृह्यत एव, अत एव कटुकस्य तीक्ष्णादेर्वा वस्तुनः सम्बन्धी अयं गन्ध इति वक्तारो भवन्ति, दूरादपि सरित्समुद्रादेर्मध्येनायातस्य वातादेः स्पर्शोऽपि शीतादिरनुभूयत एव, तदाह भाष्यकारः-" बारसहिंतो सोत्तं, सेसाइं नवहिं जोयणेहिंतो ॥ गिण्हंति पत्तमत्थं, एत्तो परओ न गिण्हंति ॥३४८॥ "

(योजितः पाठः) सूत्राभिप्रायोपवर्णनेनोक्ताशङ्काप्रतिक्षेपः, प्रविभज्य श्रोत्रादिविषयपरिमाणप्रदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[द्वादशभ्यः श्रोत्रं, शेषाणि नवभ्यो योजनेभ्यः। गृहृन्ति प्राप्तमर्थ–मितः परतो न गृहृन्ति ॥] इति॥ द्वादश–नवयोजनेभ्यः परतः समागतानि शब्दगन्धादिद्रव्याणि मन्दपरिणामभावेन स्वस्वज्ञानानुकूलपरिणामानासादनतो न श्रोत्रघ्राणादिविज्ञानं जनयन्ति श्रोत्रादीन्द्रियाण्यपि तथाविधसामर्थ्याभावान्न परतः समागतानि शब्दादिद्रव्याणि गृहीत्वा स्वविज्ञानं जनयन्ति, तदिदं विषयपरिमाणमुत्कृष्टत इन्द्रियाणां ज्ञेयं, जघन्येन तु नयनभिन्नेन्द्रियाणां असङ्ख्याततमादङ्गुलासंख्येयभागादागतो विषयो ग्रहणगोचरः, तदुक्तं भाष्यकृता " दव्वाण मंदपरिणा–मयाए परओ न इंदियबलंपि ॥ अवरमसंखेज्जंगुल–भागाओ नयणवज्जाणं ॥ ३४९ ॥ " [द्रव्याणां मन्दपरिणामतया, परतो नेन्द्रियबलमपि ॥ अपरमसंख्येयांगुल–भागाद् नयनवर्जानाम् ॥]

नयनस्य त्वतिसन्निकृष्टाञ्जनशलाकादेरग्राहकस्य जघन्येनाङ्गुलसङ्ख्येयभागाद्विषयपरिमाणनियमः, मनसस्तु मूर्तामूर्तसमस्तविषयकस्यानियमेन दूरे आसन्ने च प्रवर्तमानस्य पुद्गलमात्रनिबन्धनियतत्वाभावात्केवलज्ञानवन्नास्त्येव विषयपरिमाणम्, पुद्गलमात्रनिबन्धानियतश्रोत्रादीन्द्रियप्रभवयोर्मतिश्रुतज्ञानयोरपि विषयपरिमाणस्य सद्भावान्न ताभ्यां व्यभिचार इति बोध्यम्, तदुक्तं भाष्यकृता " संखेज्जइभागाओ, नयणस्स, मणस्स न विसयपमाणं ॥ पोग्गलमित्तनिबन्धा–भावाओ केवलस्सेव ॥ ३५० ॥" [संख्येयभागतो नयनस्य, मनसो न विषयप्रमाणम् ॥ पुद्गलमात्रनिबन्धा–ऽभावात्केवलस्येव॥] इति, श्रोत्रस्य प्राप्तकारित्वेऽयमपि विशेषो ज्ञेयः, यदुत, भाषकस्यान्यस्य वा भेर्यादेः समश्रेणिव्यवस्थितः श्रोता भाषकभेर्यादिसम्बन्धिनं भाषकोत्सृष्टशब्दद्रव्याणि तद्वासिताऽपान्तरालस्थद्रव्याणि चेत्येवं मिश्रं शब्दद्रव्यराशिं शृणोति न तु वासकं वास्यमेव वा केवलम्, विश्रेणिव्यवस्थितः श्रोता तु भाषकोत्सृष्टशब्दद्रव्यैः भेर्यादिशब्दद्रव्यैर्वा वासितानि समुत्पन्नशब्दपरिणामानि द्रव्याण्येव शृणोति, न तु भाषकाद्यु-

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः ॥ श्रोत्रादीन्द्रियविषय परिमाणमुत्कृष्टतो विभागेनोपदर्श्य जघन्येन तदुपदर्शितं नयनस्य तत्र विशेषः, मनसः विषयपरिमाणाऽनियमः श्रोत्रे विशेषान्तरञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्स्पृष्टानि, तेषामनुश्रेणिगामित्वेन विदिग्गमनासम्भवात्, कुड्यादिप्रतिघाततोऽपि न तेषां विदिक्षु गमनमतिसूक्ष्मत्वात्, लेष्ट्वादिबादरद्रव्याणामेव ततो विदिक्षु गमनात्, निसर्गसमयानन्तरञ्च समयान्तरेषु तेषां भाषापरिणामेनानवस्थानादेव न स्वतो विदिक्षु गमनसम्भवः "भाष्यमाणैव भाषा भाषा, भाषासमयानन्तरं भाषाऽभाषैव" इतिवचनात्, द्वितीयादिसमयेषु भाषाद्रव्यैर्वासितानि समुत्पन्नशब्दपरिणामानि द्रव्यान्तराण्येव भाषा तामुपादायैव " चउहिं समयेहिं लोगो भासाए निरंतरं तु होइ फुडो " इति वचनप्रवृत्तिरविरुद्धा, समश्रेणिव्यवस्थितः श्रोता वक्तृनिसृष्टं शब्दं शृणोति, विश्रेणिस्थः तद्वासितानि द्रव्याणि द्वितीयसमये विदिक्षु गतानि शब्दस्वभावमापन्नानि शृणोतीत्येवं समयभेदेऽपि तदनुपलक्षणमतिसौक्ष्म्यात् । घ्राणादीन्द्रियग्राह्याणां मिश्रस्वभावानां गन्धादिद्रव्याणां बादरत्वेनानुश्रेणिगमननियमो नास्तीति, तदुक्तं निर्युक्तिकृता "भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणइ ॥ वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ३५१ ॥" इति, भासासमसेढीओ इति गाथार्थोपोद्वलकं भाष्यगाथात्रयं यथा 'सेढी पएसपंती, वदतो सव्वस्स छद्दिसिं ताओ ॥ जासु विमुक्का धावइ, भासा समयम्मि पढमम्मि ॥ ३५२ ॥ भासासमसेढिठिओ, तब्भासामीसियं सुणइ सद्दं ॥ तद्दव्वभावियाइं, अण्णाइं सुणइ विदिसत्थो ॥ ३५३ ॥ अणुसेढीगमणाओ, पडिघायाभावओऽनिमित्ताओ ॥ समयंतराणवत्था-णओ य मुक्काइं न सुणेइ ॥३५४॥ " [भाषासमश्रेणीतः, शब्दं यं शृणोति मिश्रकं शृणोति । विश्रेणिः पुनः शब्दं, शृणोति नियमात्पराघाते ॥ श्रेणिः प्रदेशपंक्तिर्वदतः सर्वस्य षट्सु दिक्षु ताः॥ यासु विमुक्तो धावति भाषासमये प्रथमस्मिन् ॥ भाषासमश्रेणिस्थितस्तद्भाषामिश्रितं शृणोति शब्दम् ॥ तद्द्रव्यभावितान्यन्यानि, शृणोति विदिक्स्थः ॥ अनुश्रेणिगमनात्प्रतिघाताभावादनिमित्तात् ॥ समयान्तरानवस्थानाच्च मुक्तानि न शृणोति ॥] ॥ इति ॥ व्यक्तार्थमदः ॥

(योजितः पाठः) श्रोत्रविषयशब्दतो घ्राणादिग्राह्यगन्धादीनामनुश्रेणिगमननियमाभावो विशेष उपपादितः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाग्द्रव्याणामादानोत्सर्गावेवम्, सर्व एव वक्ता कायिकेन योगेन शब्दद्रव्याणि गृह्णाति वाचिकेन च योगेन निसृजति, प्रतिसमयं गृह्णाति मुञ्चति चेति, उक्तं च निर्युक्तिकृता "गिण्हइ य काइएणं, निसिरइ तह वाइएण जोएणं॥ एगंतरं च गिण्हइ, निसिरइ एगंतरं चेव ॥ ३५५ ॥" इति, विवेचिता चेयं गाथात्रयेण भाष्यकृता, तद्यथा—"गिण्हिज्ज काइएणं, किह निसिरइ वाइएण जोएणं ॥ को वाऽयं वइजोगो, किं वाया, कायसंरंभो ? ॥३५६॥ वाया न जीवजोगो, पोग्गलपरिणामओ रसाइव्व॥ न य ताए निसिरिज्जइ, स च्चिय निसिरिज्जए जम्हा॥३५७॥अह सो तणुसंरंभो, निसिरइ तो काइएण वत्तव्वं॥तणुजोगविसेस च्चिय, मण—वइजोगत्ति जमदोसो ॥३५८॥"[गृह्णाति च कायिकेन, निसृजति तथा वाचिकेन योगेन ॥ एकान्तरं च गृह्णाति निसृजत्ये—कान्तरमेव ॥ गृह्णीयात्कायिकेन कथं निसृजति वाचिकेन योगेन ॥ को वाऽयं वाग्योगः किं वाग्वा कायसंरम्भः ॥ वाग् न जीवयोगः, पुद्गलपरिणामतो रसादिरिव ॥न च तया निसृज्यते, सैव निसृज्यते यस्मात्॥ अथ स तनुसंरम्भो, निसृजति ततः कायिकेन वक्तव्यम् । तनुयोगविशेषावेव मनोवाग्योगाविति यददोषः] अत्र सार्धगाथाद्वयं परप्रश्नरूपं तदनन्तरमुत्तरम्, अत्र चेत्थं बृहद्वृत्तिः—"अत्र परः प्राह—ननु 'गिण्हइ य काइएणं' इति यदुक्तं तन्मन्यामहे, यतो गृह्णीयात् कायिकेन योगेन वाग्द्रव्याणि भाषकः, नेदमयुक्तं कायव्यापारमन्तरेण तद्ग्रहणायोगात्, यत्पुनरुक्तं 'निसिरइ तह वाइएण जोएणं' इति तदेतन्नावगच्छामः, यतः कथं नाम निसृजति वाचिकेन योगेन, गृह्यमाणाया वाचो जीवव्यापाररूपयोगाभावान्नैतद् घटत इत्यर्थः, इति संक्षेपेणोक्त्वा विस्तराभिधित्सया प्राह—को वाऽयमित्यादि, वेत्यथवा, किमनेन संक्षेपेण, विस्तरेणापि पृच्छामः, कोऽयं नाम वाग्योगः, येन निसृजतीत्युक्तं, किं वायत्ति वागेव निसृज्यमाना भाषापुद्गलसमूहरूपो वाग्योगः १, किं वा कायसंरम्भः कायव्यापारस्त-

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः ॥ मतिज्ञाननिरूपणप्रसङ्गे इन्द्रियविषयमाननिरूपणं तत्र च शब्दद्रव्यादानोत्सर्गप्रक्रियोपवर्णनम्॥ ॥ ७६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न्निसर्गहेतुर्वाग्योगः २, इति विकल्पद्वयम्, तत्र प्रथमविकल्पपक्षं निराकुर्वन्नाह–' वाया न जीवजोगो ' इत्यादि, योगोऽत्र शरीरजीवव्यापारः प्रस्तुतः, स च वाग् न भवति, पुद्गलपरिणामत्वात्तस्याः, रसगन्धादिवत्, यस्तु जीवव्यापाररूपो योगः स पुद्गलपरिणामोऽपि न भवति, यथा जीवाधिष्ठितकायव्यापारः, अपि च ' न य ताएत्ति ' न च तया वाचा किञ्चिन्निसृज्यते, तस्या एव निसृज्यमानत्वात्, न च कर्मैव करणं भवति, अतो वागेव वाग्योग इति प्रथमविकल्पो न घटते, अथ द्वितीयमधिकृत्याह–' अहेत्यादि ' अथासौ वाग्योगस्तनुसंरम्भः कायव्यापारः, ततः कायिकेन निसृजति इत्येवमेव वक्तव्यं स्यात्, अतः किमुक्तं ' निसिरइ तह वाइएण जोएणं ' इति, अत्रोत्तरमाह ' तणुजोग ' इत्यादि, ननु द्वितीयविकल्प एवात्राङ्गीक्रियते, केवलमविशिष्टः काययोगो वाग्योगतया नास्माभिरिष्यते, किन्तु तनुयोगविशेषावेव कायव्यापारविशेषावेव मनोवाग्योगाविष्येते, यद् यस्मात्, ततोऽयमदोषः, न हि कायिको योगः कस्याञ्चिदप्यवस्थायां शरीरिणां जन्तूनां निवर्तते, अशरीरिणां सिद्धानामेव तन्निवृत्तेरिति, अतो वाग्निसर्गादिकालेऽपि सोऽस्त्येवेति भावः ॥ ३५६, ३५७, ३५८ ॥ परमार्थतस्सर्वत्र कायिकस्य योगस्य सद्भावेऽप्युपाधिभेदाद्योगत्रयविभजनं नानुपपन्नं, तथाहि, येन संरम्भेण मनोवाग्द्रव्याणामुपादानं करोति स कायिको योगः, येन तु संरम्भेण वाग्द्रव्याणि मुञ्चति स वाग्योगः, येन च मनोद्रव्याणि चिन्तायां व्यापारयति स मानसिको योग इत्येवमुपाधिभेदात्त्रिधा विभक्तः कायिको योगः,तदाह भाष्यकृत् "किं पुण तणुसंरम्भेण,जेण मुंचइ स वाइओ जोगो।।मण्णइ य स माणसिओ, तणुजोगो चेव य विभत्तो।।३५९।।" [किं पुनस्तनुसंरम्येण, येन मुञ्चति स वाचिको योगः। मन्यते च स मानसिक–स्तनुयोग एव च विभक्तः ॥] इति,अनुमानाच्च मनोवाग्योगोभयस्य तनुयोगरूपत्वं,प्रयोगश्च,मनोवाग्योगौ काययोगस्वरूपौ,कायेनैव तद्द्रव्यग्रहणात्

(योजितः पाठः) मतिज्ञानप्रसङ्गे इन्द्रियविषयप्ररूपणप्रस्तावे वाग्योगमनोयोगयोस्तत्त्वनिर्णवः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राणापानवदिति, न च दृष्टान्तासिद्धिः, प्राणापानव्यापारस्य तनुयोगत्वाभावे योगचतुष्टयप्रसङ्गात्, तदिदमाह भाष्यकृत् "तणुजोगो च्चिय मण–वइ–जोगा काएण दव्वगहणाओ ॥ आणापाणव्व न चे, तओ वि जोगंतरं होज्जा ॥३६०॥" [तनुयोग एव मनोवाग्योगौ कायिकेन द्रव्यग्रहणात् । आनप्राणवद् न चेत्सोऽपि योगान्तरं स्यात् ॥] इति, तुल्येऽपि तनुयोगत्वे प्राणापानयोगस्य न पृथग्ग्रहणं मनोवाग्योगयोश्च पृथग्ग्रहणमित्यत्र लोकलोकोत्तररूढतया व्यवहारप्रसिद्धिरेव नियामकं, लोके लोकोत्तरे च कायिकवाचिकमानसिकयोगानामेव त्रयाणां व्यवहारो न प्राणापानयोगस्य, तदिदमुक्तं भाष्यकृता "तुल्ले तणुजोगत्ते, कीस व जोगंतरं तओ न कओ ॥ मण–वइजोगा व कया, भण्णइ ववहारसिद्धत्थं ॥३६१॥" [तुल्ये तनुयोगत्वे कस्माद्वा योगान्तरं स न कृतः ॥ मनोवाग्योगौ वा कृतौ? भण्यते व्यवहारसिद्ध्यर्थम् ॥] इति, कायक्रियातिरिक्तं स्वाध्यायविधान–परप्रत्यायनादिकं वाचः, धर्मध्यानादिकं मनसश्च विशिष्टं स्फुटं फलं यथोपलभ्यते नैवं प्राणापानयोरित्यस्मात् कारणात्प्राणापानयोगस्य न पृथग्व्यवहारः, किन्तु मनोवाग्योगयोरेव, जीवत्यसाविति प्रतीतिजननादिलक्षणं फलञ्च प्राणापानयोगस्य न पृथग्योगत्वप्रयोजकं, तथा सति धावति वल्गतीत्यादिप्रतीतिफलजननाद्धावनवल्गनादिव्यापारस्यापि पृथग्योगत्वं प्रसज्येतेति, तदाह भाष्यकारः " कायकिरियाइरित्तं, नाऽऽणापाणफलं जह वईए ॥ दीसइ मणसो य फुडं, तणुजोगब्भंतरो तो सो ॥३६२॥" [कायक्रियाव्यतिरिक्तं, नाऽऽनप्राणफलं यथा वाचः । दृश्यते मनसश्च स्फुटं तनुयोगाभ्यन्तरस्ततः सः ॥] इति, तनुयोगान्तर्गतत्वेऽपि वाग्योगमनोयोगयोरुपाधिभेदेन पृथगभिधानमित्येकः पक्षो व्यावर्णितः, अस्ति चात्र स्वतन्त्रावेव वाग्योगमनोयोगाविति तयोः पार्थक्येन विभजनमिति द्वितीयोऽपि पक्षः । स चैवं–कायव्यापारगृहीतेन वाग्द्रव्यसमूहेन सहकारिणा वाग्निसर्गार्थं जीवस्य व्यापारो वाग्योगः, कायव्या-

(योजितः पाठः) तृतीयस्तरङ्गः ॥ वाग्योगमनोयोगयोस्तनुयोगत्वेऽपि पृथग्ग्रहणं न प्राणापानयोगस्य तथात्वमित्यत्र युक्तिरुपदर्शिता ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पारगृहीतेन मनोद्रव्यसमूहेन सहकारिणा वस्तुचिन्तनाय जीवस्य व्यापारो मनोयोगः, प्रथमेन परप्रत्यायनं द्वितीयेन जिनमूर्त्यादिचिन्तनमित्येवं स्वतन्त्रावेव तौ, यद्यपि प्राणापानद्रव्यसाचिव्यात्तन्मोचने जीवव्यापारः प्राणापानयोग इति सोऽपि स्वातन्त्र्येण पृथग् व्यपदेष्टुं शक्यस्तथापि लोकलोकोत्तररूढव्यवहारसिद्ध्यर्थं तयोरेव पार्थक्येनाभिधानं न तु स्वतन्त्रस्यापि प्राणापानयोगस्येति बोध्यम्, अत्रार्थे गाथाद्वयं भाष्यस्य यथा–" अहवा तणुजोगाहिअ–वइदव्वसमूहजीववावारो ॥सो वइजोगो भण्णइ, वाया निसिरिज्जए तेणं ॥३६३॥ तह तणुवावाराहिअ–मणदव्वसमूहजीववावारो ॥सो मणजोगो भण्णइ,मण्णइ नेयं जओ तेणं ॥३६४॥"[अथवा तनुयोगाहृत–वाग्द्रव्यसमूहजीवव्यापारः ॥स वाग्योगो भण्यते वाग् निसृज्यते तेन ॥ तथा तनुव्यापाराहृतमनोद्रव्यसमूहजीवव्यापारः ॥ स मनोयोगो भण्यते, मन्यते ज्ञेयं यतस्तेन ॥] इति, प्रतिसमयं गृह्णाति मुञ्चतीत्येवमेकान्तरं गृह्णाति मुञ्चतीत्येतत्स्वरूपं प्रागुक्तं तत्कथमित्यपेक्षायामुच्यते, यथैकस्माद् ग्रामादन्योऽनन्तरितोऽपि लोकरूढ्या ग्रामान्तरमुच्यते, पुरुषाद्वाऽन्यः पुरुषोऽनन्तरोऽपि पुरुषान्तरमभिधीयते तथेहापि एकस्मात्समयादन्यः समयोऽनन्तरोपि समयान्तरमुच्यते तेनानुसमयमेव गृह्णाति मुञ्चति चेति सिद्धं भवति, तदुक्तं भाष्यकृता–" जह गामाओ गामो, गामंतरमेवमेग एगाओ ॥ एगंतरंति भण्णइ, समयादणंतरो समओ ॥ ३६५ ॥ " [यथा ग्रामाद् ग्रामः, ग्रामान्तरमेवमेक एकस्मात् ॥ एकान्तरमिति भण्यते,, समयादनन्तरः समयः ॥] इति, ये तु मन्यन्ते ग्रहणं विसर्जनं च शब्दद्रव्याणामेकैकेन समयेनान्तरितमित्येकान्तरमिति, तेषामेवम्मननं न युक्तं तथा सति अन्तराऽन्तरा विच्छिन्नरत्नावलीरूपो ध्वनिः स्यात्, एवञ्चाविच्छेदेन शब्दग्रहणानुपपत्तिप्रसङ्गः, प्रतिसमयग्रहणप्रतिपादकत्वेन प्रतिसमयनिसर्गप्रतिपत्तितात्पर्यकस्य " अणुसमयमविरहिअं निरंतरं

(योजितः पाठः) स्वतन्त्रत्वादेव वाग्योगमनोयोगयोः पार्थक्येन विभजनं न तु प्राणापानयोगस्येतिविचारः प्रतिसमयं गृह्णाति मुञ्चतीत्येतद्विचारश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गिण्हइ ” इति सूत्रस्य विरोधश्च, तदाह भाष्यकारः–“ केई एगंतरियं, मण्णन्तेगंतरं ति तेसिं च ॥ विच्छिन्नावलिरूवो,होइ धणी, सुयविरोहो य ॥३६६॥”[केचिदेकान्तरितं मन्यन्ते, एकान्तरमिति तेषां च ॥ विच्छिन्नावलीरूपो, भवति ध्वनिः श्रुतविरोधश्च ॥] इति, ननु “संतरं निसिरइ नो निरंतरं निसिरइ, एगेणं समएणं गिण्हइ, एगेणं समएणं निसिरइ” इत्यादि प्रज्ञापनोक्तसूत्रमस्मत्पक्षसमर्थकमपि समस्तीति तत्कथमुच्यते अनुसमयं गृह्णाति मुञ्चति चेति चेत्, उच्यते, अनुसमयग्रहणेऽनुसमयानिसर्गोऽपि युक्त एव गृहीतस्यावश्यमेवानन्तरसमये निसर्गात्, न चैवं ‘संतरं निसिरइ’ इत्यस्यासङ्गतता, विषयविभागेन तदुपपत्तेः, निसर्गो हि ग्रहणमपेक्ष्य भवति, यस्मिन् प्रथमादिसमये यानि भाषाद्रव्याणि गृहीतानि न तानि तस्मिन्नेव ग्रहणसमये नैरन्तर्येण निसृजति, किन्तु ग्रहणसमयादनन्तरसमये निसृजति,यथा प्रथमसमयगृहीतानां न तस्मिन्नेव समये निसर्गः,किन्तु द्वितीयसमय एव, एवं द्वितीयसमयगृहीतानां तृतीयसमये, तृतीयसमयगृहीतानां चतुर्थसमये इत्यादि, तदेवं ग्रहणापेक्षया निसर्गः सान्तर एव, द्वितीयादिषु सर्वेष्वपि समयेषु निरन्तरं तद्भावात्समयापेक्षया तु निसर्गो निरन्तर एव,नागृहीतं कदापि निसृज्यत इति नियमाद् ग्रहणपरतन्त्रतया निसर्गस्येति ‘संतरं तेणं ति’ प्रज्ञापनायां ग्रहणान्तरितत्वेन निसर्जनं सान्तरमुक्तं, नानिसृष्टं गृह्यत इति नियमस्य तु प्रथमसमये निसर्गमन्तरेणापि ग्रहणसद्भावतोऽभावेन स्वतन्त्रं ग्रहणमिति विषयविभागेन “संतरं निसिरइ” इत्युपपद्यते, ‘ न निरंतरं ’ इत्यपि निरन्तरशब्दस्य समशब्दपर्यायत्वेन न ग्रहणसमकालं निसृजति किं तु पूर्वं पूर्वं गृहीतमुत्तरोत्तरसमयेषु निसृजतीत्येवंपरतयोपपद्यते “ एगेणं समयेणं गिण्हइ, एगेणं समयेणं निसिरइ ” इत्यपि आद्येनैकेन समयेन गृह्णात्येव न निसृजति, द्वितीयादिसमयादारभ्यैव निसर्गस्य भावाद्, पर्यन्तवर्तिना त्वेकेन समयेन निसृजत्येव न तु गृह्णाति भाषाभिप्रायोपरमादित्येवं परतया एकेन पूर्वपूर्वसमयेन

(योजितः पाठः)
॥ तृतीयः तरङ्गः ॥
अनुसमयं गृह्णाति मुञ्चति चेति सिद्धान्ते प्रज्ञापनापाठविरोधापत्तिपरिहारेण तत्त्वोपपादनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गृह्णाति, एकेनोत्तरोत्तरसमयेन निसृजतीत्येवम्परतया वोपपद्यत इति, तमिममर्थं प्रतिपादयति भाष्यगाथाचतुष्टयं यथा– "आह, सुए च्चिय निसिरइ, संतरियं न उ निरंतरं भणियं ॥ एगेण जओ गिण्हइ, समयेणेगेण सो मुयइ ॥३६७॥ अणुसमयमणंतरियं, गहणं भणियं जओ विमुक्खो वि ॥ जुत्तो निरंतरो च्चिय, भणइ, कह संतरो भणिओ ॥३६८॥ गहणावेक्खाए तओ, निरंतरं जम्मि जाइं गहियाइं ॥न वि तम्मि चेव निसिरइ, जह पढमे निसिरणं नत्थि ॥३६९॥ निसिरिज्जइ नागहियं, गहणंतरियंति संतरं तेणं ॥ न निरंतरंति न समयं, न जुगवमिह होंति पज्जाया ॥ ३७० ॥" [आह, श्रुत एव निसृजति, सान्तरितं न तु निरन्तरं भणितम् ॥ एकेन यतो गृह्णाति, समयेनैकेन स मुञ्चति ॥ अनुसमयमनन्तरितं, ग्रहणं भणितं यतो विमोक्षोऽपि ॥ युक्तो निरन्तर एव, भणति कथं सान्तरो भणितः ? ॥ ग्रहणापेक्षया तको, निरन्तरं यस्मिन्यानि गृहीतानि ॥ नापि तस्मिन्नेव निसृजति, यथा प्रथमे निसर्जनं नास्ति ॥ निसृज्यते नाऽगृहीतं, ग्रहणान्तरितमिति सान्तरं तेन ॥ न निरन्तरमिति न समयं, न युगपदिह भवन्ति पर्यायाः ॥]इति, ग्रहणादेर्जघन्यमुत्कृष्टञ्च कालमानमेवं प्रतिपत्तव्यं, तथाहि–ग्रहणनिसर्गभाषा इत्येवं त्रीण्यपि प्रत्येकं जघन्यत एकसमयानि भवन्ति, ग्रहणनिसर्गोभयन्तु प्रथमसमये ग्रहणं द्वितीयसमये निसर्ग इति कृत्वा द्विसमयम्, निसर्गादभेदेऽपि भाषाया भाष्यमाणैव भाषा न तु गृह्यमाणेति निसर्गस्यैव भाषात्वं न तु ग्रहणनिसर्गोभयस्येत्येतत्प्रतिपत्तये पृथगभिधानं, उभयस्य भाषात्वे द्विसमयत्वापत्तिः, ग्रहणस्य तु भाषाव्युत्पत्तिनिमित्ताभावादेव न भाषात्वं, भाषायाः पृथगग्रहणे तु कश्चित्तदुभयस्यापि योग्यतया भाषात्वं प्रतिपद्येत, तत्र 'भासिज्जमाणा भासा' इत्यागमविरोधः, निसर्गभाषयोरभेदेऽपि मन्दधियः निसर्गकालमानानुक्तिभ्रमोन्मूलनार्थं निसर्गस्यापि पृथग्वचनम्, सर्वाण्यप्येतानि उत्कृष्टतः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकालं

(योजितः पाठः) अनुसमयं गृह्णाति मुञ्चतीत्येतत्संवादकं भाष्यवचनं ग्रहणादेर्जघन्यमुत्कृष्टञ्च कालमानमुपपादितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भवन्ति, अन्तर्मुहूर्तमपि महाप्रयत्नस्य लघु भवति अल्पप्रयत्नस्य तु बृहत्प्रमाणं भवतीति, उक्तार्थसंवादिन्यौ भाष्यस्येमे गाथे– " गहणं मोक्खो भासा, समयं गह–निसिरणं च दो समया ॥ होंति जहण्णंतरओ, तं तस्स च बीयसमयम्मि ॥ ३७१ ॥ गहणं मोक्खो भासा, गहणविसग्गा य होंति उक्कोसं ॥ अंतोमुहुत्तमेत्तं, पयत्तभेएण भेयो सिं ॥३७९॥" [ग्रहणं मोक्षो भाषा समयं, ग्रह–निसर्जनं च द्वौ समयौ ॥ भवन्ति जघन्यान्तरतस्तत् तस्य द्वितीयसमये ॥ ग्रहणं मोक्षो भाषा ग्रहणविसर्गौ च भवन्त्युत्कर्षतः ॥ अन्तर्मुहूर्तमात्रं प्रयत्नभेदेन भेद एषाम् ॥] इति, प्रथमसमये ग्रहणमेव चरमसमये निसर्ग एव, मध्यसमये तु द्वावपि भवतः, एकस्मिन् समये कथं तदुभयं विरोधादिति नाशङ्कनीयम्, यस्यैव यस्मिन् समये ग्रहणं तस्यैव तस्मिन्नेव समये निसर्ग इत्युपगमे स्याद्विरोधः, न चैवमुपगमः, किन्तु प्रथमसमये यस्य ग्रहणं तस्य द्वितीयसमये निसर्गोऽन्यस्य च तदानीं ग्रहणमित्येवमुत्तरोत्तरसमयेऽभ्युपगमे विषयभेदेन विरोधाभावात्, एकस्मिन् समये उपयोगद्वयस्यैवासम्भवो न तु क्रियाद्वयस्य " जुगवं दो नत्थि उवओगा " इतिवचनादागमे उपयोगद्वयस्यैव यौगपद्यनिषेधो न तु क्रियाद्वयस्य, "भंगियसुयं गणंतो, वट्टइ तिविहे वि ज्झाणम्मि " इत्यादिवचनेन वाङ्मनःकायक्रियाणामेकत्र समये प्रवृत्तिरभ्युपगतैव, अङ्गुल्यादिसंयोगविभागक्रिययोः, संघातपरिसाटक्रिययोः, उत्पादव्ययक्रिययोश्चैकत्र समयेऽनेकस्थानेष्वागमेऽनुज्ञा विहितैव, तथाऽध्यक्षतोऽपि जिनप्रतिमामर्चयतः पुंसः एकस्मिन् समये करणभेदेन घण्टिकाचलनधूपदानप्रतिमादिवीक्षणस्तुतिपठनादीनां बह्वीनामपि क्रियाणां युगपत् प्रवृत्तिर्दृश्यत इति ॥ तदाह भाष्यकारः " गहणविसग्गपयत्ता, परोप्परविरोहिणो कहं समए ॥ समए दो उवओगा, न होज्ज, किरियाण को दोसो ॥ ३७३ ॥ " [ग्रहणविसर्गप्रयत्नौ, परस्परविरोधिनौ कथं समये ? ॥ समये द्वावुपयोगौ न भवेतां क्रियाणां को दोषः]

(योजितः पाठः) ग्रहणादेर्जघन्योत्कृष्टकालमानोपदर्शने भाष्यसंवादः एकसमये क्रियायौगपद्याविरोधे भाष्यसंवादश्च

For Private And Personal Use Only

इति, कायिकेन योगेन भाषापरिणमनयोग्यानि द्रव्याणि प्रथमसमये गृह्णातीति सामान्येनोपदर्शितं परमत्र औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणभेदेन पञ्चविधेषु कायेषु औदारिकवैक्रियाहारकशरीरेषु जीवप्रदेशाः भवन्ति नान्यत्र, तैर्जीवप्रदेशैर्जीवाभिन्नैर्भाषणाभिप्रायादिसामग्रीपरिणामे सति भाषापर्याप्तिमान् भाषको वाग्द्रव्यनिकुरम्बं गृहीत्वा सत्यां सत्यामृषां मृषां असत्यामृषां चेत्यन्यतमां भाषां भाषते निसृजति, तथा चौदारिकशरीरवान् वैक्रियशरीरवान् आहारकशरीरवान् वा जीवो गृह्णाति मुञ्चति चेति पर्यवसितम्, तदुक्तं निर्युक्तिकृता "तिविहम्मि सरीरम्मि, जीव-पएसा हवंति जीवस्स ॥ जेहि उ गेण्हइ गहणं, तो भासइ भासओ भासं ॥३७४॥ ओरालिय वेउव्विय-आहारओ गेण्हइ मुयइ भासं ॥ सच्चं सच्चामोसं, मोसं च असच्चमोसं च ॥३७५॥" [त्रिविधे शरीरे जीव-प्रदेशा भवन्ति जीवस्य ॥ यैस्तु गृह्णाति ग्रहणं, ततो भाषते भाषको भाषाम्॥ औदारिको वैक्रियआहारकः गृह्णाति मुञ्चति भाषाम्। सत्यां सत्यामृषां मृषां चासत्यामृषां च ॥] इति, तत्र सद्भ्यः साधुभ्यो मुनिभ्यो हिता इहपरलोकाराधकत्वेन मुक्तिप्रापिका अथवा सद्भ्यो मूलोत्तरगुणरूपेभ्यो गुणेभ्यो जीवादिपदार्थेभ्यो वाऽविपरीतयथावस्थितस्वरूपप्ररूपणेन हिता सत्या भाषा १, विपरीतस्वरूपा तु मृषाभाषा २, तदुभयस्वभावा सत्यामृषा ३, या तूक्तत्रितयलक्षणानन्तर्भाविनी आमन्त्रणाज्ञापनादिविषयो व्यवहारपतितः शब्द एव केवलः साऽसत्यामृषा ४, एताश्चतस्रोऽपि भाषाः सभेदलक्षणोदाहरणा दशवैकालिकनिर्युक्त्यादिकसूत्रतोऽवसेयाः, तथा चाह भाष्यकारः "सच्चा हिता सयामिह, संतो मुणओ गुणा पयत्था वा ॥ तव्विवरीआ मोसा, मीसा जा तदुभयसहावा ॥ ३७६ ॥ अणहिगया जा तीसु वि, सद्दो च्चिय केवलो असच्चमुसा ॥ एया सभेयलक्खण-सोदाहरणा जहा सुत्ते॥३७७॥"[सत्या हिता सतामिह, सन्तो मुनयो गुणाः पदार्था वा॥ तद्विपरीता मृषा, मिश्रा या तदुभयस्वभावा ॥ अनधि-

(योजितः पाठः) औदारिकवैक्रियाहारकान्यतमशरीरवान् भाषकः सत्यादिचतुर्भेदान्यतमभाषां गृह्णाति मुञ्चतीत्यत्र निर्युक्तिगाथासंवादः सत्यादिनिरुक्तौ भाष्यसंवादश्च ॥

कृता या तिसृष्वपि शब्द एव केवलोऽसत्यमृषा ॥ एताः सभेदलक्षण–सोदाहरणा यथा सूत्रे ॥] इति, औदारिकादिशरीरवता जीवेन मुक्ता भाषा समस्तमपि लोकं व्याप्नोति, तेन द्वादशभ्योऽपि योजनेभ्यः परतो गतिरस्त्येव शब्दद्रव्याणां, यथा स्वविषयद्वादशयोजनाभ्यन्तरे नैरन्तर्येण तद्वासनासामर्थ्यं, तथा बहिरपि केषाञ्चिच्छब्दद्रव्याणां कृत्स्नलोकव्याप्तानां,चतुर्दशरज्वात्मकः क्षेत्रलोकश्चतुर्भिस्समयैः कस्यचित्सम्बन्धिन्या भाषया पूर्यते, लोकस्य पर्यन्तवर्त्यसङ्ख्येयभागे च समस्तलोकव्यापिन्या भाषाया अपि चरमान्तोऽसंख्येयभागो भवति, तदिदमाह शङ्कासमाधानाभ्यां निर्युक्तिकारः–"कईहिं समएहिं लोगो, भासाए निरंतरं तु होइ फुडो । लोगस्स य कइभाए, कइभाओ होइ भासाए ॥३७८॥ चउहिं समयेहिं लोगो, भासाए निरंतरं तु होइ फुडो । लोगस्स य चरिमंते, चरिमंतो होइ भासाए ॥३७९॥"[कतिभिः समयैर्लोको भाषया निरन्तरं तु भवति स्फुटः, ॥ लोकस्य च कतिभागे कतिभागो भवति भाषायाः॥ चतुर्भिः समयैर्लोको,भाषया निरन्तरं तु भवति स्फुटः॥ लोकस्य च चरमान्ते चरमान्तो भवति भाषायाः] इति, सर्वस्यापि वक्तुर्भाषा न लोकं व्याप्नोति किन्तु कस्यचिदेव, तथा हि–वक्ता द्विविधस्तत्रैकः उरःक्षताद्युपेतत्वेन मन्दप्रयत्नो वक्ता सर्वाण्यपि भाषाद्रव्याण्यभिन्नानि निसृजति, अन्यस्तु नीरोगतादिगुणस्तीव्रप्रयत्नो वक्ता भाषाद्रव्याणि आदाननिसर्गप्रयत्नाभ्यां सूक्ष्मखण्डीकृत्य मुञ्चति,अनन्तभाषाद्रव्यस्कन्धाश्रयभूतक्षेत्रविशेषरूपावगाहना वर्गणा असंख्येया गत्वा ततो मन्दप्रयत्नवक्तृनिसृष्टान्यभिन्नानि भाषाद्रव्याणि भिद्यन्ते, संख्येयानि च योजनानि गत्वा ध्वंसन्ते, उक्तश्च प्रज्ञापनायां भाषापदे 'जाइं अभिन्नाइं निसिरइ, ताइं असंखेज्जाओ ओगाहणाओ गंता भेयमावज्जंति, संखिज्जाइं जोयणाइं गंता विद्धंसमागच्छंति" यानितु महाप्रयत्नो वक्ता प्रथमत एव भिन्नानि निसृजति तानि सूक्ष्मत्वात् बहुत्वाच्चानन्तगुणवृद्ध्या वर्धमानानि षट्सु दिक्षु लोकान्तमाप्नु-

(योजितः पाठः) कस्यचिद्वक्तुर्भाषा चतुर्भिस्समयैर्लोकं व्याप्नोति न सा सर्वस्य तथेत्यस्योपपादकंनिर्युक्तिवचनं तथा प्रज्ञापनावचनञ्च

॥ ८० ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वन्ति, शेषन्तु तत्पराघातवासनाविशेषाद्वासितया भाषयोत्पन्नभाषापरिणामद्रव्यसंहतिरूपया सर्वं लोकं निरन्तरमापूरयन्ति, उक्तञ्च " जाइं भिन्नाइं निसिरइ ताइं अणंतगुणपरिवड्ढीए परिवड्ढमाणाइं लोयंतं फुसन्ति" इति, तदाह भाष्यकारः-"कोई मंदपयत्तो, निसिरइ सयलाइं सव्वदव्वाइं ॥ अन्नो तिव्वपयत्तो, सो मुंचइ भिंदिउं ताइं ॥ ३८०॥ गंतुमसंखेज्जाओ, अवगाहणवग्गणा अभिन्नाइं ॥ भिज्जंति धंसंति य, संखिज्जे जोयणे गंतु ॥३८१॥ भिन्नाइं सुहुमयाए, अणंतगुणवड्ढिआइं लोगंतं ॥ पावंति पूरयंति य, भासाए निरंतरं लोगं॥३८२॥" [कोऽपि मन्दप्रयत्नो निसृजति सकलानि सर्वद्रव्याणि॥ अन्यस्तीव्रप्रयत्नः, स मुञ्चति भित्त्वा तानि॥ गत्वाऽसंख्येया अवगाहन-वर्गणा अभिन्नानि ॥ भिद्यन्ते ध्वसन्ते च संख्येयानि योजनानि गत्वा ॥ भिन्नानि सूक्ष्मतयाऽनन्तगुणवर्धितानि लोकान्तम् प्राप्नुवन्ति पूरयन्ति च, भाषया निरन्तरं लोकम्]॥ इति, दण्डं प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मन्थानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे च॥ १॥इत्यादि ग्रन्थोक्तेन केवलिसमुद्घातक्रमेण चतुर्भिः समयैः सर्वोऽपि लोको भाषाद्रव्यैरापूर्यत इति केचित्, त्रिभिः समयैः सर्वो लोकः पूर्यत इत्यन्ये, तत्रैवं क्रमः-लोकमध्यस्थितेन महाप्रयत्नभाषकेण मुक्तानि भाषाद्रव्याणि प्रथमसमय एव षट्सु दिक्षु लोकान्तमाप्नुवन्ति 'जीवसूक्ष्मपुद्गलानामनुश्रेणिगमनात्,' ततो द्वितीयसमये त एव षट् दण्डाश्चतुर्दिशमेकैकशोऽनुश्रेण्या वासितद्रव्यैः प्रसरन्तः षड् मन्थानो भवन्ति, तृतीयसमये तु मन्थान्तरैः पूरितैः पूरितो भवति सर्वोऽपि लोकः, स्वयम्भूरमणपरतटवर्तिनि लोकान्तेऽलोकस्यात्यन्तं निकटीभूय भाषमाणस्य भाषकस्य त्रसनाड्या बहिर्वा चतसृणां दिशामन्यतमस्यां दिशि भाषमाणस्य भाषकस्य चतुर्भिस्समयैर्लोकः सर्वोऽपि पूर्यते। तदुक्तं भाष्यकृता "जइणसमुग्घायगईए, केई भासंति चउहिं समएहिं॥ पूरइ सयलो लोगो, अण्णे उण तीहिं समएहिं ॥ ३८३ ॥ पढमसमए च्चिय जओ, मुक्काइं जंति छद्दिसिं ताइं ॥

(योजितः पाठः) भाषया लोकपूर्तौ भाष्यसंवादः केवलिसमुद्घातदिशा चतुर्भिस्समयैर्लोकपूरणमिति मतं तथा त्रिभिस्समयैरितिमतं तत्क्रमश्चेत्युभयत्र भाष्यसंवादः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बितियसमयम्मि ते च्चिय, छ दंडा होंति छम्मंथा ॥ ३८४ ॥ मंथंतरेहिं तईए, समये पुन्नेहिं पूरिओ लोगो ॥ चउहिं समएहिं पूरइ, लोगंते भासमाणस्स ॥ ३८५ ॥" [जैनसमुद्घातगत्या, केचिद् भाषन्ते चतुर्भिः समयैः ॥ पूर्यते सकलो लोकोऽन्ये पुनस्त्रिभिः समयैः ॥ प्रथमसमय एव यतो मुक्तानि यान्ति षट्सु दिक्षु तानि ॥ द्वितीयसमये त एव, षड्दण्डा भवन्ति षड्मन्थानः ॥ मन्थान्तरैस्तृतीये समये पूर्णैः पूरितो लोकः ॥ चतुर्भिः समयैः पूर्यते लोकान्ते भाषमाणस्य॥] इति॥ अथ लोकान्तवर्तिनस्त्रसनाडीबहिर्व्यवस्थितस्य वा भाषकस्य भाषाद्रव्यैश्चतुर्भिः समयैर्लोकपूरणं प्रतिपादितं त्रसनाडीबहिर्विदिग्व्यवस्थितस्य च पञ्चभिः समयैर्लोकापूरणं भवति तदेतत्सर्वं कथं मिलतीति चेत्, अत्रार्थे सविवरणे भाष्यगाथे एव तत्स्वरूपप्रदर्शिके प्रदर्श्येते,

तथाहि—"दिसिवट्टियस्स पढमोऽतिगमे ते चेव सेसया तिन्नि॥ विदिसि ट्ठियस्स समया, पंचातिगमम्मि जं दोण्णि ॥३८६॥"

व्याख्या—त्रसनाड्या बहिश्चतसृणां दिशामन्यतमस्यां दिशि व्यवस्थितस्य भाषकस्य प्रथमः समयोऽतिगमे नाडीमध्यप्रवेशे भवति । शेषसमयत्रयभावना तु 'होइ असंखेज्जइमे भागे' इत्यादिवक्ष्यमाणगाथावृत्तौ कथमिति चेदित्यादिना वक्ष्यते । लोकान्तेऽपि स्वयम्भूरमणपरतटवर्तिनि चतसृणां दिशामन्यतमस्यां दिशि व्यवस्थितस्य भाषकस्योर्ध्वाधोलोकस्खलितत्वाद्भाषाद्रव्याणां प्रथमः समयोऽतिगमे लोकमध्यप्रवेशे, त्रयस्तु समयाः शेषास्तथैव, त्रसनाडीबहिर्विदिग्व्यवस्थितस्य तु भाषकस्य भाषाद्रव्यैः सर्वलोकापूरणे पञ्च समया लगन्तीति विशेषः। कुतः? इत्याह—'अतिगमम्मि जं दोण्णि त्ति' विदिशः सकाशाद्भाषाद्रव्याणि त्रसनाडीबहिरेव प्रथमे समये दिशि समागच्छन्ति, द्वितीये तु लोकनाडीमध्ये प्रविशन्ति इत्येवं यस्मादतिगमे नाडीमध्यप्रवेशे द्वौ समयौ लगतः। शेषास्तु त्रयः समयाश्चतुःसमयव्याप्तिवद् द्रष्टव्याः, इत्येवं पञ्चसमयाः सर्वलोकापूरणे प्राप्यन्त इति ॥३८६॥

(योजितः पाठः) लोकान्तवर्तित्रसनाडीबहिर्व्यवस्थितवक्तृभाषाद्रव्यैश्चतुस्समयैर्लोकपूरणं त्रसनाडीवहिर्दिक्स्थितवक्तृभाषया पञ्चसमयैर्लोकपूरणमित्युपदर्शनम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ शेषसमयत्रयभावनार्थं 'होइ असंखेज्जइमे भागे' इत्यादि यदुक्तं तदाह–किञ्च निर्युक्तिकृता 'लोगस्स य कइभाए कइभाओ होइ भासाए' इति यत्प्रतिपादितं तद्व्याचिख्यासुर्भगवान् भाष्यकार आह–

"होइ असंखेज्जइमे, भागे लोगस्स पढमबिइएसु ॥ भासा असंखभागो, भयणा सेसेसु समयेसु ॥ ३९० ॥"

व्याख्या–चतुर्दशरज्जूच्छ्रितस्य लोकस्याऽसंख्याततमे भागे भाषाया अपि समस्तलोकव्यापिन्या असंख्याततम एव भागो भवति। कदा?, इत्याह–प्रथमद्वितीयसमययोः। इदमुक्तं भवति–त्रिसमयव्याप्तौ, चतुःसमयव्याप्तौ, पञ्चसमयव्याप्तौ च प्रथमसमयद्वितीयसमययोस्तावद् नियमेन सर्वत्र लोकासंख्येयभागे भाषाऽसंख्येयभागलक्षण एव विकल्पः सम्भवति, नान्यः। त्रिसमयव्याप्तौ हि प्रथमसमये दण्डषट्कं भवति, द्वितीयसमये तु षड् मन्थानः सम्पद्यन्ते। एते च दण्डादयो दैर्घ्येण यद्यपि लोकान्तस्पर्शिनो भवन्ति, तथापि वक्तृमुखविनिर्गतत्वात्तत्प्रमाणानुसारतो बाहल्येन चतुरङ्गुलादिमाना एव भवन्ति, चतुरादीनि चाङ्गुलानि लोकासंख्येयभागवर्त्तिन्येव। इति सिद्धस्त्रिसमयव्याप्तौ प्रथमद्वितीयसमययोर्लोकासंख्येयभागे भाषाऽसंख्येयभागः। चतुःसमयव्याप्तावप्येतदित्थमवगम्यत एव, प्रथमसमये लोकमध्यमात्र एव प्रवेशात्, द्वितीयसमये तु वक्ष्यमाणगत्या दण्डानामेव सद्भावादिति। पञ्चसमयव्याप्तिपक्षे तु सुबोधमेव, प्रथमसमये भाषाद्रव्याणां विदिशो दिश्येव गमनात्, द्वितीयसमये तु लोकमध्यमात्र एव प्रवेशात्। तस्मात् त्र्यादिसमयव्याप्तौ सर्वत्र प्रथमद्वितीयसमययोर्लोकासंख्येयभागे भाषाया असंख्येयभाग एव भवति। 'भयणा सेसेसु समएसुत्ति' उक्तशेषेषु तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भजना विकल्परूपा बोद्धव्या, क्वापि लोकासंख्येयभागे स एव भाषाऽसंख्येयभाग एव भवति,

(योजितः पाठः) भाषायाः त्रिचतुःपञ्चसमयलोकव्याप्तिषु प्रथमद्वितीयसमययोर्लोकासंख्येयभागे भाषासंख्येयभागस्य नियमोऽन्यत्र तु भजनेत्युपपादितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्वचित्पुनर्लोकस्य संख्येयभागे भाषासंख्येयभागः, क्वापि समस्तलोकव्याप्तिः । तथा हि–त्रिसमयव्याप्तौ तृतीयसमये भाषायाः समस्तलोकव्याप्तिः, चतुःसमयव्याप्तितृतीयसमये तु लोकसंख्येयभागे भाषासंख्येभागः । कथं ?, इति चेद् , उच्यते–स्वयम्भूरमणपश्चिमपरतटवर्तिनि लोकान्ते त्रसनाडीबहिर्वा पश्चिमदिशि स्थित्वा ब्रुवतो भाषकस्य प्रथमसमये चतुरङ्गुलादिबाहल्यो रज्जुदीर्घो दण्डस्तिरश्चीनं गत्वा स्वयम्भूरमणपूर्वपरतटवर्तिनि लोकान्ते लगति, ततो द्वितीयसमये तस्माद्दण्डादूर्ध्वाऽधश्चतुर्दशरज्जूच्छ्रितः पूर्वापरतस्तिरश्चीनरज्जुविस्तृतः पराघातवासितद्रव्याणां दण्डो निर्गच्छति, लोकमध्ये तु दक्षिणत उत्तरतश्च पराघातवासितद्रव्याणामेव चतुरङ्गुलादिबाहल्यं रज्जुविस्तीर्णं दण्डद्वयं विनिर्गत्य स्वयम्भूरमणदक्षिणोत्तरवर्तिनोर्लोकान्तयोर्लगति । एवं च सति चतुरङ्गुलादिबाहल्यं सर्वतोऽपि रज्जुविस्तीर्णं लोकमध्ये वृत्तच्छत्वरं सिद्धं भवति, तृतीयसमये तूर्ध्वाधोव्यवस्थितदण्डाच्चतुर्दिशं प्रसृतः पराघातवासितद्रव्यसमूहो मन्थानं साधयति, लोकमध्यव्यवस्थितः सर्वतोरज्जुविस्तीर्णाच्छत्वरादूर्ध्वाधःप्रसृतः पुनः स एव त्रसनाडीं समस्तामपि पूरयति, एवं च सति सर्वापि त्रसनाडी उर्ध्वाधोव्यवस्थितदण्डमथिभावेन तदधिकं च लोकस्य पूरितं भवति । एतच्चैतावत्क्षेत्रं, तस्य संख्याततमो भागः । तथा च सति चतुःसामयिक्या व्याप्तेस्तृतीयसमये लोकस्य संख्याततमे भागे भाषाया अपि समस्तलोकव्यापिन्याः संख्याततमो भाग इति स्थितम् ॥ पञ्चसामयिक्यास्तु व्याप्तेस्तृतीयसमये लोकासंख्येयभागे भाषाऽसंख्येयभागः । कुतः ?, इति चेत्, उच्यते–तस्यां तस्य दण्डसमयत्वात् , तत्र च संख्येयभागवर्तित्वस्य प्रागेव भावितत्वादिति । चतुर्थसमये चतुःसामयिक्यां व्याप्तौ मन्थान्तरपूरणात्समस्तलोकव्याप्तिः । पञ्चसामयिक्यां तु व्याप्तौ चतुर्थसमये लोकसंख्येयभागे भाषासंख्येयभागः, तस्यां तस्य मथिसमयत्वात्, तत्र

(योजितः पाठः) भाषायास्त्रिचतुःपञ्चसमयलोकव्याप्तिषु तृतीयसमयादौ भजनाप्रकार उपवर्णितः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

च संख्येयभागवर्तित्वस्य प्रागेव भावितत्वादिति।पञ्चमसमये तु पञ्चसामयिक्यां व्याप्तौ मन्थान्तरालपूरणात्समस्तलोकव्याप्तिरिति॥ एवं तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भाविता भजना, तद्भावने च व्याख्यातं 'भयणा सेसेसु समयेसु' इति। एतच्च महाप्रयत्नवक्तृनिसृष्टद्रव्यापेक्षयैवोक्तं, मन्दप्रयत्नवक्तृनिसृष्टानि तु लोकासंख्येयभाग एव वर्तन्ते, दण्डादिक्रमेण तेषां लोकपूरणाऽसम्भवादिति। अथ यद्युक्तप्रकारेण त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिश्च समयैर्वाग्द्रव्यैर्लोकः पूर्यते तर्हि चतुर्दशपूर्वविदा श्रुतकेवलिना निर्युक्तिकारेण भगवता भद्रबाहुस्वामिना 'चउहिं समएहिं लोगो, भासाए निरंतरं तु होइ फुडो॥' इति किमिति निर्धार्य चतुःसमयग्रहणमेव कृतमिति चेत्, सत्यम्, तुलादण्डग्रहणन्यायेन चतुःसमयग्रहणात् त्रयाणां पञ्चानामपि समयानां ग्रहणस्य निर्युक्तिकृता विहितत्वादेव॥ व्यवहारे यथा तुलादण्डमध्यभागग्रहणेन तदाद्यन्तभागयोरपि ग्रहणं विहितमेव, एवमत्रापि विज्ञेयं, सूत्रेऽप्येवंविधो न्यायो दृश्यते, यतो भग]वतः सूत्रस्य विचित्रा प्रवृत्तिः॥ उक्तश्च-"कत्थइ देसग्गहणं, कत्थइ घेप्पन्ति णिरवसेसाइं॥ उक्कमकमजुत्ताइं, कारणवसओ णिउत्ताइं॥ ३८८॥" [कुत्रचिद् देशग्रहणं, कुत्रापि गृह्यन्ते निरवशेषाणि॥ उत्क्रमक्रमयुक्तानि, कारणवशतो नियुक्तानि॥] न चैतादृशदेशनिबन्धः श्रुते न दृष्टो भगवत्यामष्टमशते महाबन्धोद्देशके सत्यपि चतुःसामयिके विग्रहे त्रिसामयिकस्यैव तस्य निबन्धाद्, आह च-"चउसमयमज्झगहणे, तिपंचगहणं तुलाइमज्झस्स॥ जह गहणे पज्जंत-ग्गहणं चित्ता य सुत्तगई॥३८७॥" [चतुःसमयमध्यग्रहणे, त्रिपञ्चग्रहणं तुलादिमध्यस्य॥ यथा ग्रहणे पर्यन्तग्रहणं चित्रा च सूत्रगतिः॥] नह्यूर्ध्वाधोगतदण्डादन्यद्रव्याणां पराघातो नास्ति॥ "चउसमयविग्गहे सति, महल्लबन्धंमि तिसमयो जह वा॥ मोत्तुं तिपंचसमए, तह चउसमओ इह णिबद्धो॥३८९॥" [चतुःसमयविग्रहे सति महाबन्धे

(योजितः पाठः) चतुर्भिस्समयैर्भाषाद्रव्यैर्लोकपूरणमिति-निर्युक्तिकारनिर्धारित-चतुस्समयग्रहणतोऽपि त्रिपञ्चसमयव्याप्त्योर्लाभ उपपादितः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रिसमयो यथा वा ॥ मुक्त्वा त्रिपञ्चसमयांस्तथा चतुःसमय इह निबद्धः] यदि पुनरेवं व्याख्यायते चतुर्भिरपि समयैर्लोको निरन्तरं स्पृष्टो व्याप्तो भवति, तुरप्यर्थ एवानुक्तत्रिपञ्चसमयसमुच्चये, तदेप्सितार्थलाभो न्यायाश्रयणादिप्रयासं विनेति द्रष्टव्यं, तुरेवकारार्थ एव, तस्य च निरन्तरमित्यत्राव्यवहितान्वयो भाषयेत्यस्य च कस्यचित्सम्बन्धिन्या भाषयेति विवक्षितमित्यप्याहुः, लोकस्य च चरमान्ते सर्वलोकव्याप्तिविशिष्टाया भाषायाश्चरमान्तो भवति यदाहुः॥ "आपूरियम्मि लोगे दोण्ह, वि लोगस्स तह य भासाए ॥ चरिमंते चरिमंतो, चरिमे समयम्मि सव्वत्थ ॥ ३९१ ॥" [आपूरिते लोके द्वयोरपि लोकस्य तथा च भाषायाः ॥ चरमान्ते चरमान्तश्चरमे समये सर्वत्र ॥] अत्र विवक्षयाऽऽदेरप्यन्तत्वाच्चरमग्रहणमिति तु पक्षद्वयेऽपि सम्मुखम् ॥ २९ ॥

अथ जैनसमुद्घातगत्या चतुर्भिः समयैर्भाषाद्रव्यैर्लोकः परिपूर्यत इत्यादेशस्यानादेशत्वं ख्यापयितुमाह—

सर्ववेदिसमुद्घात–गतिरत्र न युज्यते ॥ एकदा षड्दिशां व्याप्तिः, पराघातेन तत्र यत् ॥ ३० ॥

जैनसमुद्घातगत्या हि भाषाद्रव्याणां लोकव्याप्तावङ्गीक्रियमाणायां प्रथमसमये ऊर्ध्वाधोगाम्येव दण्डः स्यान्न तु षड्दिक्ष्विति पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरदिक्षु विदिक्ष्विव वक्तृनिसृष्टद्रव्याणामगमनेन पराघातवासितद्रव्याणामेव श्रवणान्मिश्रशब्दश्रवणं न स्यात् ॥ श्रूयते च–"भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणइ ॥३५१॥" [भाषासमश्रेणीतः शब्दं यच्छृणोति मिश्रकं शृणोति] इत्यादावविशेषेण सर्वासु दिक्षु मिश्रशब्दश्रवणमेवेति ॥ अथ विदिक्षु नियमेन पराघातवासितशब्दश्रवणाभिधानाद्दिक्ष्वनियमेन तत्पर्यवस्यतीत्यनियमोपपादनाय मिश्रशब्दश्रवणं समभिधीयत इत्यूर्ध्वाधोदिशोर्मिश्रश्रवणमन्यासु च दिक्षु पराघातवासितश्रवणमिति व्याख्यानतो विशेषः प्रतिपद्यत इति चेत्, न, यो धूमवान् सोऽग्निमानित्यत्रेव भाषासमश्रेणीतो यं शब्दं शृणोति तं मिश्रं

जैनसमुद्घातगत्या भाषाद्रव्यैर्लोकपूरणमित्यादेशस्यानादेशत्वख्यापनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृणोतीत्यत्र यत्तच्छब्दाभ्यां नियमाभिधानादनियमानुपपत्तेः, अपि चोर्ध्वाधोगमनसमय एव भाषा चतुर्दिशमप्यविशेषेण शब्दप्रायोग्यद्रव्याणि पराहत्य द्वितीयसमये मन्थानं साधयतीति त्रिभिरेव समयैस्तस्या लोकव्याप्तिः सम्भवति, न च जीवप्रदेशानामिव भाषाद्रव्याणामपि लोकव्याप्तौ प्रथमसमये दण्डो द्वितीयसमये कपाटं तृतीयसमये मन्थाश्चतुर्थसमये चान्तरालपूरणमिति वाच्यम् ॥ भाषाद्रव्याणां पराघातसम्भवेनोर्ध्वाधोगमनोत्तरं द्वितीयसमये चतुर्दिक्ष्वनुश्रेणिगमनसमये सर्वतः पराघातवासितद्रव्याणां मथिभावेन कपाटव्याघातात् ॥ न चैतेषां लोकव्याप्तौ चतुर्दिक्ष्वनुश्रेणिगमनपराघातस्वभावेभ्योऽधिकं नियामकमस्ति, केवली तु द्वितीयसमये केवलज्ञानरूपयेच्छया गुणदोषपर्यालोचनाद् भवोपग्राहिकर्मवशात्स्वभावाद् वा द्वितीयसमये मन्थानं न करोति किन्तु कपाटमेवेति तस्य चतुःसामयिकी लोकव्याप्तिः, अचित्तमहास्कन्धस्तु विस्रसापरिणामेनैव लोकमापूरयतीति द्वितीयसमये तस्य कपाटमात्रभावाच्चतुःसामयिकी व्याप्तिर्विस्रसापरिणामस्य पर्यनुयोगानर्हत्वाद्, अथवाऽसौ निजपुद्गलैरेव लोकमापूरयति, नतु पराघातेनान्यद्रव्याणामात्मपरिणामं जनयतीति तस्य चतुःसामयिक्येव व्याप्तिर्निजपुद्गलजन्ये मथि निजपुद्गलजन्यकपाटस्य हेतुत्वात्तं विना तदभावाद्, आह च "न समुग्धायगईए, मीसयसवणं मयं च दंडंमि ॥ जइ तो वि तीहिं पूरइ, समएहिं जओ 'पराघाओ॥३९२॥जइणे ण पराघाओ, स जीवजोगो य तेण चउसमओ ॥ हेऊ होज्जाहि तहिं, इच्छा कम्मं सहावो वा ॥३९३॥ खंधो वि वीससाए, ण पराघाओ अ तेण चउसमओ ॥ अह होज्ज पराघाओ, हविज्ज तो सो वि तिसमइओ ॥३९४॥" [न समुद्घातगत्या, मिश्रकश्रवणं मतं च दण्डे ॥ यदि ततोऽपि त्रिभिः पूर्यते समयैर्यतः पराघातः ॥ जैने न पराघातः, स जीवयोगश्च तेन चतुःसमयः ॥ हेतुर्भवेत्तत्रेच्छा कर्म स्वभावो वा ॥ स्कन्धोऽपि विश्रसया न पराघातश्च तेन चतुःसमयः॥ अथ भवेत्पराघातो

जैनसमुद्घातगत्या भाषाद्रव्यैर्लोकपूरणमित्यादेशस्याऽनादेशत्वख्यापनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भवेत्ततः सोऽपि त्रिसामयिकः॥] स्यादेतत्–मथिमात्र एव कपाटं कारणमिति कपाटं विना मथोऽभावाच्चतुःसामयिक्येव भाषाया लोकव्याप्तिर्युज्यते, मैवं, मथ्यनुकूलविस्तारे कपाटस्येव पराघातस्यापि शक्तत्वादुभयोरप्येकशक्तिमत्त्वेन मथिहेतुत्वाद्,अत एवापराघातस्य स्कन्धस्य लोकव्याप्तौ कपाटापेक्षेति सिद्धान्तः, अथ जातस्यैव दण्डस्यैव विस्तारे पराघातः क्षमो नतूत्पद्यमानस्य तस्य न वोदासीनद्रव्यमात्रस्यान्यथा द्वितीयसमय एव लोकव्याप्तिप्रसङ्गात्, न च स्वभावमात्रं समयविलम्बनियामकमतिप्रसङ्गादिति चेत्, तर्हि प्रथमसमये भाषाद्रव्याणां षड्दण्डास्त एव प्रसृमरा द्वितीयसमये षण्मन्थानस्तृतीयसमये चान्तरालपूरणमिति प्रागुक्ता वस्तुस्थितिरभ्युपगम्यतां, अपराघातद्रव्याव्याप्तावेव दण्डकपाटमन्थानहेतुत्वादिति दिक् ॥ ३० ॥ प्रसङ्गादनादेशान्तरं दूषयति—

दण्डमेकदिशं कृत्वा, चतुर्भिः समयैः परे ॥ लोकपूरणमिच्छन्ति, न च युक्त्यागमक्षमम् ॥ ३२ ॥

परे प्रत्युत भाषाद्रव्याणां चतुर्भिः समयैर्लोकपूरण इमां प्रक्रियामाहुः, प्रथमसमये तावदूर्ध्वदिशि दण्डो भवति, द्वितीयसमये च तत्र मन्थाः, अधोदिशि पुनर्दण्डं, तृतीयसमये चोर्ध्वदिश्यन्तरालपूरणमधोदिशि तु मन्थाः,चतुर्थसमये तु तत्राप्यन्तरालपूरणाल्लोकव्याप्तिरिति, तन्मतं न युक्तिं क्षमते, अनुश्रेणिगमनस्वभावानां पुद्गलानामेकयैव दिशा गमनं नान्यत्रेत्यत्र नियामकाभावात्, न च वक्तृमुखताल्वादिव्यापाराभिमुख्यमेव नियामकं विश्रेण्यभिमुखे भाषके विश्रेणावपि गमनप्रसङ्गात्, पटहादिशब्दपुद्गलानां वक्तृमुखव्यापारनिरपेक्षतया चतुःसमयानियमप्रसङ्गाच्च, न चात्र कश्चिदागमोऽप्यस्ति यद्बलात्तथाव्याप्तिस्वभावः कल्पयितुं शक्येत॥ आह च–"एगदिसमाइसमए, दंडं काऊण चउहिं पूरेइ॥ अन्ने भणन्ति,तं पि य, नागमजुत्तिक्खमं होइ ॥३९५॥" [एकदिक्मादिसमये, दण्डं कृत्वा चतुर्भिः पूरयति ॥ अन्ये भणन्ति तदपि च नागमयुक्तिक्षमं भवति ॥]॥ ३२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदेवं सप्रसङ्गं व्याख्यातं भेदतो मतिज्ञानं, अथ तत्पर्यायानभिधित्सुराह–

ईहाऽपोहौ च मीमांसा, मार्गणा च गवेषणा ॥ संज्ञा स्मृतिर्मतिः प्रज्ञा, सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥ ३३ ॥

ईहाऽन्वयव्यतिरेकधर्मगवेषणा, अपोहो निश्चयो, मीमांसा विमर्शोऽपायात्पूर्व ईहायाश्चोत्तरः सम्भवसम्प्रत्ययः, मार्गणमन्वयधर्मान्वेषणं, गवेषणं व्यतिरेकधर्मालोचनं, संज्ञाऽवग्रहोत्तरभावी मतिविशेष एव, स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थानुसन्धानम्, मातिः कथश्चिदर्थपरिच्छित्तावपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा बुद्धिः, प्रज्ञा विशिष्टक्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुयथातत्त्वालोचनं, सर्वमिदं कथश्चिद्भेदेऽप्याभिनिबोधिकमेव मन्तव्यम्। यदाह परममुनिः–[निर्युक्तिगाथा] "ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा च गवेसणा ॥ सण्णा सई मई पण्णा, सव्वमाभिणिबोहियं ॥३९६॥" [ईहाऽपोहो विमर्शो, मार्गणा च गवेषणा॥ संज्ञा स्मृतिर्मतिः प्रज्ञा, सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥] भाष्यकृदप्याह–" होइ अपोहोऽवाओ, सई धिई सव्वमेव मइपन्ना॥ईहा सेसा, सव्वं, इदमाभिणिबोहियं जाण ॥ ३९७ ॥ [भवत्यपोहोपायः स्मृतिर्धृतिः सर्वमेव मतिप्रज्ञे ॥ ईहा शेषाणि सर्वमिदमाभिनिबोधिकम्] अत्र मतिप्रज्ञाऽभिनिबोधिकबुद्धिलक्षणाश्चत्वारः शब्दा वचनपर्यायास्तैर्मतिज्ञानसामान्याभिधानाद्, अवग्रहादिशब्दाश्चाऽर्थपर्यायास्तदेकदेशाभिधानाद्, अथवा सर्वेषामपि वस्तूनामभिलापवाचकाः शब्दा वचनपर्यायाः, तदभिधेयार्थस्यात्मभूता भेदास्त्वर्थपर्यायाः; यथा कनकस्य कटककेयूरादयः, तदाह–" मइपन्नाभिणिबोहिय–बुद्धीओ होन्ति वयणपज्जाआ ॥ जा ओग्गहाइसन्ना, ते सव्वे अत्थपज्जाया ॥ ३९८ ॥" [मतिप्रज्ञाभिनिबोधिकबुद्धयो भवन्ति वचनपर्यायाः ॥ या अवग्रहादिसंज्ञा ते सर्वे अर्थपर्यायाः ॥]

नन्वर्थपर्यायास्तावद्भेदा एव तन्निरूपणं चाऽत्राप्रकृतं शब्दभेदादर्थभेदभ्रमनिरासाय मतिपर्यायज्ञानशब्दाभिधानस्यैवात्र

मतिज्ञानपर्यायकथनं ईहादीनामाभिनिबोधिकत्वे भाष्यसंवादः मतिप्रज्ञादीनां वचनपर्यायत्वमवग्रहादीनामर्थपर्यायत्वं चेतिप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकृतत्वात्, यथा न्यायनये "बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यऽनर्थान्तरम्" इति सांख्याभिमतस्य शब्दभेदादर्थभेदस्य निरासाय ज्ञानपर्यायाभिधानम्, एकरूपेणैकार्थबोधकशब्दद्वयं च पर्यायः, अन्यथा पृथिवीघटशब्दयोरपि पर्यायत्वव्यवहारप्रसङ्गादिति, तथा च कथमीहापोहादीनां मतिज्ञानपर्यायत्वमिति चेत्, सत्यं–अवग्रहणादियोगार्थभेदेऽप्यवग्रहादिशब्दानां मतिसामान्यप्रवृत्तिकत्वेन पर्यायत्वात् योगार्थभेदस्यापि पर्यायत्वप्रतिपन्थित्वे घटकलशादिपदानामपि तत्त्वं न स्यात्,

न चैवमवग्रहेहादिसङ्करप्रसङ्गः?, अवग्रहादीनां सामान्यादिग्राहित्वेऽप्यव्यक्तव्यक्ततत्तदवभासविशेषेण विशेषात्, नहि यथाभूतमवग्रहे सामान्यमात्रार्थस्यावग्रहणं तथाभूतमेवेहायां, किन्तु विशिष्टं, विशिष्टतरं विशिष्टतमं चाऽपायधारणयोः, यथाभूता चेहायां मतिचेष्टा ततो विशिष्टतरा विशिष्टतमा चाऽपायधारणयोः, अविशिष्टतरा चाऽवग्रहे, अर्थावगमनमप्यपायाद्विशिष्टं धारणायां, अविशिष्टमविशिष्टतरं चेहावग्रहयोः, अर्थधारणमप्यवग्रहेहापायेभ्यः सर्वप्रकृष्टं धारणायामिति ॥ तदिदमाह–XXX [इयानेवोपलब्धोयं ग्रन्थः,अग्रेतनः समाप्ति यावत्प्रभूततमो ग्रन्थभागः खण्डित इति तद्बुभुत्सूनां किञ्चिद्दिक्सूचकप्रायं प्रदर्श्यते]

[सव्वं वाभिणिबोहिय–मिहोग्गहाइवयणेण संगहियं॥केवलमत्थविसेसं,पइ भिन्ना उग्गहाईया॥३९९॥ [सर्वं वाऽभिनिबोधिकमिहावग्रहादिवचनेन सङ्गृहीतम्॥ केवलमर्थविशेषं प्रति भिन्ना अवग्रहादयः] अथावग्रहेहापायधारणानामविशिष्टविशिष्टविशिष्टतरविशिष्टतमार्थप्रतिपादकत्वेन कथं तत्तच्छब्देनाभिनिबोधिकं सङ्गृह्यत इति चेत्, अत्राह–अविशिष्टयौगिकार्थाश्रयणेन सर्वेषामप्येकवाचकत्वेनाभिनिबोधिकत्वेऽविरोधात्! इदमुक्तं भवति, अवग्रहणमवग्रह इतिव्युत्पत्तिमाश्रित्य सर्वमप्याभिनिबोधिकमवग्रहः,यथा हि, कमप्यर्थमवग्रहोऽवगृह्णाति,तथेहापि कमप्यर्थमवगृह्णात्येव, एवमपायधारणे अपि कमप्यर्थमवगृह्णीत इति सर्वमप्याभिनिबोधिकं

(योजितः पाठः) ईहापोहादीनां मतिज्ञानपर्यायत्वस्यावग्रहणादितारतम्यस्य च व्यवस्थापनम्। सर्वस्याभिनिबोधिकस्यावग्रहादिशब्देन सङ्ग्रहोपपादनञ्च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामान्येनावग्रह उच्यते। एवमीहनमीहा मतिचेष्टेतीहाया व्युत्पत्तिं, अवगमनमवायोऽर्थावगम इत्यवायस्य, धरणं धारणा अर्थस्याविच्युत्यादिस्वरूपमिति धारणायाश्च व्युत्पत्तिमवलम्ब्यावग्रहापायधारणानामपि मतिचेष्टाविशेषरूपत्वात्सामान्यत ईहात्वे अवग्रहेहाधारणानामप्यर्था वगमात्मकत्वात्सामान्यतोऽपायत्वे अवग्रहेहापायानां सामान्यतोऽर्थधरणस्वरूपत्वाद्धारणात्वे न कश्चिद्विरोधः, यथैतेषामवग्रहादीनां सङ्करप्रसङ्गो न भवति तथा प्रागेवोपपादितं पूज्यैरित्यलमतिपल्लवितेन। तदिदमाह भाष्यकारः॥"उग्गहणमोग्गहो त्ति य, अविसिट्ठमवग्गहो तयं सव्वं ॥ ईहा जं मइचेट्ठा, मइवावारो तयं सव्वं॥४००॥अवगमणमवाओत्ति य, अत्थावगमो तयं हवइ सव्वं ॥ धरणं च धारणत्ति य, तं सव्वं धरणमत्थस्स॥४०१॥" [अवग्रहणमवग्रह इति, चाविशिष्टमवग्रहस्तत्सर्वम्॥ ईहा यद् मतिचेष्टा,मतिव्यापारस्तत्सर्वम्॥अवगमनमवाय इति चार्थावगमस्तद् भवति सर्वम् ॥ धरणं च धारणेति च तत्सर्वं धरणमर्थस्य]अथैवं तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातस्वरूपस्यास्याभिनिबोधिकज्ञानस्य समासतो ज्ञेयभेदेन चातुर्विध्यं,यन्नन्दिसूत्रं "तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं, तंजहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ न पासइ" इत्यादि [तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं तद्यथा–द्रव्यतः,क्षेत्रतः, कालतो, भावतः॥ तत्र द्रव्यत आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वद्रव्याणि जानाति न पश्यति] अथास्तु पदार्थानां द्रव्यक्षेत्रकालभावभिन्नत्वेन चतुर्विधत्वाज्ज्ञेयचातुर्विध्यं ततो ज्ञानस्य चतुर्विधत्वे किमायातमिति चेत्, उच्यते, ज्ञानन्तावद्विषयाधीनसत्ताकं विषयमवगच्छदेव ज्ञानं ज्ञानत्वमृच्छति, तथा चाभिनिबोधिकमादेशेन द्रव्यादिभेदेन चतुर्विधमपि विषयमवगृह्णातीति विषयभेदेन ज्ञानस्यापि चतुर्विधत्वं सिद्धम्। तदाह–"तं पुण चउव्विहं ने–य भेयओ तेण जं तदुवउत्तो॥ आदेसेणं सव्वं,दव्वाइ चउव्विहं मुणइ ॥४०२॥" [तत्पुनश्चतुर्विधं ज्ञेय–भेदतस्तेन यत्तदुपयुक्तः॥

(योजितः पाठः)
सर्वेषामवग्रहादीनां प्रत्येकमवग्रहादित्वं तद्रूपस्याभिनिबोधिकस्य ज्ञेयभेदेन चातुर्विध्ये नन्दिसूत्रसंवादश्च

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आदेशेन सर्वं द्रव्यादि चतुर्विधं जानाति ॥] ननु द्रव्यादिचतुर्विधमाभिनिबोधिकज्ञानी जानातीत्युक्तं तत्केन स्वरूपेण, न च किंज्ञानस्य ज्ञातव्यप्रकारभेदोऽस्तीति स्वरूपं पृच्छसीति वाच्यं, ज्ञातव्यप्रकारस्य द्वैविध्यात् , तथाहि,ओघादेशो विभागादेशश्च सामान्यप्रकारो विशेषप्रकारश्चेति तदर्थः,अतः केन स्वरूपेणेति प्रश्नः, अत्रोत्तरं, ओघादेशेन सामान्यप्रकारेण, तथाहि, द्रव्यसामान्येन असंख्येयप्रदेशात्मको लोकव्यापकोऽमूर्तः प्राणिनां पुद्गलानां च गत्युपष्टम्भनहेतुर्धर्मास्तिकाय इत्यादिना सामान्यप्रकारेण कियत्पर्यायविशिष्टानि षडपि धर्मास्तिकायादीनि सर्वद्रव्याणि सामान्येनाभिनिबोधिकज्ञानी जानातीति तत्त्वम्।विभागादेशेन विशेषप्रकारेण पुनः सर्वैः पर्यायैः केवलिदृष्टैरवच्छिन्नानि सर्वद्रव्याणि न जानाति केवलज्ञानावसेयत्वात्सर्वपर्यायाणामिति, एवं क्षेत्रमपि सर्वं सामान्यतः कियत्पर्यायावच्छिन्नं सामान्यादेशेन जानाति न विशेषादेशेन सर्वपर्यायविशिष्टं, कालमपि सर्वाद्धारूपं अतीतानागतवर्तमानभेदतस्त्रिविधं वेत्यादिरूपेण, भावतस्तु सामान्येन सर्वभावानामनन्तभागं, औदयिकक्षायिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकान्वा पञ्चभावान्सामान्यादेशेन जानाति न परतः॥एतावत एवाभिनिबोधिकविषयत्वात् ॥ इह क्षेत्रकालयोः सामान्येन द्रव्यान्तर्गतत्वेऽपि भेदेन रूढत्वात्पृथगुपादानं कृतं॥ सूत्रार्थत्वे वाऽऽदेशस्य सूत्रादेशतः श्रुतोपलब्धेष्वर्थेषु सर्वद्रव्यादिविषयं मतिज्ञानं प्रवर्तते। न च श्रुतोपलब्धेष्वर्थेषु ग्राहकत्वेन प्रवृत्तस्य ज्ञानस्य श्रुतज्ञानत्वमेव न्याय्यं न मतिज्ञानत्वमिति साम्प्रतम्, इह पूर्वं श्रुतपारिकर्मितमतेरपि साम्प्रतमाभिनिबोधिकज्ञानस्य श्रुतोपयोगमृते तदुपलब्धेष्वर्थेषु तद्वासनामात्रेणैव प्रवृत्तत्वात्, यदवादि, "पुव्विं सुयपरिकम्मिय-मइस्स जं संपयं सुयाईयं" इत्यादि,सर्वमप्येतद्भाष्यकारोऽप्याह—"आएसोत्ति पगारो, ओहादेसेण सव्वदव्वाइं॥ धम्मत्थिकाइयाइं, जाणइ न उ सव्वभेएणं ॥४०३॥ खेत्तं लोगालोगं, कालं सव्वद्धमहव तिविहं ति॥ पंचोदइयाईए, भावे जं नेयमेवइयं

(योजितः पाठः) द्रव्यादिचतुर्विधमाभिनिबोधिकज्ञानी सामान्यप्रकारेण सर्वं जानाति न विशेषप्रकारेण सर्वमिति प्रपञ्चितम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥४०४॥ आएसोत्ति व सुत्तं, सुओवलद्धेसु तस्स मइनाणं ॥ पसरइ तब्भावणया, विणा वि सुत्तानुसारेण ॥४०५॥" [आदेश इतिप्रकार ओघादेशेन सर्वद्रव्याणि ॥ धर्मास्तिकायिकादीनि जानाति न तु सर्वभेदेन ॥ क्षेत्रं लोकालोकं कालं सर्वाद्धामथवा त्रिविधमिति ॥ पञ्चौदयिकादीन्भावान्यज्ज्ञेयमियद् ॥ आदेश इति वा सूत्रं श्रुतोपलब्धेषु तस्य मतिज्ञानं ॥ प्रसरति तद्भावनया विनापि सूत्रानुसारेण॥] तदेवं मतिज्ञानस्य तत्त्वभेदपर्यायैर्निरूपणं द्रव्यादिविषयप्ररूपणं च प्रदर्शितम् ॥ अथ सत्पदप्ररूपणतादिभिर्नवभिरनुयोगद्वारैर्मतिज्ञानं विचार्यते, अनुयोगद्वाराणि च गत्यादिमार्गणाभेदेषु विधीयन्ते, अतः पूर्वं द्वाराणि मार्गणाभेदाश्चोच्यन्ते, तत्र सत्पदप्ररूपणता, द्रव्यप्रमाणं, क्षेत्रं, स्पर्शना, कालः, अन्तरं, भागः, भावः, अल्पबहुत्वं चेति नवानुयोगद्वाराणि, अनुयोगो व्याख्यानं तस्य द्वाराणीव द्वाराणि व्याख्यानपुरप्रवेशमार्गाः, मार्गणाश्च 'गइ इंदिय काये' इत्यादिगाथोक्ताः, सत्पदाद्यनुयोगद्वारावतारस्थानानि, एतेषां स्वरूपं प्रतिपद्यमानप्रतिपन्नजीवानां मार्गणाविचारोऽनुयोगद्वारविचारश्च महाभाष्यतद्वृत्त्यादिभ्यो विशेषजिज्ञासुनाऽवधेयः ॥ तत्र महाभाष्ये षडुत्तरचतुःशततमगाथात आरभ्य त्रिचत्वारिंशदाधिकचतुःशततमीं यावदष्टात्रिंशता गाथाभिस्सत्पदप्ररूपणतादिभिरनुयोगद्वारैर्मतिज्ञानं चिन्तितम्॥ ततः षट्षष्ट्युत्तरपञ्चशततमीं गाथां यावत्त्रयोविंशत्यऽधिकशतसंख्यगाथाभिः श्रुतज्ञानं निरूपितम् ॥ ततोऽष्टोत्तराष्टशततमीं गाथां यावद्द्विचत्वारिंशदधिकद्विशतप्रमाणाभिर्गाथाभिरवधिज्ञानं प्ररूपितम् ॥ ततो द्वाविंशत्युत्तराष्टशततमीं गाथां यावच्चतुर्दशभिर्गाथाभिर्मनःपर्यायज्ञानप्ररूपणा कृता ॥ ततः षट्त्रिंशदुत्तराष्टशततमीं गाथां यावच्चतुर्दशभिर्गाथाभिः केवलज्ञानं निरूपितम् ॥] ॥

न्यायविशारद–न्यायाचार्य–महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिप्रणीतं त्रुटितावस्थोपलब्धं श्रीज्ञानार्णवप्रकरणं समाप्तम्॥

सत्पदप्ररूपणताद्यनुयोगद्वारैर्मतिज्ञानप्ररूपणस्य श्रुतज्ञानादीनां चतुर्णां प्रतिपत्तयेमहाभाष्यनिरूपितप्रतिनियतगाथानां च संसूचनम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ इयता ज्ञानार्णवग्रन्थविभागेन मतिज्ञानप्ररूपणमप्यवशिष्टमिति श्रुतादीनां तत्त्वबुभुत्सापूरणाय पूज्यप्रणीतमेव तदीय-विषयबिन्दुरूपत्वान्नाम्ना श्रीज्ञानबिन्दुप्रकरणमन्यत्र पूर्वं द्विधा मुद्रितमप्येतत्संलग्नतासत्यापनायेह प्रकाश्यते ॥

॥ अथ श्रीज्ञानबिन्दुप्रकरणम् ॥

ऐन्द्रस्तोमनतं नत्वा, वीरं तत्त्वार्थदेशिनम् ॥ ज्ञानबिन्दुः श्रुताम्भोधेः, सम्यगुद्ध्रियते मया ॥ १ ॥

तत्र ज्ञानं तावदात्मनः स्वपरावभासकोऽसाधारणो गुणः, स चाभ्रपटलविनिर्मुक्तस्य भास्वत इव निरस्तसमस्तावरणस्य जीवस्य स्वभावभूतः केवलज्ञानव्यपदेशं लभते । तदाहुराचार्याः–" केवलनाणमणंतं, जीवसरूवं तयं निरावरणं ॥" इति । तं च स्वभावं यद्यपि सर्वघातिकेवलज्ञानावरणं कात्स्न्येनैवावरीतुं व्याप्रियते, तथापि तस्यानन्ततमो भागो नित्याऽनावृत एवावतिष्ठते, तथास्वाभाव्यात् ॥ (नन्दीसूत्र) ' सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंततमो भागो णिच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ, सो वि अ जइ आवरिज्जा, तेणं जीवो अजीवत्तणं पाविज्जा " इति **पारमर्षप्रामाण्यात्** । अयं च स्वभावः केवलज्ञानावरणावृतस्य जीवस्य घनपटलच्छन्नस्य रवेरिव मन्दप्रकाश इत्युच्यते । तत्र हेतुः केवलज्ञानावरणमेव । केवलज्ञानव्यावृत्तज्ञानत्वव्याप्यजातिविशेषावच्छिन्ने तद्धेतुत्वस्य शास्त्रार्थत्वात् । अत एव न मतिज्ञानावरणक्षयादिनापि मतिज्ञानाद्युत्पादनप्रसङ्गः । अत एव चास्य विभावगुणत्वमिति प्रसिद्धिः । स्पष्टप्रकाशप्रतिबन्धके मन्दप्रकाशजनकत्वमनुत्कटे चक्षुराद्यावरणे वस्त्रादावेव दृष्टं, न तूत्कटे कुड्यादाविति कथमत्रैवमिति चेत्, न, अभ्राद्यावरणे उत्कटे उभयस्य दर्शनात्, अत एवात्र (नन्दी) "सुट्ठु वि मेघसमुदए, होंति पभा चंदसूराणं ॥" इत्येव दृष्टान्तितं **पारमर्षे**, अत्यावृतेऽपि चन्द्रसूर्यादौ दिनरजनीविभागहेत्वल्पप्रकाशवज्जीवेऽप्यन्यव्यावर्तकचै-

मङ्गलं ज्ञान-निरूपणे के-वलज्ञानस्व-रूपोपदर्शनं, जीवस्व-भावस्य ज्ञान-स्यानन्ततम-भागो नि-त्यानावृत ए-वेत्यस्य व्य-वस्थापनम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तन्यमात्राविर्भाव आवश्यक इति परमार्थः। एकत्र कथमावृतानावृतत्वमिति त्वर्पितद्रव्यपर्यायात्मना भेदाभेदवादेन निर्लोठनीयम्। ये तु चिन्मात्राश्रयविषयमज्ञानमिति विवरणाचार्यमताश्रयिणो वेदान्तिनस्तेषामेकान्तवादिनां महत्यनुपपत्तिरेव, अज्ञानाश्रयत्वेनानावृतं चैतन्यं यत्तदेव तद्विषयतयाऽऽवृतमिति विरोधात्। न चाऽखण्डत्वाद्यज्ञानविषयः, चैतन्यं त्वाश्रय इत्यविरोधः, अखण्डत्वादेश्चिद्रूपत्वे भासमानस्यावृतत्वायोगात्, अचिद्रूपत्वे च जडे आवरणायोगात्। कल्पितभेदेनाखण्डत्वादि विषय इति चेत्, न, भिन्नावरणे चैतन्यानावरणात्। परमार्थतो नास्त्येवावरणं चैतन्ये, कल्पितं तु शुक्तौ रजतमिव तत्त्राविरुद्धं, तेनैव च चित्त्वाखण्डत्वादिभेदकल्पना 'चैतन्यं स्फुरति नाखण्डत्वाद्' इत्येवंरूपाऽऽधीयमाना न विरुद्धेति चेत्, न, कल्पितेन रजतेन रजतकार्यवत्कल्पितेनावरणेनावरणकार्यायोगात्। 'अहं मां न जानामि' इत्यनुभव एव कर्मत्वांशे आवरणविषयकः कल्पितस्यापि तस्य कार्यकारित्वमाचष्टे, अज्ञानरूपक्रियाजन्यस्यातिशयस्यावरणरूपस्यैव प्रकृते कर्मत्वात्मकत्वात्, अत एवास्य साक्षिप्रत्यक्षत्वेन स्वगोचरप्रमाणापेक्षया न निवृत्तिप्रसङ्ग इति चेत्, न, 'मां न जानामि' इत्यस्य विशेषज्ञानाभावविषयत्वात्, अन्यथा मां जानामीत्यनेन विरोधात्, दृष्टश्चेत्थं 'न किमपि जानामि' इत्यादिर्मध्यस्थानां प्रयोगः। किञ्च विशिष्टाविशिष्टयोर्भेदाभेदाभ्युपगमं विनाऽखण्डत्वादिविशिष्टचैतन्यज्ञानेन विशिष्टावरणनिवृत्तावपि शुद्धचैतन्याप्रकाशप्रसङ्गः, विशिष्टस्य कल्पितत्वादविशिष्टस्य चाननुभवात्, महावाक्यस्य निर्धर्मकब्रह्मविषयत्वं चाग्रे निर्लोठयिष्यामः। एतेन 'जीवाश्रयं ब्रह्मविषयं चाज्ञानम्' इति **वाचस्पतिमिश्रा**भ्युपगमोऽपि निरस्तः। जीवब्रह्मणोरपि कल्पितभेदत्वात्, व्यावहारिकभेदेऽपि जीवनिष्ठाविद्यया तत्रैव प्रपञ्चोत्पत्तिप्रसङ्गात्। न चाहङ्कारादिप्रपञ्चोत्पत्तिस्तत्रेष्टैव, आकाशादिप्रपञ्चोत्पत्तिस्तु विषयपक्षपातिन्या अविद्याया ईश्वरे स-

ज्ञानस्य कथञ्चिदावृतत्वानावृतत्वं, चिन्मात्राश्रयविषयमज्ञानमिति विवरणाचार्यमतस्य जीवाश्रयं ब्रह्मविषयञ्चाज्ञानमितिवाचस्पतिमिश्रमतस्य च खण्डनम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वेन तत्रैव युक्तेत्यपि साम्प्रतम्, अज्ञातब्रह्मण एवैतन्मते ईश्वरत्वेऽप्यज्ञातशुक्ते रजतोपादानत्ववत्तस्याकाशादिप्रपञ्चोपादानत्वाभिधानासम्भवात्, रजतस्थले हीदमंशावच्छेदेन रजताभावाऽज्ञानम्, इदमंशावच्छेदेन रजतोत्पादकामिति त्वया क्लृप्तं शुक्त्यज्ञानं त्वदूराविप्रकर्षेण तथा, प्रकृते तु ब्रह्मण्यवच्छेदासम्भवान्न किञ्चिदेतत्, अवच्छेदानियमेन हेतुत्वे चाहङ्कारादेरपीश्वरे उत्पत्तिप्रसङ्गादिति किमतिप्रसङ्गेन, तस्मादनेकान्तवादाश्रयादेव केवलज्ञानावरणेनावृतोऽप्यनन्ततमभागावशिष्टोऽनावृत एव ज्ञानस्वभावः सामान्यत एकोऽप्यनन्तपर्यायकीर्मीरितमूर्तिर्मन्दप्रकाशनामधेयो नानुपपन्नः, स चापान्तरालावस्थितमतिज्ञानाद्यावरणक्षयोपशमभेदसम्पादितं नानात्वं भजते, घनपटलाच्छन्नरवेर्मन्दप्रकाश इवान्तरालस्थकटकुड्याद्यावरणविवरप्रवेशात् ॥

इत्थं च जन्मादिपर्यायवदात्मस्वभावत्वेऽपि मतिज्ञानादिरूपमन्दप्रकाशस्योपाधिभेदसम्पादितसत्ताकत्वेनोपाधिविगमे तद्विगमसम्भवान्न कैवल्यस्वभावानुपपत्तिरिति महाभाष्यकारः, अत एव द्वितीयापूर्वकरणे तात्त्विकधर्मसन्न्यासलाभे क्षायोपशमिकाः क्षमादिधर्मा अप्यपगच्छन्तीति तत्र तत्र (योगदृष्टिसमुच्चयादौ) हरिभद्राचार्यैर्निरूपितम् । निरूपितं च योगयत्नकर्मनिर्जरणहेतुफलसम्बन्धनियतसत्ताकस्य क्षायिकस्यापि चारित्रधर्मस्य मुक्तावनवस्थानम् । न च वक्तव्यं केवलज्ञानावरणेन बलीयसावरीतुमशक्यस्यानन्ततमभागस्य दुर्बलेन मतिज्ञानावरणादिना नावरणसम्भव इति, कर्मणः स्वावार्यावारकतायां सर्वघातिरसस्पर्धकोदयस्यैव बलत्वात्, तस्य च मतिज्ञानावरणादिप्रकृतिष्वप्यविशिष्टत्वात् । कथं तर्हि क्षयोपशम इतिचेत्,

अत्रेयमर्हन्मतोपनिषद्वेदिनां प्रक्रिया—इह हि कर्मणां प्रत्येकमनन्तानन्तानि रसस्पर्धकानि भवन्ति, तत्र केवलज्ञानावरण—केवलदर्शनावरणा[२]-ऽऽद्यद्वादशकषाय[१४]—मिथ्यात्व[१५]—निद्रा[२०]लक्षणानां विंशतेः प्रकृतीनां सर्वघातिनीनां सर्वाण्यपि रसस्पर्धकानि

अनेकान्तवाद एव ज्ञानस्वभावस्यावृतत्वानावृतत्वोपपत्तिः, मन्दप्रकाशस्य तस्य नानात्वं क्षयोपशमप्रक्रियोपक्रमश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वघातीन्येव भवन्ति, उक्तशेषाणां पञ्चविंशतिघातिप्रकृतीनां देशघातिनीनां रसस्पर्धकानि यानि चतुःस्थानकानि यानि च त्रिस्थानकानि तानि सर्वघातीन्येव, द्विस्थानकानि तु कानिचित् सर्वघातीनि कानिचिच्च देशघातीनि, एकस्थानकानि तु सर्वाण्यपि देशघातीन्येव । तत्र ज्ञानावरणचतुष्कदर्शनावरणत्रयसञ्ज्वलनचतुष्कान्तरायपञ्चकपुंवेदलक्षणानां सप्तदशप्रकृतीनामेकद्वित्रिचतुःस्थानकरसा बन्धमाश्रित्य प्राप्यन्ते, श्रेणिप्रतिपत्तेरर्वागासां द्विस्थानकस्य त्रिस्थानकस्य चतुःस्थानकस्य वा रसस्य बन्धात् । श्रेणिप्रतिपत्तौ त्वनिवृत्तिबादराद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेष्वत्यन्तविशुद्धाध्यवसायेनाशुभत्वादासामेकस्थानकरसस्यैव बन्धात्, शेषास्तु शुभा अशुभा वा बन्धमधिकृत्य द्विस्थानकरसास्त्रिस्थानकरसाश्चतुःस्थानकरसाश्च प्राप्यन्ते, न कदाचनाप्येकस्थानकरसाः । यत उक्तसप्तदशव्यतिरिक्तानां हास्याद्यानामशुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसबन्धयोग्या शुद्धिरपूर्वकरणप्रमत्ताप्रमत्तानां भवत्येव न, यदा त्वेकस्थानकरसबन्धयोग्या परमप्रकर्षप्राप्ता शुद्धिरनिवृत्तिबादराद्धायाः संख्येयेभ्यो भागेभ्यः परतो जायते, तदा बन्धमेव न ता आयान्तीति ॥ न च यथा श्रेण्यारोहेऽनिवृत्तिबादराद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु परतोऽतिविशुद्धत्वान्मतिज्ञानावरणादीनामेकस्थानकरसबन्धः, तथा क्षपकश्रेण्यारोहे सूक्ष्मसम्परायस्य चरमद्विचरमादिसमयेषु वर्तमानस्यातीवविशुद्धत्वात् केवलद्विकस्य सम्भवद्बन्धस्यैकस्थानरसबन्धः कथं न भवतीति शङ्कनीयम् ? । स्वल्पस्यापि केवलद्विकरसस्य सर्वघातित्वात्, सर्वघातिनां च जघन्यपदेऽपि द्विस्थानकरसस्यैव सम्भवात्, शुभानामपि प्रकृतीनामत्यन्तशुद्धौ वर्तमानश्चतुःस्थानकमेव रसं बध्नाति, ततो मन्दमन्दतराविशुद्धौ तु त्रिस्थानकं द्विस्थानकं वा, सङ्क्लेशाद्धायां वर्तमानस्तु शुभप्रकृतीरेव न बध्नातीति कुतस्तद्गतरसस्थानकाचिन्ता । यास्त्वतिसङ्क्लिष्टे

सर्वघातिप्रकृतिरसस्पर्धकानां सर्वघातित्वमेव देशघातिनां च रसस्पर्धकेषु सर्वदेशघातित्वव्यवस्थोपपादनं रसस्पर्धकेषु चतुःस्थानकादिनियमानियमप्रदर्शनञ्च

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिथ्यादृष्टौ नरकगतिप्रायोग्या वैक्रियतैजसाद्याः शुभप्रकृतयो बन्धमायान्ति, तासामपि तथास्वाभाव्याज्जघन्यतोऽपि द्विस्थानक एव रसो बन्धमायाति नैकस्थानक इति ध्येयम्। ननूत्कृष्टस्थितिमात्रं सङ्क्लेशोत्कर्षेण भवति, ततो यैरेवाऽध्यवसायैः शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिर्भवति तैरेवैकस्थानकोऽपि रसः किं न स्यादिति चेत्, उच्यते—इह हि प्रथमस्थितेरारभ्य समयसमयवृद्ध्याऽसंख्येयाः स्थितिविशेषा भवन्ति, एकैकस्यां च स्थितावसंख्येया रसस्पर्धकसङ्घातविशेषाः, तत उत्कृष्टस्थितौ बध्यमानायां प्रतिस्थितिविशेषमसंख्येया ये रसस्पर्धकसङ्घातविशेषास्ते तावन्तो द्विस्थानकरसस्यैव घटन्ते नैकस्थानकस्येति न शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धेऽप्येकस्थानकरसबन्धः। उक्तं च—"(पंचसंग्रह) उक्कोसठिईअज्झव—साणेहिं एगठाणिओ होइ॥ सुभिआण तं न जं ठिई, असंखगुणिआ उ अणुभागा॥ ३–६४॥ इति"। एवं स्थिते देशघातिनामवधिज्ञानावरणादीनां सर्वघातिरसस्पर्धकेषु विशुद्धाध्यवसायतो देशघातितया परिणमनेन निहतेषु, देशघातिरसस्पर्धकेषु चातिस्निग्धेष्वल्परसीकृतेषु, तदन्तर्गतकतिपयरसस्पर्धकभागस्योदयावलिकाप्रविष्टस्य क्षये, शेषस्य च विपाकोदयविष्कम्भलक्षणे उपशमे, जीवस्यावधिमनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनादयो गुणाः क्षायोपशमिकाः प्रादुर्भवन्ति। तदुक्तम्—" णिहएसु सव्वघाई—रसेसु फड्डेसु देसघाईणं॥ जीवस्स गुणा जायं—ति ओही मणचक्खुमाईआ॥३–३०॥" निहतेषु देशघातितया परिणमितेषु॥ तदावधिज्ञानावरणादीनां कतिपयदेशघातिरसस्पर्धकक्षयोपशमात् कतिपयदेशघातिरसस्पर्धकानां चोदयात् क्षयोपशमानुविद्ध औदयिको भावः प्रवर्तते, अत एवोदीयमानांशक्षयोपशमवृद्ध्या वर्धमानावधिज्ञानोपपत्तिः। यदा चावधिज्ञानाऽऽवरणादीनां सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि विपाकोदयमागतानि भवन्ति तदा तद्विषय औदयिको भावः केवलः प्रवर्तते। केवलमवधिज्ञानावरणीयसर्वघातिरसस्पर्धकानां देशघातितया

शुभप्रकृतीनां नैकस्थानरसवत्त्वमित्युपपादनं तत्संवादिपंचसङ्ग्रहग्रन्थपाठः, क्षयोपशमविचारश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिणामः कदाचिद्विशिष्टगुणप्रतिपत्त्या कदाचिच्च तामन्तरेणैव स्यात्, भवप्रत्ययगुणप्रत्ययभेदेन तस्य द्वैविध्योपदर्शनात् । मनःपर्यायज्ञानावरणीयस्य तु विशिष्टसंयमाप्रमादादिप्रतिपत्तावेव तथास्वभावानामेव बन्धकाले तेषां बन्धनात्, चक्षुर्दर्शनावरणादेरपि तत्तदिन्द्रियपर्याप्त्यादिघटितसामग्र्या तथापरिणामः । मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां तु सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्धकानामुदयो न सर्वघातिनां, ततः सदैव तासामौदयिकक्षायोपशमिकौ भावौ सम्मिश्रौ प्राप्येते, न केवल औदयिक इति उक्तं पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायाम् । एतच्च तासां सर्वघातिरसस्पर्धकानि येन तेनाध्यवसायेन देशघातीनि कर्तुं शक्यन्ते इत्यभ्युपगमे सति उपपद्यते, अन्यथा बन्धोपनीतानां मतिज्ञानावरणादिदेशघातिरसस्पर्धकानामनिवृत्तिबादराद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेष्वेव सम्भवात्तदर्वाग् मतिज्ञानाद्यभावप्रसङ्गः, तदभावे च तद्बललभ्यतदवस्थालाभानुपपत्तिरित्यन्योऽन्याश्रयापातेन मतिज्ञानादीनां मूलत एवाभावप्रसङ्गात् । एवं मतिश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनादीनामपि क्षायोपशमिकत्वेन भणनात्सर्वघातिरसस्पर्धकोदये तदलाभाद्देशघातिरसस्पर्धकानां चार्वागबन्धादध्यवसायमात्रेण सर्वघातिनो देशघातित्वपरिणामानभ्युपगमे सर्वजीवानां तल्लाभानुपपत्तिरिति भावनीयम् । ननु यदि येन तेनाध्यवसायेनोत्कटरसस्पर्धकानां सर्वघातिनां देशघतितया परिणामस्तदार्वाग्दशायां तद्बन्ध एव किं प्रयोजनमिति चेत्, तत्किं प्रयोजनक्षतिभिया सामग्री कार्यं नार्जयतीति वक्तुमध्यवसितोऽसि ? । एवं हि पूर्णे प्रयोजने दृढदण्डनुन्नं चक्रं न भ्राम्येत्, तस्मात्प्रकृते हेतुसमाजादेव सर्वघातिरसस्पर्धकबन्धौपयिकाध्यवसायेन तद्बन्धे तत्तदध्यवसायेन सर्वदा तद्देशघातित्वपरिणामे च बाधकाभावः । तदेवं ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां विपाकोदयेऽपि क्षयोपशमोऽविरुद्ध इति स्थितम् । मोहनीयस्य तु मिथ्या-

क्षयोपशमप्रक्रियायां च मत्यावरणादीनां सर्वघातिरसस्पर्धकान्यपि देशघातितयैवोपभुज्यन्ते तत्र च परकृतारेका तत्परिहारश्च ॥

For Private And Personal Use Only

त्वानन्तानुबन्ध्यादिप्रकृतीनां प्रदेशोदये क्षायोपशमिको भावोऽविरुद्धो, न विपाकोदये, तासां सर्वघातिनीत्वेन तद्रसस्पर्धकस्य तथाविधाध्यवसायेनापि देशघातितया परिणमयितुमशक्यत्वाद्, रसस्य देशघातितया परिणामे तादात्म्येन देशघातिन्या हेतुत्वकल्पनात् । विपाकोदयविष्कम्भणं तु तासु सर्वघातिरसस्पर्धकानां क्षायोपशमिकसम्यक्त्वादिलब्ध्यभिधायकसिद्धान्तबलेन क्षयोपशमान्यथानुपपत्त्यैव तथाविधाध्यवसायेन कल्पनीयम् । केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोस्तु विपाकोदयविष्कम्भाऽयोग्यत्वे स्वभाव एव शरणमिति प्राञ्चः । हेत्वभावादेव तदभावस्तद्धेतुत्वेन कल्प्यमानेऽध्यवसाये तत्क्षयहेतुत्वकल्पनाया एवौचित्यादिति तु युक्तं, तस्मान्मिथ्यात्वादिप्रकृतीनां विपाकोदये न क्षयोपशमसम्भवः, किं तु प्रदेशोदये । न च सर्वघातिरसस्पर्धकप्रदेशा अपि सर्वस्वघात्यगुणघातनस्वभावा इति तत्प्रदेशोदयेऽपि कथं क्षायोपशमिकभावसम्भव इति वाच्यम्, तेषां सर्वघातिरसस्पर्धकप्रदेशानामध्यवसायविशेषेण मनाग्मन्दानुभावीकृतविरलवेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धकेष्वन्तःप्रवेशितानां यथास्थितस्वबलप्रकटनासमर्थत्वात् । मिथ्यात्वाद्यद्वादशकषायरहितानां शेषमोहनीयप्रकृतीनां तु प्रदेशोदये विपाकोदये वा क्षयोपशमोऽविरुद्धः, तासां देशघातिनीत्वात्, तदीयसर्वघातिरसस्य देशघातित्वपरिणामे हेतुश्चारित्रानुगतोऽध्यवसायविशेष एव द्रष्टव्यः, परं ताः प्रकृतयोऽध्रुवोदया इति तद्विपाकोदयाभावे क्षायोपशमिके भावे विजृम्भमाणे प्रदेशोदयवत्योऽपि न ता मनागपि देशघातिन्यः । विपाकोदये तु वर्तमाने क्षायोपशमिकभावसम्भवे मनाग्मालिन्यकारित्वाद्देशघातिन्यस्ता भवन्तीति सङ्क्षेपः ॥ विस्तरार्थिना तु मत्कृतकर्मप्रकृतिविवरणादिविशेषग्रन्था अवलोकनीयाः । उक्ता क्षयोपशमप्रक्रिया ॥ इत्थं च सर्वघातिरसस्पर्धकवन्मतिज्ञानावरणादिक्षयोपशमजनितं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायभेदाच्चतुर्विधं क्षायोपशमिकं ज्ञानं, पञ्चमं च क्षायिकं

मोहनीयप्रकृतिषु क्षयोपशमव्यवस्थोपपादनं क्षयोपशमप्रक्रियोपसंहारश्च ॥ चतुर्विधं ज्ञानं क्षायोपशमिकं पंचमं च क्षायिकमिति निष्टंकनं च ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

केवलज्ञानमिति पञ्च प्रकारा ज्ञानस्य ॥ तत्र मतिज्ञानत्वं श्रुताननुसार्यनतिशयितज्ञानत्वं, अवग्रहादिक्रमवदुपयोगजन्यज्ञानत्वं वा, अवध्यादिकमतिशयितमेव, श्रुतं तु श्रुतानुसार्येवेति न तयोरतिव्याप्तिः । श्रुतानुसारित्वं च धारणात्मकपदपदार्थसम्बन्धप्रातिसन्धानजन्यज्ञानत्वं, तेन न सविकल्पकज्ञानसामग्रीमात्रप्रयोज्यपदविषयताशालिनीहापायधारणात्मके मतिज्ञानेऽव्याप्तिः । ईहादिमतिज्ञानभेदस्य श्रुतज्ञानस्य च साक्षरत्वाविशेषेऽप्ययं घट इत्यपायोत्तरमयं घटनामको न वेति संशयादर्शनात्, तत्रनाम्नोऽप्यपायेन ग्रहणात्, तद्धारणोपयोगे 'इदं पदमस्य वाचकं, अयमर्थ एतत्पदस्य वाच्य' इति पदपदार्थसम्बन्धग्रहस्यापि ध्रौव्येण तज्जनितश्रुतज्ञानस्यैव श्रुतानुसारित्वव्यवस्थितेः । अत एव धारणात्वेन श्रुतहेतुत्वात् " मइपुव्वं सुअं " इत्यनेन श्रुतत्वावच्छेदेन मतिपूर्वत्वविधिः, "न मई सुअपुव्विया" इत्यनेन च मतित्वसामानाधिकरण्येन श्रुतपूर्वत्वनिषेधोऽभिहितः सङ्गच्छते । कथं तर्हि श्रुतनिश्रिताश्रुतनिश्रितभेदेन मतिज्ञानद्वैविध्याभिधानमिति चेद्, उच्यते—स्वसमानाकारश्रुतज्ञानाहितवासनाप्रबोधसमानकालीनत्वे सति श्रुतोपयोगाभावकालीनं श्रुतनिश्रितमवग्रहादिचतुर्भेदं, उक्तवासनाप्रबोधो धारणादार्ढ्यायोपयुज्यते, श्रुतोपयोगाभावश्च मतिज्ञानसामग्रीसम्पादनाय, उक्तवासनाप्रबोधकाले श्रुतज्ञानोपयोगबलाच्छ्रुतज्ञानस्यैवापत्तेः, मतिज्ञानसामग्र्याः श्रुतज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वेऽपि शाब्देच्छास्थानीयस्य तस्योत्तेजकत्वात् । मतिज्ञानजन्यस्मरणस्य मतिज्ञानत्ववत् श्रुतज्ञानजन्यस्मरणमपि च श्रुतज्ञानमध्य एव परिगणनीयम् । उक्तवासनाप्रबोधासमानकालीनं च मतिज्ञानमौत्पत्तिक्यादिचतुर्भेदमश्रुतनिश्रितमित्यभिप्रायेण द्विधाविभागे दोषाभावः । तदिदमाह महाभाष्यकारः—"पुव्विं सुअपरिकम्मिय—मइस्स जं संपयं सुआईअं ॥ तं निस्सियमियरं पुण, अणिस्सिअं मइचउक्कं तं ॥ १६९ ॥ (ज्ञानार्णव पत्र २५) इति "। अपूर्वचैत्रादिव्यक्तिबुद्धौ त्वौत्पत्तिकीत्वमेवाश्रयणीयम् ।

मतिज्ञानलक्षणोपदर्शनं तत्र श्रुतानुसारित्वं लक्षितं श्रुतनिश्रिताऽश्रुतनिश्रितभेदेन मतिद्वैविध्योपपादनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐन्द्रियकश्रुतज्ञानसामान्ये धारणात्वेन तदिन्द्रियजन्यश्रुते तदिन्द्रियजन्यधारणात्वेनैव वा हेतुत्वात् । प्रागनुपलब्धेऽर्थे श्रुतज्ञानाहितवासनाप्रबोधाभावेन श्रुतनिश्रितज्ञानासम्भवात्, धारणायाः श्रुतहेतुत्व एव च मतिश्रुतयोर्लब्धियौगपद्येऽप्युपयोगक्रमः सङ्गच्छते, प्रागुपलब्धार्थस्य चोपलम्भे धारणाहितश्रुतज्ञानाहितवासनाप्रबोधान्वयाच्छ्रुतनिश्रितत्वमावश्यकम्, धारणादिरहितानामेकेन्द्रियादीनां त्वाहारादिसंज्ञान्यथानुपपत्त्यान्तर्जल्पाकाराविवक्षितार्थवाचकं शब्दसंस्पृष्टार्थज्ञानरूपं श्रुतज्ञानं क्षयोपशममात्रजनितं जात्यन्तरमेव, आप्तोक्तस्य शब्दस्योहाख्यप्रमाणेन पदपदार्थशक्तिग्रहानन्तरमाकाङ्क्षाज्ञानादिसाचिव्येन जायमानं तु ज्ञानं स्पष्टधारणाप्रायमेव, शाब्दबोधपरिकरीभूतश्च यावान् प्रमाणान्तरोत्थापितोऽपि बोधः सोऽपि सर्वः श्रुतमेव । अत एव " पदार्थवाक्यार्थमहावाक्यार्थैदम्पर्यार्थभेदेन चतुर्विधवाक्यार्थज्ञाने ऐदम्पर्यार्थनिश्चयपर्यन्तं श्रुतोपयोगव्यापारात् सर्वत्र श्रुतत्वमेव " इत्यभियुक्तैरुक्तमुपदेशपदादौ । तत्र "सव्वे पाणा सव्वे भूआ सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा" इत्यादौ यथाश्रुतमात्रप्रतीतिः पदार्थबोधः । एवं सति हिंसात्वावच्छेदेनानिष्टसाधनत्वप्रतीतेराहारविहारदेवार्चनादिकमपि प्राणोपघातहेतुत्वेन हिंसारूपत्वादकर्तव्यं स्यादिति वाक्यार्थबोधः । यतनया क्रियमाणा आहारविहारादिक्रिया न पापसाधनानि, चित्तशुद्धिफलत्वात्, अयतनया क्रियमाणं तु सर्वं हिंसान्तर्भावात् पापसाधनमेवेति महावाक्यार्थबोधः । 'आज्ञैव धर्मे सार' इत्यपवादस्थलेऽपि गीतार्थयतनाकृतयोगिकारणपदैर्निषिद्धस्याप्यदुष्टत्वं, विहितक्रियामात्रे च स्वरूपहिंसासम्भवेऽप्यनुबन्धहिंसाया अभावान्न दोषलेशस्याप्यवकाश इत्यैदम्पर्यार्थबोधः । एतेषु सर्वेष्वेकदीर्घोपयोगव्यापारान्न श्रुतान्यज्ञानशङ्का, ऐदम्पर्यबोधलक्षणफलव्याप्यतयैव श्रुतस्य लोकोत्तरप्रामाण्यव्यवस्थितेर्वाक्येऽपि क्रमिकतावद्बोधजनके तथात्वव्युत्पत्तिप्रतिसन्धानवति व्युत्पत्तिमति पुरुषे न विरम्यव्यापारादिदूषणावकाशः ।

शाब्दबोधपरिकरीभूतबोधमात्रस्य श्रुतत्वं पदार्थबोधादिचतुर्विधवाक्यार्थबोधस्य श्रुतत्वमुपपादितम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापारो, 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थ' इति नयाश्रयणात्। एतेन 'न हिंस्यादित्यादिनिषेधविधौ विशेषविधिबाधपर्यालोचनयाऽनुमितौ व्यापकतानवच्छेदकेनापि विशेषरूपेण व्यापकस्यैव शाब्दबोधे तत्ताद्विहितेतरहिंसात्वेन वृत्त्यनवच्छेदकरूपेणापि निषेध्यस्य प्रवेश' इति निरस्तम्। उक्तबाधपर्यालोचनस्य प्रकृतोपयोगान्तर्भावेऽस्मदुक्तप्रकारस्यैव साम्राज्यात्, तदनन्तर्भावे च तस्य सामान्यवाक्यार्थबोधेन सह मिलनाभावेन विशेषपर्यवसायकत्वासम्भवात्। अव्यवहितद्वित्रिक्षणमध्ये एकविशेषबाधप्रतिसन्धानमेव सामान्यवाक्यार्थस्य तदितरविशेषपर्यवसायकमिति कल्पनायां न दोष इति चेत्, न, द्वित्रक्षणाननुगमात्, पटुसंस्कारस्य पञ्चषक्षणव्यवधानेऽपि फलोत्पत्तेश्च, संस्कारपाटवस्यैवानुगतस्यानुसरणौचित्यात्, तच्च गृहीतेऽर्थे मतिश्रुतसाधारणविचारणोपयोग एवोपयुज्यते, अत एव सामान्यनिषेधज्ञाने विरोधसम्बन्धेन विशेषविधिस्मृतावपि विचारणया तदितरविशेषपर्यवसानम्। अपि च 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यत्र यथा परेषां प्रथमं स्वर्गत्वसामानाधिकरण्येनैव यागकार्यताग्रहोऽनन्तरं चानुगतानतिप्रसक्तकार्यगतजातिविशेषकल्पनं, तथा प्रकृतेऽपि हिंसात्वसामानाधिकरण्येन पापजनकत्वबोधेऽनन्तरं तद्गतहेतुतावच्छेदकानुगतानतिप्रसक्तरूपकल्पने किं बाधकं, सर्वशब्दबलेन हिंसासामान्योपस्थितावपि तद्गतहेतुस्वरूपानुबन्धकृतविशेषस्य कल्पनीयत्वात्। सैव च कल्पना वाक्यार्थबोधात्मिकेति न तदुच्छेदः॥

किञ्च पदार्थबोधाद्धिंसासामान्येऽनिष्टसाधनत्वग्रहे आहारविहारादिक्रियास्वनिष्टसाधनत्वव्याप्यहिंसात्वारोपेणानिष्टसाधनत्वारोपलक्षणतर्कात्मक एव वाक्यार्थबोधः, तस्य युक्त्या विपर्ययपर्यवसानात्मको महावाक्यार्थबोधः, ततो हेतुस्वरूपानुबन्धत्रयविषय एव हिंसापदार्थ इत्यैदम्पर्यार्थबोधः, इत्येते बोधा अनुभवसिद्धत्वादेव दुर्वाराः। श्रुतज्ञानमूलोहादेश्च श्रुतत्वं

सव्वे पाणा सव्वे भूआ-ण हंतव्वा इ-त्यादौ पदार्थ-बोधादिच-तुर्विधवा-क्यार्थबोध-स्योपपाद-नम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतिज्ञानमूलोहादेर्मतिज्ञानत्ववदेवाभ्युपेयम् । अत एव श्रुतज्ञानाभ्यन्तरीभूतमतिविशेषैरेव षट्स्थानपतितत्वं चतुर्दशपूर्वविदामप्याचक्षते सम्प्रदायवृद्धाः । तथा चोक्तं कल्पभाष्ये–" अरकरलंभेण समा, ऊणहिया हुंति मइविसेसेहिं । ते वि य मईविसेसा, सुअनाणब्भंतरे जाण ॥१॥" (विशे. गा. १४३ ज्ञानार्ण० प० १८) यदि च सामान्यश्रुतज्ञानस्य विशेषपर्यवसायकत्वमेव मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानाभ्यन्तरीभूतत्वमुपयोगाविच्छेदेऽप्येकोपयोगव्यवहारश्च फलप्राधान्यादेवेति विभाव्यते, तदा पदार्थं बोधयित्वा विरतं वाक्यं वाक्यार्थबोधादिरूपविचारसहकृतमावृत्त्या विशेषं बोधयदैदम्पर्यार्थकत्वव्यपदेशं लभत इति मन्तव्यम् । परं शब्दसंसृष्टार्थग्रहणव्यापृतत्वे पदपदार्थसम्बन्धग्राहकोहादिवत्तस्य कथं न श्रुतत्वम् ?, " शब्दसंसृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः (त्रिकाल सा)धारणसमानपरिणामः श्रुतम् " इति नन्दीवृत्त्यादौ दर्शनात् ॥ [नन्दीवृत्तावयं पूर्णपाठः–तथा श्रवणं श्रुत वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः, 'एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दवाच्यम्' इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारीन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः] "सोइंदिओवलद्धी, होइ सुअं सेसयं तु मइनाणं ॥ मोत्तूणं दव्वसुअं, अक्खरलंभो अ सेसेसु ॥११७॥" (ज्ञानार्ण०प०१२)इति पूर्वगतगाथायामप्ययमेव स्वरसो लभ्यते। तथा चास्या अर्थः-श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमित्यवधारणं, न तु श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेवेति । अवग्रहेहादिरूपायाः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेरपि मतिज्ञानरूपत्वात् । यद्भाष्यकारः– "सोइंदिओवलद्धी,चेव सुअं न उ तई सुअं चेव। सोइंदिओवलद्धी,वि काई जम्हा मइन्नाणं ॥१२२॥"(ज्ञाना०प० १३) शेषं तु यच्चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धिरूपं तन्मतिज्ञानं, तुशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, स चावग्रहेहादिरूपां श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिमपि समुच्चिनोति, यद्भा-

श्रुतज्ञानमूलोहादेः श्रुतत्वं, ततः श्रुतज्ञानाभ्यन्तरीभूतमतिविशेषैरेव पूर्वविदां षट्स्थानपतितत्वं तत्र संवादोपदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ष्यकारः-"तु समुच्चयवयणाओ, काई सोइंदिओवलद्धी वि। मई एवं सइ सोउ-ग्गहादिओ होंति मईभेया॥१२३॥"(ज्ञानाना०प० १३) अपवादमाह-मुक्त्वा द्रव्यश्रुतं पुस्तकपत्रादिन्यस्ताक्षररूपं,तदाहितायाः शब्दार्थपर्यालोचनात्मिकायाः शेषेन्द्रियोपलब्धेरपि श्रुतत्वात्। अक्षरलाभश्च यः शेषेष्वपीन्द्रियेषु शब्दार्थपर्यालोचनात्मकः, न तु केवलः, तस्येहेहादिरूपत्वात्, तमपि मुक्त्वेति सोपस्कारं व्याख्येयम्। नन्वेवं शेषेन्द्रियेष्वप्यक्षरलाभस्य श्रुतत्वोक्तेः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतमिति प्रतिज्ञा विशीर्येत, मैवम्, तस्यापि श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिकल्पत्वादिति बहवः। श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिपदेन श्रोत्रेन्द्रियजन्यव्यञ्जनाक्षरज्ञानाहिता शाब्दी बुद्धिः, द्रव्यश्रुतपदेन च चक्षुरादीन्द्रियजन्यसंज्ञाक्षरज्ञानाहिता सा, अक्षरलाभपदेन च तदतिरिक्तश्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमजनिता बुद्धिर्गृह्यत इति सर्वसाधारणो धारणाप्रायज्ञानवृत्तिः शब्दसंसृष्टार्थाकारविशेष एवानुगतलक्षणम्। त्रिविधाक्षरश्रुताभिधानप्रस्तावेऽपि संज्ञाव्यञ्जनयोर्द्रव्यश्रुतत्वेन, लब्धिपदस्य चोपयोगार्थत्वेन व्याख्यानात्। तत्र चानुगतमुक्तमेव लक्षणमिति। इह गोवृषन्यायेन त्रिविधोपलब्धिरूपभावश्रुतग्रहणमिति त्वस्माकमाभाति। अवग्रहादिक्रमवदुपयोगत्वेनापि च मतिज्ञान एव जनकता,न श्रुतज्ञाने तत्र शाब्दोपयोगत्वेनैव हेतुत्वात्, मतिज्ञाने च-"नानवगृहीतमीह्यते, नानीहितमपेयते, नानपेतं च धार्यते,"इति क्रमनिबन्धनमन्वयव्यतिरेकनियममामनन्ति मनीषिणः। तत्रावग्रहस्येहायां धर्मिज्ञानत्वेन, तद्वान्तरधर्माकारेहायां तत्सामान्यज्ञानत्वेन वा। ईहायाश्च तद्धर्मप्रकारतानिरूपिततद्धर्मिनिष्ठसिद्धत्वाख्यविषयतावदपायत्वावच्छिन्ने तद्धर्मप्रकारतानिरूपिततद्धर्मिनिष्ठसाध्यत्वाख्यविषयतावदीहात्वेन,घटाकारावच्छिन्नसिद्धत्वाख्यविषयतावदपायत्वावच्छिन्ने तादृशसाध्यत्वाख्यविषयतावदीहात्वेन वा,धारणायां चापायस्य समानप्रकारकानुभवत्वेन,विशिष्टभेदे समानविषयकानुभवत्वेन वा कार्यकारणभावः। तत्रावग्रहो द्विविधो व्यञ्जनावग्रहार्थावग्र-

श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेः श्रुतत्वं द्रव्यश्रुतं मुक्त्वा शेषेन्द्रियोपलब्धेर्मतित्वमुपपादितम्, मतिज्ञाने अवग्रहादीनां कार्यकारणभावोपदर्शनम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हभेदात्। तत्र व्यञ्जनेन शब्दादिपरिणतद्रव्यनिकुरम्बेण व्यञ्जनस्य श्रोत्रेन्द्रियादेरवग्रहः सम्बन्धो व्यञ्जनावग्रहः, स च मल्लकप्रतिबोधकदृष्टान्ताभ्यां सूत्रोक्ताभ्यामसङ्ख्येयसमयभावी। तस्यामप्यवस्थायामव्यक्ता ज्ञानमात्रा, प्रथमसमयेऽशेनाभवतश्चरमसमये भवनान्यथानुपपत्त्या भाष्यकृता प्रतिपादिता। युक्तं चैतत्, निश्चयतोऽविकलकारणस्यैव कार्योत्पत्तिव्याप्यत्वाद्, अविकलं च कारणं ज्ञाने उपयोगेन्द्रियमेव, तच्च व्यञ्जनावग्रहकाले लब्धसत्ताकं कथं न स्वकार्यं ज्ञानं जनयेदिति, अयमुपयोगस्य कारणांशः। ननु व्यञ्जनावग्रहः प्राप्यकारिणामेवेन्द्रियाणामुक्तो नाप्राप्यकारिणोश्चक्षुर्मनसोरिति तत्र कः कारणांशो वाच्यः?, यद्यर्थावग्रहस्तर्हि सर्वत्र स एवास्त्विति चेत्, न, तत्राप्यर्थावग्रहात्प्राग् लब्धीन्द्रियस्य ग्रहणोन्मुखपरिणाम एवोपयोगस्य कारणांश इत्यभ्युपगमात्। न च सर्वत्रैकस्यैवाश्रयणमिति युक्तम्, इन्द्रियाणां प्राप्यकारित्वाप्राप्यकारित्वव्यवस्थाप्रयुक्तस्य ह्रस्वदीर्घकारणांशभेदस्यागमयुक्त्युपपन्नत्वेन प्रतिबन्दिपर्यनुयोगानवकाशात्। अर्थावग्रहः सामान्यमात्रग्रहः, यतः किञ्चिद् दृष्टं मया न तु परिभावितमिति व्यवहारः, स चैकसामयिकः, तत ईहोपयोग आन्तर्मौहूर्तिकः प्रवर्तते, स च सद्भूताऽसद्भूतविशेषोपादानत्यागाभिमुखबहुविचारणात्मकः पर्यन्ते तत्तत्प्रकारेण धर्मिणि साध्यत्वाख्यविषयताफलवान् भवति। अत एव "फलप्रवृत्तौ ज्ञानप्रामाण्यसंशयवत्करणप्रवृत्तावपीन्द्रियादिगतगुणदोषसंशयेन विषयसंशयादिन्द्रियसाद्गुण्यविचारणमपीहयैव जन्यते, केवलमभ्यासदशायां तज्झटितिजायमानत्वात् कालसौक्ष्म्येण नोपलक्ष्यते, अनभ्यासदशायां तु वैपरीत्येन स्फुटमुपलक्ष्यत" इति मलयगिरिप्रभृतयो वदन्ति। एवं सति स्वजन्यापाये सर्वत्रार्थयाथात्म्यनिश्चयस्येहयैव जन्यमानत्वात् "तदुभयमुत्पत्तौ परत एव, ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्च" इत्याकर (प.१-२०) सूत्रं विरुध्येत, तदुभयं प्रामाण्यमप्रामाण्यं च, परत एवेति कारणगतगुणदोषापेक्षयेत्यर्थः, स्वतः

व्यञ्जनार्थावग्रहभेदेनावग्रहद्वैविध्यं व्यञ्जनस्वरूपद्वैविध्यं व्यञ्जनावग्रहनिरूपणञ्च ततोऽर्थावग्रहादीनां निरूपणम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परतश्चेति, संवादकबाधकज्ञानानपेक्षया जायमानत्वं स्वतस्त्वं, तच्चाभ्यासदशायां, केवलक्षयोपशमस्यैव तत्र व्यापारात्, तदपेक्षया जायमानत्वं च परतस्त्वं, तच्चानभ्यासदशायां, अयं च विभागो विषयापेक्षया, स्वरूपे तु सर्वत्र स्वत एव प्रामाण्यनिश्चय इत्यक्षरार्थ इति।" ईहयैव हि सर्वत्र प्रामाण्यनिश्चयाभ्युपगमे किं संवादकप्रत्ययापेक्षया?, न खल्वेकं गमकमपेक्षितमिति गमकान्तरमप्यपेक्षणीयम्। न चेहाया बहुविधत्वाद्यत्र न करणसाद्गुण्यासाद्गुण्यविचारस्तत्रैवोक्तस्वतस्त्वपरतस्त्वव्यवस्थेति वाच्यम्, ईहायां क्वचिदुक्तविचारव्यभिचारोपगमे आभ्यासिकापायपूर्वेहायामनुपलक्ष्यमाणस्यापि तद्विचारस्य नियमकल्पनानुपपत्तेः। न चोक्तविचार ईहायां प्रमाजनकतावच्छेदको न तु तज्ज्ञप्तिजनकतावच्छेदक इत्यपि युक्तम्, करणगुणादेव प्रमोत्पत्तौ तस्यातथात्वात्। न च भाविज्ञानस्यासिद्धत्वादुक्तविचारवत्यापीहया तद्गतप्रामाण्याग्रह इत्यपि साम्प्रतम्, विचारेण करणसाद्गुण्यग्रहे भाविज्ञानप्रामाण्यग्रहस्यापि सम्भृतसामग्रीकत्वादित्यादिविचारणीयम्। ननु भवतां सैद्धान्तिकमते उपयोगेऽवग्रहादिवृत्तिचतुष्टयव्याप्यत्वं, एकत्र वस्तुनि प्राधान्येन सामान्यविशेषोभयावगाहित्वपर्याप्त्याधारत्वं वा, तार्किकमते च प्रमेयाव्यभिचारित्वं प्रामाण्यमयोग्यत्वादभ्यासेनापि दुर्ग्रहं, समर्थप्रवृत्त्यनौपयिकत्वेनानुपादेयं च। पौद्गलिकसम्यक्त्ववतां सम्यक्त्वदलिकान्वितोऽपायांशः प्रमाणं, क्षायिकसम्यक्त्ववतां च केवलोऽपायांश इति तत्त्वार्थवृत्त्यादिवचनतात्पर्यपर्यालोचनायां तु सम्यक्त्वसमानाधिकरणापायत्वं ज्ञानस्य प्रामाण्यं पर्यवस्यति, अन्यथाऽननुगमात्, तत्र च विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरहः। ज्ञानं प्रमाणमितिवचनं विनिगमकमिति चेत्, तदपि समर्थप्रवृत्त्यौपयिकेन रूपेण विनिगमयेत् न तु विशिष्टापायत्वेनानीदृशेन, 'सम्यक्त्वानुमतत्वेन ज्ञानस्य ज्ञानत्वं, अन्यथा त्वज्ञानत्वं' इति व्यवस्था तु नापायमात्रप्रामाण्यसाक्षिणी, सम्यग्दृष्टिसम्बन्धिनां

मलयगिरिप्रभृत्यभिप्रायेण सर्वत्रेहयैव प्रामाण्यनिश्चयोपगमे रत्नाकरसूत्रविरोध उपदर्शितः, जैनाभिमते प्रामाण्याप्रामाण्यस्वतस्त्वपरतस्त्वानैकान्ते दोषोपदर्शनम्।

For Private And Personal Use Only

संशयादीनामपि ज्ञानत्वस्य महाभाष्यकृता परिभाषितत्वात् । न च सम्यक्त्वसाहित्येन ज्ञानस्य रुचिरूपत्वं सम्पद्यते, रुचिरूपं च ज्ञानं प्रमाणमिति सम्यक्त्वविशेषणोपादानं फलवदित्यपि साम्प्रतम्, एतस्य व्यवहारोपयोगित्वेऽपि प्रवृत्त्यनुपयोगित्वात् । न च घटाद्यपायरूपा रुचिरपि सम्यक्त्वमिति व्यवहरन्ति सैद्धान्तिकाः, जीवाजीवादिपदार्थनवकविषयकसमूहालम्बनज्ञानविशेषस्यैव रुचिरूपतयाम्नातत्वात्, केवलं 'सत्संख्यादिमार्गणास्थानैस्तन्निर्णयो भावसम्यक्त्वं,' 'सामान्यतस्तु द्रव्यसम्यक्त्वम्' इति विशेष इति । न च घटाद्यपायेऽपि रुचिरूपत्वमिष्टमेव, सदसद्विशेषणाविशेषणादिना सर्वत्र ज्ञानाज्ञानव्यवस्थाकथनात्, तदेव च प्रामाण्यमप्रत्यूहमिति वाच्यं,अनेकान्तव्यापकत्वादिप्रतिसन्धानाहितवासनावतामेव तादृशबोधसम्भवात्,तदन्येषां तु द्रव्यसम्यक्त्वेनैव ज्ञानसद्भावव्यवस्थितेः । अत एव "चरणकरणप्रधानानामपि स्वसमयपरसमयमुक्तव्यापाराणां द्रव्यसम्यक्त्वेन चारित्रव्यवस्थितावपि भावसम्यक्त्वाभावः" प्रतिपादितः सम्मतौ महावादिना । द्रव्यसम्यक्त्वं च, "तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनेन्द्रैः प्रवेदितमिति" ज्ञानाहितवासनारूपं,माषतुषाद्यनुरोधाद् 'गुरुपारतंत्र्यरूपं वा' इत्यन्यदेतत् । तस्मान्नैते प्रामाण्यप्रकाराः प्रवृत्त्यौपयोगिकाः । तद्वति तत्प्रकारकत्वरूपं ज्ञानप्रामाण्यं तु प्रवृत्त्यौपयिकमवशिष्यते, तस्य च स्वतो ग्राह्यत्वमेवोचितम् । न्यायनयेऽपि ज्ञाने पुरोवर्तिविशेष्यताकत्वस्य रजतत्वादिप्रकारकत्वस्य चानुव्यवसायग्राह्यतायामविवादात्, इमं रजतत्वेन जानामीति प्रत्ययात्, तत्र विशेष्यत्वप्रकारत्वयोरेव द्वितीयातृतीयार्थत्वात्, तत्र पुरोवर्ति इदन्त्वेन रजतत्वादिनापि चोपनयवशाद्भासताम् । न चेदन्त्ववैशिष्ट्यं पुरोवर्तिनि न भासत इति वाच्यम्, विशेष्यतायां पुरोवर्तिनः स्वरूपतो भानानुपपत्तेः तादृशविशेषणज्ञानाभावात्, अन्यथा प्रमेयत्वादिना रजतादिज्ञानेऽपि तथाज्ञानापत्तेः, जात्यतिरिक्तस्य किञ्चिद्धर्मप्रकारेणैव भाननियमाच्च । किञ्च प्रामाण्य-

उपयोगेऽवग्रहादिषून्ति चतुष्टयव्याप्यत्वादिलक्षणं सम्यक्त्वसमानाधिकरणापायत्वादिलक्षणं च प्रामाण्यं न प्रवृत्त्यौपयिकं तादृशं च तद्वति तत्प्रकारकत्वं स्वतो ग्राह्यमेवेति प्रश्नः।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संशयोत्तरमिदं रजतं न वेत्येव संशयो, न तु रजतमिदं न वा, द्रव्यं रजतं न वेत्यादिरूप इति, यद्विशेष्यकयत्प्रकारकज्ञानत्वावच्छेदेन प्रामाण्यसंशयस्तद्धर्मविशिष्टे तत्प्रकारकसंशय इति नियमादिदन्त्वेन धर्मिभानमावश्यकं,इदन्त्वरजतत्वादिना पुरोवर्तिन उपनयसत्त्वाच्च तथाभानमनुव्यवसाये दुर्वारमिति किमपरमवशिष्यते प्रामाण्ये ज्ञातुम् । न चैकसम्बन्धेन तद्वति सम्बन्धान्तरेण तत्प्रकारकज्ञान-व्यावृत्तं, तेन सम्बन्धेन तत्प्रकारकत्वमेव प्रामाण्यं, तच्च दुर्ग्रहमिति वाच्यं, व्यवसाये येन सम्बन्धेन रजतत्वादिकं प्रकारस्तेन तद्वतोऽनुव्यवसाये भानात्, संसर्गस्य तु तत्त्वेनैव भानात् । तत्प्रकारकत्वं च वस्तुगत्या तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकत्वमिति प्रकारताकत्वकुक्षिप्रवेशेनैव वा तद्ग्रहः । अत एवेदं रजतमिति तादात्म्यारोपव्यावृत्तये मुख्यविशेष्यता प्रामाण्ये निवेशनीयेति मुख्यत्वस्य दुर्ग्रहत्वमित्युक्तेरप्यनवकाशो, वस्तुगत्या मुख्यविशेष्यताया एव निवेशात्, तादात्म्यारोपे आरोप्यांशे समवायेन प्रामाण्यसत्त्वेऽप्यक्षतेश्च । एतेन 'तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकत्वमात्रं न प्रामाण्यं,'इमे रङ्गरजते' 'नेमे रङ्गरजते' इति विपरीतचतुष्कभ्रमसाधारण्यात्, किं तु तद्वद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वं, तच्च प्रथमानुव्यवसाये दुर्ग्रहम्' इत्यपि निरस्तम् ॥

वस्तुगत्या तादृशप्रकारताकत्वस्य सुग्रहत्वादेव तद्ग्रहेऽनुव्यवसायसामग्र्याऽसामर्थ्यस्य व्यवसायप्रतिबन्धकत्वस्य वा कल्पनमभिनिवेशेन स्वबुद्धिविडम्बनामात्रं,तथाकल्पनायामप्रामाणिकगौरवात् ।एतेन 'विधेयतयाऽनुव्यवसाये स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यभाने व्यवसायप्रतिबन्धकत्वकल्पनापि' परास्ता । तत्र तद्वद्विशेष्यकतोपस्थितितदभाववद्विशेष्यकत्वाभावोपस्थित्यादीनामुत्तेजकत्वादिकल्पने महागौरवात् । यदि च विशेष्यत्वादिकमनुपस्थितं न प्रकारः, तदा विशेष्यतासम्बन्धेन रजतादिमत्त्वे सति प्रकारितया रजतत्वादिमत्त्वमेव प्रामाण्यमस्तु । एतज्ज्ञानमेव लाघवात्प्रवृत्त्यौपयिकं । तस्माज्ज्ञप्तौ प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमेव युक्तम् ।

प्रवृत्त्यौपयिकनिरुक्तप्रामाण्यस्य ज्ञप्तौ स्वतस्त्वमेवेति प्रश्ननिगमनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अप्रामाण्यं तु नानुव्यवसायग्राह्यं, रजतत्वाभाववत्त्वेन पुरोवर्त्तिनोऽग्रहणे तथोपनीतभानायोगात्, रजतत्वादिमत्तया शुक्त्यादिधी-विशेष्यकत्वं रजतत्वप्रकारकत्वं च तत्र गृह्यते, अत एव, 'अप्रमापि प्रमेत्येव गृह्यते' इति चिन्तामणिग्रन्थः 'प्रमेतीत्येव व्याख्यातस्तांत्रिकैः इत्यप्रामाण्यस्य परतस्त्वमेव। न च प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वे ज्ञानप्रामाण्यसंशयानुपपत्तिः, ज्ञानग्रहे प्रामाण्यग्रहात्तदग्रहे धर्मिग्रहाभावादिति वाच्यं, दोषात् तत्संशयाद्धर्मीन्द्रियसन्निकर्षस्यैव संशयहेतुत्वात्। प्राक् प्रामाण्याभावो-पस्थितौ धर्मिज्ञानात्मक एव वाऽस्तु प्रामाण्यसंशय इति स्वतस्त्वपरतस्त्वानेकान्तः प्रामाण्याप्रामाण्ययोर्जैनानां न युक्त इति चेद्, अत्र ब्रूमः। रजतत्ववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्वप्रकारताकत्वरूपस्य रजतज्ञानप्रामाण्यस्य वस्तुतोऽनुव्यवसायेन ग्रहणात्, स्वतस्त्वाभ्युपगमेऽप्रामाण्यस्यापि स्वतस्त्वापातः, रजतभ्रमानुव्यवसायेनापि वस्तुतो रजतत्वाभाववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्व-प्रकारताकत्वस्यैव ग्रहात्, तत्र चास्माभिरनेकान्तवादिभिरिष्टापत्तिः कर्तुं शक्यते, द्रव्यार्थतः प्रत्यक्षस्य योग्यद्रव्यप्रत्यक्षीकर-णवेलायां तद्गतानां योग्यायोग्यानां धर्माणां सर्वेषामभ्युपगमात्, 'स्वपरपर्यायापेक्षयाऽनन्तधर्मात्मकं तत्त्वम्' इति वासनावत एकज्ञत्वे सर्वज्ञत्वध्रौव्याभ्युपगमाच्च, (आचाराङ्ग) "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ त्ति" पारम-र्षस्येत्थमेव स्वारस्यव्याख्यानात्। **अवोचाम चाध्यात्मसारप्रकरणे**-(प्रबन्ध २) "आसत्तिपाटवाभ्यास-स्वकार्यादिभिरा-श्रयन् ॥ पर्यायमेकमप्यर्थं, वेत्ति भावाद् बुधोऽखिलम् ॥वै. भेदप्र. ३०॥" इति। न चेयं रीतिरेकान्तवादिनो भवत इति प्रतीच्छ प्रतिबन्दिदण्डप्रहारम्। ननु रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारत्वयोरेव ज्ञानोपरि भानं, अवच्छिन्नत्वं तु तयोरेव मिथः संसर्गः, एकत्र भासमानयोर्द्वयोर्धर्मयोः परस्परमपि सामानाधिकरण्येनैवावच्छिन्नत्वेनाप्यन्वयसम्भवादित्येवं प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वं,

अप्रामाण्यस्य तु परतो ग्राह्यत्वमेवेति प्रामाण्याऽप्रामाण्ययोः स्वतस्त्वपरतस्त्वानेकान्तो जैनानां न युक्त इति प्रश्नप्रतिविधानम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अप्रामाण्यस्य तु न तथात्वं, रजतत्वाभावस्य व्यवसायेऽस्फुरणेन तद्वद्विशेष्यकत्वस्य ग्रहीतुमशक्यत्वात्, ज्ञानग्राहकसामग्र्यास्तूपस्थितविशेष्यत्वादिग्राहकत्व एव व्यापारादित्येवमदोष इति चेत्, न, प्रामाण्यशरीरघटकस्यावच्छिन्नत्वस्य संसर्गतया भानोपगमे कात्स्न्र्येन प्रामाण्यस्य प्रकारत्वासिद्धेः, अंशतः प्रकारतया भानं च स्वाश्रयविशेष्यकत्वावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन रजतत्वस्य ज्ञानोपरि भानेऽपि सम्भवतीति तावदेव प्रामाण्यं स्याद् ॥ अस्त्वेवं ज्ञानग्राहकसामग्र्यास्तथाप्रामाण्यग्रह एव सामर्थ्यात्, अत एव नाप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमिति चेत्, न, एवमभ्युपगमे अप्रमापि प्रमेतीत्येव गृह्यते इत्यस्य व्याघातात्तत्र रजतत्वस्य ज्ञानोपर्युक्तसम्बन्धासम्भवात्, कम्बुग्रीवादिमान्नास्ति वाच्यं नास्तीत्यादावन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताया इव प्रकृते उक्तसम्बन्धस्य तत्तदवगाहितानिरूपितावगाहितारूपा विलक्षणैव खण्डशः सांसर्गिकविषयतेति न दोष इति चेत्, न, तत्रापि लक्षणादिनैव बोधः, उक्तप्रतियोगितायास्तु घटो नास्तीत्यादावेव स्वरूपतः संसर्गत्वं, उक्तं च मिश्रैः–"अर्थापत्तौ नेह देवदत्त इत्यत्र प्रतियोगित्वं स्वरूपत एव भासत इत्येवं समर्थनात्" वस्तुतोऽस्माकं सर्वापि विषयता द्रव्यार्थतोऽखण्डा, पर्यायार्थतश्च सखण्डेति सम्पूर्णप्रामाण्यविषयताशालिबोधो न संवादकप्रत्ययं विना, न वा तादृशाप्रामाण्यविषयताकबोधो बाधकप्रत्ययं विना,इत्युभयोरनभ्यासदशायां परतस्त्वमेव, अभ्यासदशायां तु क्षयोपशमविशेषसध्रीचीनया तादृशतादृशेहया तथा तथोभयग्रहणे स्वतस्त्वमेव, अत एव प्रामाण्यान्तरस्यापि न दुर्ग्रहत्वं, स्वोपयोगापृथग्भूतेहोपनीतप्रकारस्यैवापायेन ग्रहणात्, तादृशी च प्रामाण्यविषयता नावग्रहमात्रप्रयोज्यत्वेन लौकिकी, नापि पृथगुपयोगप्रयोज्यत्वेनालौकिकी, किन्तु विलक्षणैवेति न किञ्चिदनुपपन्नमनन्तधर्मात्मकवस्त्वभ्युपगमे।अत एव 'वस्तुसदृशो ज्ञाने ज्ञेयाकारपरिणाम' इति विलक्षणप्रामाण्याकारवादेऽपि न क्षतिः। एवञ्च

प्रामाण्यस्य ज्ञप्तौ स्वतस्त्वमेवाप्रामाण्यस्य परतस्त्वमेवेति मुरारिमिश्रमतस्य खण्डनं अनभ्यासदशायामुभयोः परतस्त्वमभ्यासदशायाञ्च स्वतस्त्वम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भ्रमेऽरजतनिमित्तो रजताकारः, संवृतशुक्त्याकारायाः समुपात्तरजताकारायाः शुक्तेरेव तत्रालम्बनत्वात्, प्रमायां तु रजतनिमित्त इत्याकारतथात्वस्य, परतःस्वतोग्रहाभ्यां 'प्रामाण्याप्रामाण्ययोस्तदनेकान्त' इति प्राचां वाचामपि विमर्शः कान्त एवेति द्रष्टव्यम् । न्यायाभियुक्ता अपि "यथाऽभावलौकिकप्रत्ययस्तद्धर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वमवगाहमान एव तद्धर्मविशिष्टस्य प्रतियोगित्वमवगाहते, तथा ज्ञानलौकिकसाक्षात्कारोऽपि तद्धर्मस्य विशेष्यताद्यवच्छेदकत्वमवगाहमान एव तद्धर्मविशिष्टस्य विशेष्यतादिकमवगाहत इति इदन्त्वाविशिष्टस्यैव विशेष्यत्वमवगाहेत, इदन्त्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वात्, न तु रजतत्वादिविशिष्टस्य, रजतत्वादेरतथात्वाद, इत्थं नियमस्तु लौकिके। तेनोपनयवशादलौकिकतादृशसाक्षात्कारेऽपि न क्षतिः" इति वदन्तो विनोपनयं प्राथमिकानुव्यवसायस्य प्रामाण्याग्राहकत्वमेवाहुः। यदेव च तेषामुपनयस्य कृत्यं तदेवास्माकमीहायाः साध्यमिति कृतं प्रसङ्गेन ॥

प्रकृतमनुसरामः। एताववग्रहेहाख्यौ व्यापारांशौ, ईहानन्तरमपायः प्रवर्तते 'अयं घट एवेति,' अत्र चासत्त्वादिजनितक्षयोपशमवशेन यावानीहितो धर्मस्तावान् प्रकारीभवति, तेनैकत्रैव 'देवदत्तोऽयं' 'ब्राह्मणोऽयं' 'पाचकोऽयं' इत्यादिप्रत्ययभेदोपपत्तिः। इत्थं च रूपाविशेषान्मणिः पद्मराग इत्युपदेशोत्तरमपि तदाहितवासनावतो रूपविशेषाद् 'अनेन पद्मरागेण भवितव्यम्' इतीहोत्तरमेव 'अयं पद्मराग' इत्यपायो युज्यते, उक्तोपदेशः पद्मरागपदवाच्यत्वोपमितावेवोपयुज्यते। अयं पद्मराग इति तु सामान्यावग्रहेहाक्रमेणैवेति नैयायिकानुयायिनः। घट इत्यपायोत्तरमपि यदा किमयं घटः सौवर्णो मार्त्तो वेत्यादिविशेषजिज्ञासा प्रवर्तते, तदा पाश्चात्यापायस्योत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यालम्बनत्वाद्व्यावहारिकावग्रहत्वं, ततः सौवर्ण एवायमित्यादिरपायः, तत्राप्युत्तरोत्तरविशेषजिज्ञासायां पाश्चात्यस्य पाश्चात्यस्य व्यावहारिकावग्रहत्वं द्रष्टव्यम्। जिज्ञासानिवृत्तौ त्वन्त्यविशेषज्ञानमवाय

ज्ञप्तौ प्रामाण्याप्रामाण्ययोः स्वतस्त्वपरतस्त्वानेकान्तस्योपसंहारः, अपायस्य निरूपणं तस्योत्तरविशेषावगमापेक्षया व्यावहारिकार्थग्रहत्वप्रदर्शनम् ॥ ॥ ९६ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एवोच्यते नाऽवग्रहः, उपचारकारणाभावात् । अयं फलांशः ॥ कालमानं त्वस्यान्तर्मुहूर्तमेव, सौदामिनीसम्पातजनितप्रत्यक्षस्य चिरमननुवृत्तेर्व्यभिचार इति चेत्, न, अन्तर्मुहूर्तस्यासङ्ख्यभेदत्वात्, अन्त्यविशेषावगमरूपापायोत्तरमाविच्युतिरूपा धारणा प्रवर्तते, साप्यान्तर्मौहूर्तिकी । अयं परिपाकांशः ॥ वासनास्मृती तु सर्वत्र विशेषावगमे द्रष्टव्ये । तदाह जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः, सामन्नमित्तगहणं, णेच्छइओ समयमोग्गहो पढमो॥ तत्तोणंतरमीहिय-वत्थुविसेसस्स जोवाओ॥२८२॥सो पुणरीहावाया—वेरकाए ओग्गहोत्ति उवयरिओ ॥ एस विसेसावेरकं, सामन्नं गिण्हए जेणं ॥२८३॥ तत्तोणंतरमीहा, तओ अवाओ अ तव्विसेसस्स ॥ इह सामन्नविसेसा—वेरका जावंतिमो भेओ ॥ २८४॥ सव्वत्थेहावाया, णिच्छयओ मोत्तुमाइसामन्नं ॥ संववहारत्थं पुण, सव्वत्थावग्गहोवाओ ॥ २८५॥ तरतमजोगाभावे—वाओ च्चिय धारणा तदंतंमि ॥ सव्वत्थ वासणा पुण, भणिया कालन्तरे सई य ॥२८६॥" (ज्ञानार्णवप.५८—५९) त्ति ॥ न चाविच्युतेरपायावस्थानात्पार्थक्ये मानाभावः, विशेषजिज्ञासानिवृत्त्यवच्छिन्नस्वरूपस्य कथञ्चिद्भिन्नत्वाद्, अवगृह्णामि, ईहे, अवैमि, स्थिरीकरोमीतिप्रत्यया एव च प्रतिप्राण्यनुभवसिद्धा अवग्रहादिभेदे प्रमाणं, स्मृतिजनकतावच्छेदकत्वेनैव वाऽविच्युतित्वं धर्मविशेषः कल्प्यते, तत्तदुपेक्षान्यत्वस्य स्मृतिजनकतावच्छेदककोटिप्रवेशे गौरवादिति धर्मविशेषसिद्धौ धर्मिविशेषसिद्धिरित्यधिकं मत्कृतज्ञानार्णवादवसेयम् ॥ तदेवं निरूपितं मतिज्ञानं ॥

तन्निरूपणेन च श्रुतज्ञानमपि निरूपितमेवाद्वयोरन्योऽन्यानुगतत्वात्तथैव व्यवस्थापितत्वाच्च । अन्ये त्वङ्गोपाङ्गादिपरिज्ञानमेव श्रुतज्ञानमन्यच्च मतिज्ञानमित्यनयोरपि भजनैव, यदुवाच वाचकचक्रवर्त्ती "एकादीन्येकस्मिन्भाज्यानि त्वाचतुर्भ्य इति" (तत्त्वार्थ अ०१—३१)। शब्दसंसृष्टार्थमात्रग्राहित्वेन श्रुतत्वे त्ववग्रहमात्रमेव मतिज्ञानं प्रसज्येत,धारणोत्तरं स्वसमानाकारश्रुतावश्य -

मतिज्ञाननिरूपणे व्यावहारिकाऽवग्रहत्वमवायस्य, अविच्युतेरपायात्पार्थक्यं; मतिज्ञाननिरूपणतःश्रुतज्ञाननिरूपणातिदेशः ॥

For Private And Personal Use Only

म्भावकल्पनं तु स्ववासनामात्रविजृम्भितं, शब्दसंसृष्टाया मतेरेव श्रुतत्वपरिभाषणं तु न पृथगुपयोगव्यापकमिति शाब्दज्ञानमेव श्रुतज्ञानं न त्वपरोक्षमिन्द्रियजन्यमपीत्याहुः। नव्यास्तु "श्रुतोपयोगो मत्युपयोगान्न पृथक्, मत्युपयोगेनैव तत्कार्योपपत्तौ तत्पार्थक्यकल्पनाया व्यर्थत्वात्। अत एव शब्दजन्यसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषजिज्ञासायां तन्मूलकमत्यपायांशप्रवृत्तौ न पृथगवग्रहकल्पनागौरवं, शाब्दसामान्यज्ञानस्यैव तत्रावग्रहत्वात्। न चाशाब्दे शाब्दस्य तत्सामग्र्या वा प्रतिबन्धकत्वध्रौव्यान्नेयं कल्पना युक्तेति वाच्यम्, अशाब्दत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वे प्रतियोगिकोटौ शब्दमूलमतिज्ञानस्यापि प्रवेशात्, अन्यथा श्रुताभ्यन्तरीभूतमतिज्ञानोच्छेदप्रसङ्गात्। किञ्च शाब्दज्ञानरूपश्रुतस्यावग्रहादिक्रमवतो मतिज्ञानाद्भिन्नत्वोपगमेऽनुमानस्मृतितर्कप्रत्यभिज्ञानादीनामपि तथात्वं स्यादित्यतिप्रसङ्गः, सांव्यवहारिकप्रत्यक्षत्वाभावस्यापि तेषु तुल्यत्वात्। यदि चावग्रहादिभेदाः सांव्यवहारिकप्रत्यक्षरूपस्यैव मतिज्ञानस्य सूत्रे प्रोक्ता अनुमानादिकं तु परोक्षमतिज्ञानमर्थतः सिद्धमितीष्यते, तर्हि श्रुतशब्दव्यपदेश्यं शाब्दज्ञानमपि परोक्षमतिज्ञानमेवाङ्गीक्रियतां, किमर्धजरतीयन्यायाश्रयणेन। मत्वा जानामि श्रुत्वा जानामीत्यनुभव एवानयोर्भेदोपपादक इति चेत्, न, अनुमाय जानामि स्मृत्वा जानामीत्यनुभवेनानुमानस्मृत्यादीनामपि भेदापत्तेः। अनुमितित्वादिकं मतित्वव्याप्यमेवेति यदीष्यते, शाब्दत्वमपि किं न तथा?। मत्वा न जानामीति प्रतीतिस्तत्र बाधिकेति चेत्, न, वैशेषिकाणां नानुमिनोमीति प्रतीतेरिव शाब्दे तस्या विशेषविषयत्वात्। नच निसर्गाधिगमसम्यक्त्वरूपकार्यभेदान्मतिश्रुतज्ञानरूपकारणभेद इत्यपि साम्प्रतम्, तत्र निसर्गपदेन स्वभावस्यैव ग्रहणात्। यद्वाचकः—(प्रशमरति)"शिक्षागमोपदेश—श्रवणान्येकार्थिकान्यधिगमस्य॥ एकार्थः परिणामो, भवति निसर्गः स्वभावश्च॥२२३॥ इति"। यत्रापि मतेः श्रुतभिन्नत्वेन ग्रहणं तत्र गोबलीवर्दन्याय एवाश्रयणीयः। तदिदमभिप्रेत्याह महा-

श्रुतज्ञाननिरूपणे श्रुतस्य मतिज्ञानादभिन्नत्वमेवेति-नव्यमतस्योपदर्शनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वादी सिद्धसेनः (निश्चयद्वात्रिंशिका) "वैयर्थ्यातिप्रसङ्गाभ्यां, न मत्यभ्यधिकं श्रुतम्॥१२॥इति॥" इत्याहुः॥इतिश्रुतज्ञानम्॥

"अवधिज्ञानत्वं रूपिसमव्याप्यविषयताशालिज्ञानवृत्तिज्ञानत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्॥" रूपिसमव्याप्यविषयताशालिज्ञानं परमावधिज्ञानं "रूवगयं लहइ सव्वं" (गा.६८५) इतिवचनात्, तद्वृत्तिर्ज्ञानत्वव्याप्या जातिरवधित्वमवधिज्ञानमात्र इति लक्षणसमन्वयः।समव्याप्यत्वमपहाय व्यापकत्वमात्रदाने जगद्व्यापकविषयताकस्य केवलस्य रूपिव्यापकविषयताकत्वनियमात् तद्वृत्तिकेवलत्वमादाय केवलज्ञानेऽतिव्याप्तिः, समव्याप्यत्वदाने त्वरूपिणि व्यभिचारात्केवलज्ञानविषयताया रूप्यव्याप्यत्वात्तन्निवृत्तिः। न च परमावधिज्ञानेऽप्यलोके लोकप्रमाणासङ्ख्यारूप्याकाशखण्डविषयतोपदर्शनादसम्भवः। यदि तावत्सु खण्डेषु रूपिद्रव्यं स्यात्तदा पश्येदिति प्रसङ्गापादन एव तदुपदर्शनतात्पर्यात्। न च तदंशे विषयबाधेन सूत्राप्रामाण्यं, स्वरूपबाधेऽपि शक्तिविशेषज्ञापनेन फलाबाधात्। एतेनासद्भावस्थापना व्याख्याता बहिर्विषयताप्रसञ्जिका तारतम्येन शक्तिवृद्धिश्च लोकमध्य एव सूक्ष्मसूक्ष्मतरस्कन्धावगाहनफलवतीति न प्रसङ्गापादनवैयर्थ्यम्। यद्भाष्यं–"वड्ढंतो पुण बाहिं, लोगत्थं चेव पासई दब्वं॥ सुहुमयरं सुहुमयरं, परमोही जाव परमाणुं॥ ६०६॥" इति। अलोके लोकप्रमाणासङ्ख्येयखण्डविषयतावधेरिति वचने विषयतापदं तर्कितरूप्यधिकरणताप्रसञ्जिततावदधिकरणकरूपिविषयतापरमिति न स्वरूपबाधोऽपीति तत्त्वम्। जातौ ज्ञानत्वव्याप्यत्वविशेषणं ज्ञानत्वमादाय मत्यादावतिव्याप्तिवारणार्थम्। न च संयमप्रत्ययावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञानसाधारणजातिविशेषमादाय मनःपर्यायज्ञानेऽतिव्याप्तिः, अवधित्वेन साङ्कर्येण तादृशजात्यसिद्धेः। न च 'पुद्गला रूपिण' इति शाब्दबोधे रूपिसमव्याप्यविषयताकेऽतिव्याप्तिः, विषयतापदेन स्पष्टविशेषाकारग्रहणादिति सङ्क्षेपः॥ इत्यवधिज्ञानप्ररूपणम्॥

अवधिज्ञाननिरूपणं तत्रावधिज्ञानलक्षणे विशेषणानां व्यावृत्त्युपदर्शनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"मनोमात्रसाक्षात्कारि मनःपर्यायज्ञानम्।" न च तादृशावधिज्ञानेऽतिव्याप्तिः, मनःसाक्षात्कारिणोऽवधेःस्कन्धान्तरस्यापि साक्षात्कारित्वेन तादृशावधिज्ञानासिद्धेः। न च मनस्त्वपरिणतस्कन्धालोचितं बाह्यमप्यर्थं मनःपर्यायज्ञानं साक्षात्करोतीति तस्य मनोमात्रसाक्षात्कारित्वमसिद्धमिति वाच्यम्, मनोद्रव्यमात्रालम्बनतयैव तस्य धर्मिग्राहकमानसिद्धत्वात्, बाह्यार्थानां तु मनोद्रव्याणामेव तथारूपपरिणामान्यथानुपपत्तिप्रसूतानुमानत एव ग्रहणाभ्युपगमात्। आह च भाष्यकारः–"जाणइ बज्झेणुमाणेणं ति"(गा.८१४)बाह्यार्थानुमाननिमित्तकमेव हि तत्र मानसमचक्षुर्दर्शनमङ्गीक्रियते, यत्पुरस्कारेण सूत्रे मनोद्रव्याणि जानाति पश्यति चैतदिति व्यवह्रियते। एकरूपेऽपि ज्ञाने द्रव्याद्यपेक्षक्षयोपशमवैचित्र्येण सामान्यरूपमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया पश्यतीति, विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया च जानातीत्येवं वा व्याचक्षते। आपेक्षिकसामान्यज्ञानस्यापि व्यावहारिकावग्रहन्यायेन व्यावहारिकदर्शनरूपत्वात्। निश्चयतस्तु सर्वमपि तज्ज्ञानमेव, मनःपर्यायदर्शनानुपदेशादिति द्रष्टव्यम्। नव्यास्तु बाह्यार्थाकारानुमापकमनोद्रव्याकारग्राहकं ज्ञानमवधिविशेष एव, अप्रमत्तसंयमविशेषजन्यतावच्छेदकजातेरवधित्वव्याप्याया एव कल्पनात्धर्मि(कल्पनात)इति न्यायात्। इत्थं हि जानाति पश्यतीत्यत्र दृशेरवधिदर्शनविषयत्वेनैवोपपत्तौ लक्षणाकल्पनगौरवमपि परिहृतं भवति। सूत्रे भेदाभिधानं च धर्मभेदाभिप्रायम्। यदि सङ्कल्पविकल्पपरिणतद्रव्यमात्रग्राह्यभेदात्तद्ग्राहकं ज्ञानमतिरिक्तमित्यत्र निर्बन्धस्तदा द्वीन्द्रियादीनामपीष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्तज्जनकसूक्ष्मसङ्कल्पजननपरिणतद्रव्यविषयमपि मनःपर्यायज्ञानमभ्युपगन्तव्यं स्यात्, चेष्टाहेतोरेव मनसस्तद्ग्राह्यत्वात्। न च तेन द्वीन्द्रियादीनां समनस्कतापत्तिः, कपर्दिकासत्तया धनित्वस्येव, एकया गवा गोमत्त्वस्येव(वा), सूक्ष्मेण मनसा समनस्कत्वस्यापादयितुमशक्यत्वात्, तदिदमभिप्रेत्योक्तं निश्चयद्वात्रिंशिकायां महावा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिना-" प्रार्थनाप्रतिघाताभ्यां, चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः ॥ मनःपर्यायविज्ञानं, युक्तं तेषु न चान्यथा ॥ १ ॥" इति । न चैवं ज्ञानस्य पञ्चविधत्वविभागोच्छेदादुत्सूत्रापत्तिः, व्यवहारतश्चतुर्विधत्वेनोक्ताया अपि भाषाया निश्चयतो द्वैविध्याभिधानवन्नय-विवेकेनोत्सूत्राभावादिति दिक् (इत्याहुः) ॥ इतिमनःपर्यायज्ञानप्ररूपणम् ॥

"सर्वविषयं केवलज्ञानम् ॥" सर्वविषयत्वं च सामान्यधर्मानवच्छिन्ननिखिलधर्मप्रकारकत्वे सति निखिलधर्मिविषयत्वम् । प्रमेयवदिति ज्ञाने प्रमेयत्वेन निखिलधर्मप्रकारकेऽतिव्याप्तिवारणायानवच्छिन्नान्तं, केवलदर्शनेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, विशेष्य-भागस्तु पर्यायवाद्यभिमतप्रतीत्यसमुत्पादरूपसन्तानाविषयकनिखिलधर्मप्रकारकज्ञाननिरासार्थः । वस्तुतो " निखिलज्ञेयाकारवत्त्वं केवलज्ञानत्वं" । केवलदर्शनाभ्युपगमे तु "तत्र निखिलदृश्याकारवत्त्वमेव", न तु निखिलज्ञेयाकारवत्त्वमिति नातिव्याप्तिः । न च प्रतिस्वं केवलज्ञाने केवलज्ञानान्तरवृत्तिस्वप्राक्कालविनष्टवस्तुसम्बन्धिवर्तमानत्वाद्याकाराभावादसम्भवः, स्वसमानकालीननिखिलज्ञेयाकारव-त्त्वस्य विवक्षणात् । न च तथापि केवलज्ञानग्राह्ये आद्यक्षणवृत्तित्वप्रकारकत्वावच्छिन्नविशेष्यताया द्वितीयक्षणे नाशो, द्वितीयक्षण-वृत्तित्वप्रकारकत्वावच्छिन्नविशेष्यतायाश्चोत्पादः, इत्थमेव ग्राह्यसामान्यविशेष्यताध्रौव्यसम्भेदेन केवलज्ञाने त्रैलक्षण्यमुपपादित-मित्येकदा निखिलज्ञेयाकारवत्त्वासम्भव एवेति शङ्कनीयम्, समानकालीनत्वस्य क्षणगर्भत्वे दोषाभावात्, अस्तु वा निखिलज्ञेया-कारसङ्क्रमयोग्यतावत्त्वमेव लक्षणं, प्रमाणं च तत्र 'ज्ञानत्वमत्यन्तोत्कर्षवद्वृत्ति, अत्यन्तापकर्षवद्वृत्तित्वात्, परिमाणत्ववद्' इत्याद्यनु-मानमेव । न चाप्रयोजकत्वं ज्ञानतारतम्यस्य सर्वानुभवसिद्धत्वेन तद्विश्रान्तेरत्यन्तापकर्षोत्कर्षाभ्यां विनाऽसम्भवात् । न चेन्द्रियाश्रित-ज्ञानस्यैव तरतमभावदर्शनात्तत्रैवान्त्यप्रकर्षो युक्त इत्यपि शङ्कनीयं, अतीन्द्रियेऽपि मनोज्ञाने शास्त्रार्थावधारणरूपे शास्त्रभावना-

केवलज्ञान-निरूपणे तल्लक्षणाना-मुपदर्शनं तत्रातिव्या-प्त्यादिदो-षोद्धारश्च केवलज्ञाने प्रमाणोपद-र्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकर्षजन्ये शास्त्रातिक्रान्तविषयेऽतीन्द्रियविषयसामर्थ्ययोगप्रवृत्तिसाधनेऽध्यात्मशास्त्रप्रसिद्धप्रातिभनामधेये च तरतमभावदर्शनात्। नन्वेवं भावनाजन्यमेव प्रातिभवत्केवलं प्राप्तं, तथा चाप्रमाणं स्यात्, कामातुरस्य सर्वदा कामिनीं भावयतो व्यवहितकामिनीसाक्षात्कारवद्भावनाजन्यज्ञानस्याप्रमाणत्वव्यवस्थितेः, अथ न भावनाजन्यत्वं तत्राप्रामाण्यप्रयोजकं, किं तु बाधितविषयत्वं, भावनानपेक्षेऽपि शुक्तिरजतादिभ्रमे बाधादेवाप्रामाण्यस्वीकारात्, प्रकृते च न विषयबाध इति नाप्रामाण्यं, न च व्यवहितकामिनीविभ्रमादौ दोषत्वेन भावनायाः क्लृप्तत्वात्तज्जन्यत्वेनास्याप्रामाण्यं, बाधितविषयत्ववद्दोषजन्यत्वस्यापि भ्रमत्वप्रयोजकत्वात्, तथा चोक्तं **मीमांसाभाष्यकारेण**–'यस्य(त्र) च दुष्टं कारणं यत्र च मिथ्येत्यादिप्रत्ययः स एवाऽसमीचीनो नान्य इति'। वार्तिककारेणाप्युक्तम्–"तस्माद्बोधात्मकत्वेन,प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता॥ अर्थान्यथात्वहेतूत्थ–दोषज्ञानादपोद्यते॥१॥इति"अत्र हि तुल्यवदेवाप्रामाण्यप्रयोजकद्वयमुक्तं, तस्माद्बाधाभावेऽपि दोषजन्यत्वादप्रामाण्यमिति वाच्यं, भावनायाः क्वचिद्दोषत्वेऽपि सर्वत्र दोषत्वानिश्चयात्, अन्यथा शङ्खपीतत्वभ्रमकारणीभूतस्य पीतद्रव्यस्य स्वविषयकज्ञानेऽप्यप्रामाण्यप्रयोजकत्वं स्यादिति न किञ्चिदेतत्, क्वचिदेव कश्चिद्दोष इत्येवाङ्गीकारात्, विषयबाधेनैव दोषजन्यत्वकल्पनाच्च, दुष्टकारणजन्यस्याप्यनुमानादेर्विषयाबाधेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, अन्यथा परिभाषामात्रापत्तेः। **मीमांसाभाष्यवार्तिककाराभ्यामपि** बाधितविषयत्वव्याप्यत्वेनैव दुष्टकारणजन्यत्वस्याप्रामाण्यप्रयोजकत्वमुक्तं न स्वातन्त्र्येणेति चेत्,मैवम्, तथापि परोक्षज्ञानजन्यभावनाया अपरोक्षज्ञानजनकत्वासम्भवात्। न हि वह्न्यनुमितिज्ञानं सहस्रकृत्व आवृत्तमपि वह्निसाक्षात्काराय कल्पते। न चाभ्यस्यमानं ज्ञानं परमप्रकर्षप्राप्तं तथा भविष्यतीत्यपि शङ्कनीयं, लङ्घनोदकतापादिवदभ्यस्यमानस्यापि परमप्रकर्षायोगात्। न च लङ्घनस्यैकस्यावस्थितस्याभावादपरापरप्रयत्नस्य पूर्वपूर्वातिशयि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तलङ्घनोत्पादन एव व्यापाराद्यावल्लङ्घयितव्यं तावन्नादावेव श्लेष्मादिना जाड्यात्कायो लङ्घयितुं शक्नोत्यभ्यासासादितश्लेष्मक्षयपटुभावश्चोत्तरकालं शक्नोतीति तत्र व्यवस्थितोत्कर्षता, उदकतापे त्वतिशयेन क्रियमाणे तदाश्रयस्यैव क्षयान्न तत्राप्यग्निरूपतापत्तिरूपोऽन्त्योत्कर्षः, विज्ञानं तु संस्काररूपं शास्त्रपरावर्तनाद्यन्यथानुपपत्त्योत्तरत्राप्यनुवर्तेत इति तत्रापरापरयत्नानां सर्वेषामुपयोगादत्यन्तोत्कर्षो युक्त इति तद्वता भावनाज्ञानेनापरोक्षं केवलज्ञानं जन्यत इति टीकाकृदुक्तमपि विचारसहं, तस्य प्रमाणान्तरत्वापत्तेः,'मनो यदसाधारणमिति' न्यायात्,अन्यथा चक्षुरादिव्याप्तिज्ञानादिसहकृतस्य मनस एव सर्वत्र प्रामाण्यसम्भवे प्रमाणान्तरोच्छेदापत्तेः। चक्षुरादीनामेव(वाऽ)साधारण्यात्प्रामाण्यमित्यभ्युपगमे भावनायामपि तथा वक्तुं शक्यत्वात्। एवञ्च परोक्षभावनाया अपरोक्षज्ञानजनकत्वं तस्याः प्रमाणान्तरत्वं चान्यत्राद्दष्टचरं कल्पनीयमिति महागौरवमिति चेद्,अनुक्तोपालम्भ एषः, प्रकृष्टभावनाजन्यत्वस्य केवलज्ञानेऽभ्युपगमवादेनैव टीकाकृतोक्तत्वात्। वस्तुतस्तु तज्जन्यात्प्रकृष्टादावरणक्षयादेव केवलज्ञानोत्पत्तिरित्येव सिद्धान्तात्(न्तः)। यैरपि योगजधर्मस्यातीन्द्रियज्ञानजनकत्वमभ्युपगम्यते,तैरपि प्रतिबन्धकपापक्षयस्य द्वारत्वमवश्यमाश्रयणीयम्, सति प्रतिबन्धके कारणस्याकिञ्चित्करत्वात् ,केवलं तैर्योगजधर्मस्य मनःप्रत्यासत्तित्वं,तेन सन्निकर्षेण निखिलजात्यंशे निरवच्छिन्नप्रकारताकज्ञाने षोडशपदार्थविषयकविलक्षणमानसज्ञाने वा तत्त्वज्ञाननामधेये मनसः करणत्वं, चाक्षुषादिसामग्रीकाल इव लौकिकमानससामग्रीकालेऽपि ताद्दशतत्त्वज्ञानानुपपत्तेस्तत्त्वज्ञानाख्यमानसे तदितरमानससामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वं, तत्त्वज्ञानरूपमानससामग्र्याश्च प्रणिधानरूपविजातीयमनःसंयोगघटितत्वं कल्पनीयमित्यनन्तमप्रामाणिककल्पनागौरवम्। अस्माकं तु दुरितक्षयमात्रं तत्र कारणमिति लाघवम्। अत एव 'इन्द्रियनोइन्द्रियज्ञानासाचिव्येन केवलमसहायमिति' प्राञ्चो व्याचक्षते। स चावरणाख्यदुरित-

केवलज्ञाननिरूपणे उक्तप्रश्ने टीकाकृदुक्तैरपाकरणम्, उक्तप्रश्नप्रतिविधानम्, भावनाजन्यप्रकृष्टावरणक्षयतः केवलोत्पत्तिव्यवस्थापनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षयोऽपि भावनातारतम्यात्तारतम्येनोपजायमानस्तदत्यन्तप्रकर्षादत्यन्तप्रकर्षमनुभवतीति किमनुपपन्नम्। तदाहाकलङ्कोऽपि–"दोषावरणयोर्हानि–र्निःशेषास्त्यतिशायनात् ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षय इति ॥१॥" न च निम्बाद्यौषधोपयोगात्तरतमभावापचीयमानस्यापि श्लेष्मणो नात्यन्तिकक्षय इति व्यभिचारः, तत्र निम्बाद्यौषधोपयोगोत्कर्षनिष्ठाया एवापादयितुमशक्यत्वात्, तदुपयोगेऽपि श्लेष्मपुष्टिकारणानामपि तदैवासेवनात्, अन्यथौषधोपयोगाधारस्यैव विनाशप्रसङ्गात्, चिकित्साशास्त्रं ह्युद्रिक्तधातुदोषसाम्यमुद्दिश्य प्रवर्तते, न तु तस्य निर्मूलनाशं, अन्यतरदोषात्यन्तक्षयस्य मरणाऽविनाभावित्वादिति द्रष्टव्यम्। रागाद्यावरणापाये सर्वज्ञज्ञानं वैशद्यभाग्भवतीत्यत्र च न विवादो रजोनीहाराद्यावरणापाये वृक्षादिज्ञाने तथा दर्शनात्। न च रागादीनां कथमावरणत्वं, कुड्यादीनामेव पौद्गलिकानां तथात्वदर्शनादिति वाच्यम्, कुड्यादीनामपि प्रातिभादावनावारकत्वात्, ज्ञानविशेषे तेषामावरणत्ववच्चातीन्द्रियज्ञाने रागादीनामपि तथात्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव सिद्धम्। रागाद्यपचये योगिनामतीन्द्रियानुभवसम्भवात्पौद्गलिकत्वमपि द्रव्यकर्मानुगमेन तेषां नासिद्धम्। स्वविषयग्रहणक्षमस्य ज्ञानस्य तदग्राहकताया विशिष्टद्रव्यसम्बन्धपूर्वकत्वनियमात्पीतहृत्पूरपुरुषज्ञाने तथादर्शनादिति ध्येयम्। बार्हस्पत्यास्तु–"रागादयो न लोभादिकर्मोदयनिबन्धनाः, किं तु कफादिप्रकृतिहेतुकाः। तथाहि, कफहेतुको रागः, पित्तहेतुको द्वेषः, वातहेतुकश्च मोहः। कफादयश्च सदैव सन्निहिताः, शरीरस्य तदात्मकत्वात्, ततो न सार्वज्ञमूलवीतरागत्वसम्भव" इत्याहुः। तदयुक्तम्, रागादीनां व्यभिचारेण कफादिहेतुकत्वायोगात्, दृश्यते हि वातप्रकृतेरपि रागद्वेषौ, कफप्रकृतेरपि द्वेषमोहौ, पित्तप्रकृतेरपि मोहरागाविति। एकैकस्याः प्रकृतेः पृथक् सर्वदोषजननशक्त्युपगमे च सर्वेषां समरागादिमत्त्वप्रसङ्गात्। न च स्वस्वयोग्यक्रमिकरागादिदोषजनककफाद्यवान्तरपरिणतिविशेषस्य प्रतिप्राणि कल्पनान्नायं दोष

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति वाच्यम्, तदवान्तरवैजात्यावच्छिन्नहेतुगवेषणायामपि कर्मण्येव विश्रामात् । किं चाभ्यासजनितप्रसरत्वात्प्रतिसंख्याननिवर्तनीयत्वाच्च न कफादिहेतुकत्वं रागादीनाम् । एतेन 'शुक्रोपचयहेतुक एव रागो नान्यहेतुक इत्याद्यपि' निरस्तम्, अत्यन्तस्त्रीसेवापरस्य क्षीणशुक्रस्यापि रागोद्रेकदर्शनात्, शुक्रोपचयस्य सर्वस्त्रीसाधारणाभिलाषजनकत्वेन कस्यांचित् कस्याश्चिदेव रागोद्रेक इत्यस्यानुपपत्तश्चेप । न चासाधारण्ये रूपमेव हेतुः, तद्रहितायामपि कस्यांचिद्रागदर्शनात् । न च तत्रोपचार एव हेतुः, द्वयेनापि विमुक्तायां रागदर्शनात् । तस्मादभ्यासदर्शनजनितोपचयपरिपाकं कर्मैव विचित्रस्वभावतया तदा तदा तत्तत्कारणापेक्षं तत्र तत्र रागादिहेतुरिति प्रतिपत्तव्यम् । एतेन 'पृथिव्यम्बुभूयस्त्वे रागः, तेजोवायुभूयस्त्वे द्वेषः, जलवायुभूयस्त्वे मोह इत्यादयोऽपि प्रलापा निरस्ताः, तस्य विषयविशेषापक्षपातित्वादिति दिक् । कर्मभूतानां रागादीनां सम्यग्ज्ञानाक्रियाभ्यां क्षयेण वीतरागत्वं सर्वज्ञत्वं चानाविलमेव। शौद्धोदनीयास्तु–"नैरात्म्यादिभावनैव रागादिक्लेशहानिहेतुः, नैरात्म्यावगतावेवात्मात्मीयाभिनिवेशाभावेन रागद्वेषोच्छेदात् संसारमूलनिवृत्तिसम्भवात्, आत्मावगतौ च तस्य नित्यत्वेन तत्र स्नेहात्तन्मूलतृष्णादिना क्लेशानिवृत्तेः।। तदुक्तम्–"यः पश्यत्यात्मानं, तत्रास्याहमिति शाश्वतः स्नेहः।। स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषांस्तिरस्कुरुते ॥१॥ गुणदर्शी परितृष्य–त्यात्मनि तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्माभिनिवेशो, यावत्तावच्च संसारः ॥२॥ इति" । ननु यद्येवमात्मा न विद्यते, किं तु पूर्वापरक्षणत्रुटितानुसन्धानाः पूर्वहेतुप्रतिबद्धा ज्ञानक्षणा एव तथा तथोत्पद्यन्त इत्यभ्युपगमस्तदा परमार्थतो न कश्चिदुपकार्योपकारकस्वभाव इति कथमुच्यते "भगवान् सुगतः करुणया सकलसत्त्वोपकाराय देशनां कृतवान्" इति, क्षणिकत्वमपि यद्येकान्तेन, तर्हि तत्त्ववेदी क्षणोऽनन्तरं विनष्टः सन्न कदाचनाप्यहं भूयो भविष्यामीति जानानः किमर्थं मोक्षाय यतत इति ?, अत्रोच्यते–"भगवान् हि प्राचीनावस्थायां सकलमपि जगद्दुःखितं

केवलज्ञाननिरूपणे शुक्रोपचयादीनां रागादिहेतुत्वप्रतिक्षेपः; नैरात्म्यादिभावनाया रागादिक्षयहेतुत्वमिति बौद्धमतोपक्रमः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पश्यंस्तदुद्दिधीर्षया नैरात्म्यक्षणिकत्वादिकमवगच्छन्नपि तेषामुपकार्यसत्त्वानां निष्क्लेशक्षणोत्पादनाय प्रयतते, ततो जातसकलजगत्साक्षात्कारः समुत्पन्नकेवलज्ञानः पूर्वाहितकृपाविशेषसंस्कारात् कृतार्थोऽपि देशनायां प्रवर्तते, अधिगततत्तात्पर्यार्थाश्च स्वसन्ततिगतविशिष्टक्षणोत्पत्तये मुमुक्षवः प्रवर्तन्ते," इति न किमप्यनुपपन्नमित्याहुः।" तदखिलमज्ञानविलसितम्। आत्माभावे बन्धमोक्षाद्येकाधिकरणत्वायोगात्। न च सन्तानापेक्षया समाधिः, तस्यापि क्षणानतिरेके एकत्वासिद्धेः, एकत्वे चद्रव्यस्यैव नामान्तरत्वात्, सजातीयक्षणप्रबन्धरूपे सन्ताने च न कारकव्यापार इति समीचीनं मुमुक्षुप्रवृत्त्युपपादनम्। अथाक्लिष्टक्षणेऽक्लिष्टक्षणत्वेनोपादानत्वमिति सजातीयक्षणप्रबन्धोपपत्तिः, बुद्धदेशितमार्गे तु तत्प्रयोजकत्वज्ञानादेव प्रवृत्तिरिति चेत्, न, एकान्तवादेऽनेन रूपेण निमित्तत्वमनेन रूपेण चोपादानत्वमिति विभागस्यैव दुर्वचत्वात्। अक्लिष्टक्षणेऽक्लिष्टक्षणत्वेनैवोपादानत्वे आद्याक्लिष्टक्षणस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गादन्त्यक्लिष्टक्षणसाधारणस्य हेतुतावच्छेदकस्य कल्पने च क्लिष्टक्षणजन्यतावच्छेदकेन साङ्कर्याज्जन्यजनकक्षणप्रबन्धकोटावेकैकक्षणप्रवेशपरित्यागयोर्विनिगमकाभावाच्च। एतेन 'इतरव्यावृत्त्या शक्तिविशेषेण वा जनकत्वम्' इत्यप्यपास्तम्। न चैतदनन्तरमहमुत्पन्नमेतस्य चाहं जनकमित्यवगच्छति क्षणरूपं ज्ञानमिति न भवन्मते कार्यकारणभावः, नापि तदवगमः, ततो याचितकमण्डनमेतदेकसन्ततिपतितत्वादेकाधिकरणं बन्धमोक्षादिकमिति। एतेन 'उपादेयोपादानक्षणानां परस्परं वास्यवासकभावादुत्तरोत्तरविशिष्टविशिष्टतरक्षणोत्पत्तेः मुक्तिसम्भव' इत्यप्यपास्तम्, युगपद्भाविनामेव तिलकुसुमादीनां वास्यवासकभावदर्शनात्। उक्तञ्च—"वास्यवासकयोश्चैव—मसाहित्यान्न वासना॥ पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तरक्षणः ॥१॥ इति"। कल्पितशुद्धक्षणैकसन्तानार्थितयैव मोक्षोपाये सौगतानां प्रवृत्तिः, तदर्थैव च सुगतदेशनेत्यभ्युपगमे च तेषां मिथ्यादृष्टित्वं, तत्कल्पितमोक्षस्य च मिथ्यात्वं स्फुटमेव, अधिकं

केवलज्ञाननिरूपणे निरुक्तबौद्धमतस्य खण्डनं बौद्धमते आत्माऽभावे बन्धमोक्षैकाधिकरण्यासम्भवः कार्यकारणभावाद्यसम्भवश्च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लतायाम् । एतेन ' अखण्डाद्वयानन्दैकरसब्रह्मज्ञानमेव केवलज्ञानं, तत एव चाविद्यानिवृत्तिरूपमोक्षाधिगम' इति **वेदान्तिम**-तमपि निरस्तम्, तादृशविषयाभावेन तज्ज्ञानस्य मिथ्यात्वात्, कीदृशं च ब्रह्मज्ञानमज्ञाननिवर्तकमभ्युपेयं देवानांप्रियेण, न केवलचैतन्यं,तस्य सर्वदा सत्त्वेनाविद्याया नित्यनिवृत्तिप्रसङ्गात्,ततश्च तन्मूलसंसारोपलब्ध्यसम्भवात्सर्वशास्त्रानारम्भप्रसङ्गाद-नुभवविरोधाच्च, नापि वृत्तिरूपं, वृत्तेः सत्यत्वे तत्कारणान्तःकरणाविद्यादेरपि सत्त्वस्यावश्यकत्वेन तया तन्निवृत्तेरशक्यतया सर्ववेदान्तार्थविप्लवापत्तेः, मिथ्यात्वे च कथमज्ञाननिवर्तकता । न हि मिथ्याज्ञानमज्ञाननिवर्तकं दृष्टम्, स्वप्नज्ञानस्यापि तत्त्वप्रसङ्गात् । न च "सत्यस्यैव चैतन्यस्य प्रमाणजन्यापरोक्षान्तःकरणवृत्त्यभिव्यक्तस्याज्ञाननिवर्तकत्वाद्वृत्तेश्च कारणतावच्छेदकत्वेन दण्डत्वादिवदन्यथासिद्धत्वेन कारणत्वानङ्गीकारात्, अवच्छेदकस्य कल्पितत्वेऽप्यवच्छेद्यस्य वास्तवत्वं न विहन्यते, यद्रजतत्वेन भातं तच्छुक्तिद्रव्यमितिवत्, तार्किकैरप्याकाशस्य शब्दग्राहकत्वे कर्णशष्कुलीसम्बन्धस्य कल्पितस्यैवावच्छेदकत्वाङ्गीकारात्, संयोगमात्रस्य निरवयवे नभसि सर्वात्मना सत्त्वेनातिप्रसञ्जकत्वात् । **मीमांसकैश्च** कल्पितह्रस्वत्वदीर्घत्वादिसंसर्गावच्छिन्नानामेव वर्णानां यथार्थज्ञानजनकत्वोपगमाद्ध्वनिधर्माणां ध्वनिगतत्वेनैव भानात्, वर्णानां च विभूनामानुपूर्वीविशेषाज्ञानादतिप्रसङ्गात्, वर्णनिष्ठत्वेन ह्रस्वत्वादिकल्पनस्य तेषामावश्यकत्वात्, तद्वदस्माकमपि कल्पितावच्छेदकोपगमे को दोष" इति **मधुसूदनतपस्विनो**ऽपि वचनं विचारसहं, मिथ्यादृग्दृष्टान्तस्य सम्यग्दृशां ग्रहणानौचित्यात्, **नैयायिकमीमांसको**क्तस्थलेऽपि अनन्तधर्मात्मकैकवस्तुस्वीकारे कल्पितावच्छेदककृतविडम्बनाया अप्रसरात्,विस्तरेणोपपादितं चैतत्**सम्मतिवृत्तौ** । न चोक्तरीत्या वृत्तेरवच्छेदकत्वमपि युक्तं,प्रतियोगितयाऽज्ञाननिवृत्तौ सामानाधिकरण्येन समानविशेष्यकसमानप्रकारकवृत्तेरेव त्वन्मते हेतुत्वस्य युक्तत्वात्। अत एव

केवलज्ञाननिरूपणे ब्रह्मज्ञानलक्षणकेवलज्ञानस्याविद्यानिवृत्तिलक्षणमोक्षहेतुत्वमिति वेदान्तिमतस्य खण्डनं, तत्र-मधुसूदनोक्तेरपाकरणञ्च ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वयमुक्तं तपस्विना सिद्धान्तबिन्दौ–'द्विविधमावरणं, एकमसत्त्वापादकमन्तःकरणावच्छिन्नसाक्षिनिष्ठं, अन्यदभानापादकं विषयावच्छिन्नब्रह्मचैतन्यनिष्ठं, घटमहं न जानामीत्युभयावच्छेदानुभवाद्, आद्यं परोक्षापरोक्षसाधारणप्रमामात्रेण निवर्तते, अनुमितेऽपि नास्तीति प्रतीत्यनुदयात्, द्वितीयं तु साक्षात्कारेणैव निवर्तते, यदाश्रयं यदाकारं ज्ञानं तदाश्रयं तदाकारमज्ञानं नाशयतीति वह्न्यादौ नियमाद्' इत्यादि, तत्किमिदानीं क्षुत्क्षामकुक्षेः सद्य एव विस्मृतं ? येनोक्तवृत्तेरवच्छेदकत्वेनान्यथासिद्धिमाह, एवं हि घटादावपि दण्डविशिष्टाकाशत्वेनैव हेतुतां वदतो वदनं कः पिदध्यात् ?, अनयैव भिया "चैतन्यनिष्ठायाः प्रमाणजन्यापरोक्षान्तःकरणवृत्तेरेवाज्ञाननाशकत्वाङ्गीकारेऽपि न दोषः, पारमार्थिकसत्ताभावेऽपि व्यावहारिकसत्ताङ्गीकारात्। न च स्वप्नादिवन्मिथ्यात्वापत्तिः, स्वरूपतो मिथ्यात्वस्याप्रयोजकत्वात्, विषयतो मिथ्यात्वस्य च बाधाभावादसिद्धेः, धूमभ्रमजन्यवह्न्यनुमितेरप्यबाधितविषयतयाऽप्रामाण्यानङ्गीकाराच्च, कल्पितेनापि प्रतिबिम्बेन वास्तवबिम्बानुमानप्रामाण्याच्च, स्वप्नार्थस्याप्यरिष्टादिसूचकत्वाच्च, क्वचित्तदुपलब्धमन्त्रादेर्जागरेऽप्यनुवृत्तेरबाधाच्चेति" तपस्विनोक्तमिति चेत्, एतदप्यविचाररमणीयम्, त्वन्मते स्वप्नजागरयोर्व्यवहारविशेषस्यापि कर्तुमशक्यत्वात्, बाधाभावेन ब्रह्मण इव घटादेरपि परमार्थसत्त्वस्याप्रत्यूहत्वाच्च, प्रपञ्चासत्यत्वे बन्धमोक्षादेरपि तथात्वेन व्यवहारमूल एव कुठारदानात्। एतेन 'अज्ञाननिष्ठाः परमार्थव्यवहारप्रतिभाससत्त्वप्रतीत्यनुकूलास्तिस्रः शक्तयः कल्प्यन्ते, आद्यया प्रपञ्चे पारमार्थिकसत्त्वप्रतीतिः, अत एव नैयायिकादीनां तथाभ्युपगमः, सा च श्रवणाद्यभ्यासपरिपाकेन निवर्तते, ततो द्वितीयया शक्त्या व्यावहारिकसत्त्वं प्रपञ्चस्य प्रतीयते, वेदान्तश्रवणादभ्यासवन्तो हि नेमं प्रपञ्चं पारमार्थिकं पश्यन्ति, किं तु व्यावहारिकमिति, सा च तत्त्वसाक्षात्कारेण निवर्तते, ततस्तृतीयया शक्त्या प्रातिभासिकसत्त्वप्रतीतिः क्रियते, सा चान्तिमतत्त्वबोधेन सह निव-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

र्तते, पूर्वपूर्वशक्तेरुत्तरोत्तरशक्तिकार्यप्रतिबन्धकत्वाच्च न युगपत्कार्यत्रयप्रसङ्गः, तथा चैतदभिप्राया श्रुतिः-"तस्याभिध्यानाद् योजनात्तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति"। अस्या अयमर्थः-"तस्य परमात्मनः, अभिमुखाद्ध्यानाच्छ्रवणाभ्यासपरिपाकादिति यावत्, विश्वमायाया विश्वारम्भकाविद्याया निवृत्तिः, आद्यशक्तिनाशेन विशिष्टनाशात्, युज्यतेऽनेनेति योजनं तत्त्वज्ञानं तस्मादपि विश्वमायानिवृत्तिः, द्वितीयशक्तिनाशेन विशिष्टनाशात्, तत्त्वभावो विदेहकैवल्यमन्तिमः साक्षात्कार इति यावत्, तस्मादन्ते प्रारब्धक्षये सह तृतीयशक्त्या विश्वमायानिवृत्तिः, अभिध्यानयोजनाभ्यां शक्तिद्वयनाशेन विशिष्टनाशापेक्षया भूयःशब्दोऽभ्यासार्थक इति इत्यादि" निरस्तम्. अभिध्यानादेः प्रागपरमार्थसदादौ परमार्थसत्त्वादिप्रतीत्यभ्युपगमेऽन्यथाख्यात्यापातात्। न च तत्तच्छक्तिविशिष्टाज्ञानेन परमार्थसत्त्वादि जनयित्वैव प्रत्याय्यत इति नायं दोष इति वाच्यम्, साक्षात्कृततत्त्वस्य न किमपि वस्त्वज्ञातमिति प्रातिभासिकसत्त्वोत्पादनस्थानाभावात्, ब्रह्माकारवृत्त्या ब्रह्मविषयतैवाज्ञानस्य नाशिता, तृतीयशक्तिविशिष्टं त्वज्ञानं यावत्प्रारब्धमनुवर्तत एवेति ब्रह्मातिरिक्तविषये प्रातिभासिकसत्त्वोत्पादनादविरोध इति चेत्, न, धर्मसिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातात्, विशेषोपरागेणाज्ञाते तदुपगमे च ब्रह्मण्यपि प्रातिभासिकमेव सत्त्वं स्यात्, तत्त्वज्ञे कस्यचिदज्ञानस्य स्थितौ विदेहकैवल्येऽपि तदवस्थितिशङ्कया सर्वाज्ञाननिवृत्तौ मुक्तावनाश्वासप्रसङ्गाच्च। अथ दृष्टिसृष्टिवादे नेयमनुपपत्तिः, तन्मते हि वस्तुसद् ब्रह्मैव, प्रपञ्चश्च प्रातिभासिक एव, तस्य चाभिध्यानादेः प्राक् पारमार्थिकसत्त्वादिना प्रतिभासः पारमार्थिकसदाद्याकारज्ञानाभ्युपगमादेव सूपपाद इति चेत्, न, तस्य प्राचीनोपगतस्य सौगतमतप्रायत्वेन नव्यैरुपेक्षितत्वात्, व्यवहारवादस्यैव तैरादृतत्वात्, व्यवहारवादे च व्यावहारिकं प्रपञ्चं प्रातिभासिकत्वेन प्रतीयतां तत्त्वज्ञानिनामत्यन्तभ्रान्तत्वं दुर्निवारमेव। अथ व्यावहारिकस्यापि

॥ केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डने, तत्र दृष्टिसृष्टिवादमाशङ्क्य नव्यवेदान्त्युपेक्षितत्वेन खण्डितवान्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रपञ्चस्य तत्त्वज्ञानेन बाधितस्यापि प्रारब्धवशेन बाधितानुवृत्त्या प्रतिभासः तृतीयस्याः शक्तेः कार्यम्, तेन बाधितानुवृत्त्या प्रतिभासानुकूला तृतीया शक्तिः प्रातिभासिकसत्त्वसम्पादनपटीयसी शक्तिरुच्यते, सा चान्तिमतत्त्वबोधेन निवर्तत इत्येवमदोष इति चेत्, न, बाधितं हि त्वन्मते नाशितं, तस्यानुवृत्तिरिति वदतो व्याघातात्। बाधितत्वेन बाधितत्वावच्छिन्नसत्तया वा प्रतिभासस्तत्त्वज्ञप्रारब्धकार्यमिति चेत्,तृतीया शक्तिर्व्यर्था, यावद्विशेषाणां बाधितत्वे तेषां तथाप्रतिभासस्य सार्वज्ञाभ्युपगमं विनानुपपत्तेश्च, द्वितीयशक्तिविशिष्टाज्ञाननाशात् सञ्चितकर्म तत्कार्यं च नश्यति, ततस्तृतीयशक्त्या प्रारब्धकार्ये दग्धरज्जुस्थानीया बाधितावस्था जन्यते, इयमेव बाधितानुवृत्तिरिति चेत्,न,एवं सति घटपटादौ तत्त्वज्ञस्य न बाधितसत्त्वधीः, न वा व्यावहारिकपारमार्थिकसत्त्वधीरिति तत्र किञ्चिदन्यदेव कल्पनीयं स्यात्,तथा च लोकशास्त्रविरोध इति सुष्ठूक्तं हरिभद्राचार्यैः–(षोडशक १६) "अग्निजलभूमयो यत्, परितापकरा भवेऽनुभवसिद्धाः ॥ रागादयश्च रौद्रा, असत्प्रवृत्त्यास्पदं लोके ॥८॥ परिकल्पिता यदि ततो, न सन्ति तत्त्वेन कथममी स्युरिति ॥ परिकल्पिते च तत्त्वे, भवभवविगमौ कथं युक्तौ ॥ ९ ॥ इत्यादि"। तस्माद्वृत्तेर्व्यावहारिकसत्तयापि न निस्तारः। प्रपञ्चे परमार्थदृष्ट्येव व्यवहारदृष्ट्यापि सत्तान्तरानवगाहनादिति स्मर्तव्यम्। किं च "सप्रकारं निष्प्रकारं वा ब्रह्मज्ञानमज्ञाननिवर्तकमिति वक्तव्यं, आद्ये निष्प्रकारे ब्रह्मणि सप्रकारकज्ञानस्यायथार्थत्वान्नाज्ञाननिवर्तकता, तस्य यथार्थत्वे वा नाद्वैतसिद्धिः, द्वितीयपक्षस्तु निष्प्रकारकज्ञानस्य कुत्राप्यज्ञाननिवर्तकत्वादर्शनादेवानुद्भावनार्हः॥" किं च निष्प्रकारकज्ञानस्य कुत्राप्यज्ञाननिवर्तकत्वं न दृष्टमिति शुद्धब्रह्मज्ञानमात्रात्कथमज्ञाननिवृत्तिः ?, न च सामान्यधर्ममात्राप्रकारकसमानविषयप्रमात्वमज्ञाननिवृत्तौ प्रयोजकं, अत्र प्रमेयमिति ज्ञानेऽतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति, प्रमेयो घट इत्यादावव्याप्तिवारणाय मात्रेति, तेनेदं विशेषप्रकारे निष्प्रकारे

केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डने तत्त्वज्ञानानन्तरं मायानुवृत्तेः खण्डने, तत्र लोकशास्त्रविरोधे हरिभद्रसूरिसंवादो ब्रह्मज्ञानस्याज्ञाननिवर्तकत्वासम्भवश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चानुगतमिति निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानस्यापि ब्रह्माज्ञाननिवर्तकत्वं लक्षणान्वयात् । न च सामान्यधर्ममात्रप्रकारकज्ञानेऽव्याप्तिः, इदमनिदं वा, प्रमेयमप्रमेयं वेत्यादिसंशयादर्शनेन (संशयाद्यदर्शनात्सामान्यमात्रप्रकारकाऽज्ञानानङ्गीकारेण) तदनिवर्तकस्य तस्यासङ्ग्रहादिति वाच्यम्, निष्प्रकारकसंशयाभावेन निष्प्रकारकाज्ञानासिद्ध्या निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानस्यापि तन्निवर्तकत्वायोगात्, एकत्र धर्मिणि प्रकाराणामनन्तत्वे प्रकारनिष्ठतया निरवच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेनाधिष्ठानप्रमात्वेन तया तदज्ञाननिवर्तकत्वौचित्यात् । अधिष्ठानत्वं च भ्रमजनकाज्ञानविषयत्वं वाऽज्ञानविषयत्वं वाऽखण्डोपाधिर्वा ?, न च विषयतयैव तत्त्वं युक्तम्, प्रमेयत्वस्य च केवलान्वयिनोऽनङ्गीकारान्न प्रमेयमिति ज्ञानाद् घटाद्याकाराज्ञाननिवृत्तिप्रसङ्ग इति वाच्यम्, द्रव्यमिति ज्ञानात्तदापत्तेरवारणात् । न च तस्य द्रव्यत्वविशिष्टविषयत्वेऽपि घटत्वविशिष्टाविषयत्वात्तद्वारणं, द्रव्यत्वविशिष्टस्यैव घटावच्छेदेन घटत्वविशिष्टत्वात्, सत्त्वविशिष्टब्रह्मवत्, विशिष्टविषयज्ञानेन विशिष्टविषयाज्ञाननिवृत्त्यभ्युपगमेऽपि च ब्रह्मणः सच्चिदानन्दत्वादिधर्मवैशिष्ट्यप्रसङ्गः । एतेन “ अन्यत्र घटाज्ञानत्वघटत्वप्रकारकप्रमात्वादिना नाश्यनाशकभावेऽपि प्रकृते ब्रह्माज्ञाननिवृत्तित्वेन ब्रह्मप्रमात्वेनैव कार्यकारणभावः, न तु ब्रह्मत्वप्रकारकेतिविशेषणमुपादेयं गौरवादनुपयोगाद्विरोधाच्च” इत्यपि निरस्तम्, विशिष्टब्रह्मण एव संशयेन विशिष्टाज्ञाननिवृत्त्यर्थं विशेषोपरागेणैव ब्रह्मज्ञानस्यान्वेषणीयत्वात्, शुक्तिरजतादिस्थलेऽपि विशिष्टाज्ञानविषयस्यैवाधिष्ठानत्वं क्लृप्तमित्यत्राप्ययं न्यायोऽनुसर्तव्यः । किं च ब्रह्मणो निर्धर्मकत्वे तत्र विषयताया अप्यनुपपन्नत्वात्तद्विषयज्ञानत्वमपि तत्र दुर्लभं, विषयता हि कर्मतेति तदङ्गीकारे तस्य क्रियाफलशालित्वेन घटादिवज्जडत्वापत्तेः, तद्विषयज्ञानाजनकत्वे च तत्र वेदान्तानां प्रामाण्यानुपपत्तिः । न च तदज्ञाननिवर्तकतामात्रेण तद्विषयत्वोपचारः, अन्योऽन्याश्रयात् ।

केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डने तत्र ब्रह्मज्ञानस्याज्ञाननिर्वर्तकत्वासम्भवे ब्रह्मणो ज्ञानविषयत्वासम्भवोपपादनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न च कल्पिता विषयता कर्मत्वाप्रयोजिका, वास्तवविषयतायाः कुत्राप्यनङ्गीकाराद्व्यावहारिकियाश्च तुल्यत्वात्। न च ब्रह्मणि ज्ञानविषयताऽसम्भवेऽपि ज्ञाने ब्रह्मविषयता तद्बिम्बग्राहकत्वरूपाऽन्या वा काचिदनिर्वचनीया सम्भवतीति नानुपपत्तिः, विषयतैवाकारः प्रतिविषयं विलक्षणः, अत एव ब्रह्माकारापरोक्षप्रमाया एवाज्ञाननिवर्तकत्वं, अज्ञानविषयस्वरूपाकारापरोक्ष प्रमात्वस्य सर्वत्रानुगतत्वात् । न चेदमित्याकारं घटाकारमिति शङ्कितुमपि शक्यं, आकारभेदस्य स्फुटतरसाक्षिप्रत्यक्षसिद्धत्वादिति वाच्यम्, ज्ञाननिष्ठाया अपि ब्रह्मविषयताया ब्रह्मनिरूपितत्वस्यावश्यकत्वेन ब्रह्मणि तन्निरूपकत्वधर्मसत्त्वे निर्धर्मकत्वव्याघातात्, उभयनिरूप्यस्य विषयविषयिभावस्यैकधर्मत्वेन निर्वाहायोगात् । न च ब्रह्मण्यपि कल्पितविषयतोपगमे कर्मत्वेन न जडत्वापातः, स्वसमानसत्ताकविषयताया एव कर्मत्वापादकत्वात्, घटादौ हि विषयता स्वसमानसत्ताका, द्वयोरपि व्यावहारिकत्वात्, ब्रह्मणि तु परमार्थसति व्यावहारिकी विषयता न तथेति स्फुटमेव वैषम्यादिति वाच्यम्, सत्ताया इव विषयताया अपि ब्रह्मणि पारमार्थिकत्वोक्तावपि बाधकाभावात्, परमार्थनिरूपितधर्मस्य व्यावहारिके व्यावहारिकत्ववद्व्यावहारिकनिरूपितस्य धर्मस्य पारमार्थिके पारमार्थिकताया अपि न्यायप्राप्तत्वात् । सत्ताद्युपलक्षणभेदेऽप्युपलक्ष्यमेकमेवेति न दोष इति चेद्, विषयतायामप्येष एव न्यायः ।

एवं चानन्तधर्मात्मकधर्म्यभेदेऽपि ब्रह्मणि कौटस्थ्यं द्रव्यार्थादेशादव्याहतमेव । तथा चान्यूनानतिरिक्तधर्मात्मद्रव्यस्वभावलाभलक्षणमोक्षगुणेन भगवन्तं तुष्टाव स्तुतिकारः (सिद्धसेनद्वात्रिंशिका ४) "भवबीजमनन्तमुज्झितं, विमलज्ञानमनन्तमर्जितम्॥ न च हीनकलोऽसि नाधिकः, समतां चाप्यतिवृत्य वर्तसे ॥ २९ ॥ इति" । एतेन "चैतन्यविषयतैव जडत्वापादिका, न तु वृत्तिविषयतापि, "यतो वाचो निवर्तन्ते," "न चक्षुषा गृह्यते, नापि वाचा," "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" "नावेदविन्मनुते तं

केवलज्ञान-निरूपणे वेदान्तिमतखण्डने ब्रह्मज्ञानस्याज्ञाननिवर्त्तकत्वासम्भवे ज्ञाने ब्रह्मनिरूपितविषयत्वाभावव्यवस्थापनं द्रव्यादेशाद् ब्रह्मकौटस्थ्ये सिद्धसेनसूरिसंवादः ॥ ॥ १०४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बृहन्तं वेदेनैव यद्वेदितव्यम्" इत्याद्युभयविधश्रुत्यनुसारेणेत्थं कल्पनात् "फलव्याप्यत्वमेवास्य, शास्त्रकृद्भिर्निवारितम्॥""ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय, वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता ॥ १ ॥" इति कारिकायामपि फलपदं चैतन्यमात्रपरमेव द्रष्टव्यं, प्रमाणजन्यान्तःकरणवृत्त्यभिव्यक्तचैतन्यस्य शास्त्रे फलत्वेन व्यवह्रियमाणस्य ग्रहणे तद्व्याप्यताया अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जडत्वापादकत्वे ब्रह्मण इव साक्षिभास्यानामपि जडत्वानापत्तेः, चैतन्यकर्मता तु चिद्भिन्नत्वावच्छेदेन सर्वत्रैवेति सैव जडत्वप्रयोजिका, न च वृत्तिविषयत्वेऽपि चैतन्यविषयत्वं नियतं वृत्तेश्चिदाकारगर्भिण्या एवोत्पत्तेः, तदुक्तम्-"वियद्वस्तुस्वभावानु-रोधादेव न कारणात् ॥ वियत्सम्पूर्णतोत्पत्तौ कुम्भस्यैवं द(दृ)शा धियाम् ॥१॥ घटदुःखादिहेतुत्वं, धियो धर्मादिहेतुतः ॥ स्वतः सिद्धार्थसम्बोध-व्याप्तिर्वस्त्वनुरोधतः ॥२॥ इति," तथा च जडत्वं दुर्निवारमिति वाच्यम्, वृत्त्युपरक्तचैतन्यस्य स्वत एव चैतन्यरूपत्वेन तद्व्याप्यत्वाभावात्, फले फलान्तरानुत्पत्तेस्तद्भिन्नानां तु स्वतो भानरहितानां तद्व्याप्तेरवश्याश्रयणीयत्वाद् इत्यादि" मधुसूदनोक्तमप्यपास्तम्, वृत्तिविषयताया अपि निर्धर्मके ब्रह्मण्यसम्भवात्, कल्पितविषयतायाः स्वीकारे च कल्पितप्रकारताया अपि स्वीकारापत्तेः, उभयोरपि ज्ञानभासकसाक्षिभास्यत्वेन चैतन्यानुपरञ्जकत्वाविशेषात्, ज्ञानस्य स्वविषयानिवर्तकत्वेन प्रकारानिवृत्तिप्रसङ्गभयस्य च विषयताद्यनिवृत्तिपक्ष इव धर्मधर्मिणोर्जात्यन्तरात्मकभेदाभेदसम्बन्धाश्रयणेनैव सुपरिहरत्वात्, कृतान्तकोपस्त्वेकान्तवादिनामुपरि कदापि न निवर्तेत इति तत्र कः प्रतिकारः । यदि च दृग्विषयत्वं ब्रह्मणि न वास्तवं, तदा सकृद्दर्शनमात्रेणात्मनि घटादाविव दृगपगमेऽपि द्रष्टृत्वं कदापि नापैतीत्यु(त्याद्यु)क्तं न युज्यते । तथा च-"सकृत्प्रत्ययमात्रेण, घटश्चेद्भासते तदा॥स्वप्रकाशोऽयमात्मा किं, घटवच्च न भासते ॥१॥स्वप्रकाशतया किं ते, तद्बुद्धिस्तत्त्ववेदनम्॥ बुद्धिश्च क्षणनाश्येति, चोद्यं तुल्यं घटादिषु ॥२॥ घटादौ निश्चिते बुद्धिर्नश्यत्येव यदा घटः॥

केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डने ब्रह्मणि पञ्चदशीवचनतो वृत्तिविषयत्वव्यवस्थापिकाया मधुसूदनोक्तेः खण्डनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द(इ)ष्टो नेतुं तदाशक्य, इति चेत्सममात्मनि ॥३॥ ।निश्चित्य सकृदात्मानं, यदापेक्षा तदैव तम् ॥ वक्तुं मन्तुं तथा ध्यातुं, शक्नोत्येव हि तत्त्ववित्॥४॥उपासक इव ध्यायँ–ल्लौकिकं विस्मरेद्यदि ॥विस्मरत्येव सा ध्याना–द्विस्मृतिर्न तु वेदनात् ॥५॥"इत्यादि ध्यानदीपवचनं विप्लवेतेति किमतिविस्तरेण। तस्माद्ब्रह्मविषया ब्रह्माकारा वा वृत्तिरविवेचितसारैव। कथञ्चास्या निवृत्तिरिति वक्तव्यं, स्वकारणाज्ञाननाशादिति चेत्, अज्ञाननाशक्षण इवावस्थितस्य विनश्यदवस्थाज्ञानजनितस्य वा दृश्यस्य चिरमप्यनुवृत्तौ मुक्तावनाश्वासः। उक्तप्रमाविशेषत्वेन निवर्तकता दृश्यत्वेन च निवर्त्यतेति दृश्यत्वेन रूपेणाविद्यया सह स्वनिवर्त्यत्वेऽपि न दोषः, निवर्त्यतानिवर्तकतयोरवच्छेदकैक्य एव क्षणभङ्गापत्तेरिति चेत्, प्रमाया अप्रमां प्रत्येव निवर्तकत्वदर्शनेन दृश्यत्वस्य निवर्त्यताऽनवच्छेदकत्वात्। न च ज्ञानस्याज्ञाननाशकतापि प्रमाणसिद्धा, अन्यथा स्वप्नाद्यध्यासकारणीभूतस्याज्ञानस्य जागरादिप्रमाणज्ञानेन निवृत्तौ पुनः स्वप्नाध्यासानुपपत्तिः, तत्रानेकाज्ञानस्वीकारे त्वात्मन्यपि तथासम्भवेन मुक्तावनाश्वासः, मूलाज्ञानस्यैव विचित्रानेकशक्तिस्वीकारादेकशक्तिनाशेऽपि शक्त्यन्तरेण स्वप्नान्तरादीनां पुनरावृत्तिः सम्भवति, सर्वशक्तिमतो मूलाज्ञानस्यैव निवृत्तौ तु कारणान्तरासम्भवात्, द्वितीयस्य च तादृशस्यानङ्गीकारान्न प्रपञ्चस्य पुनरुत्पत्तिरिति तु स्ववासनामात्रं, चरमज्ञानं वा मूलाज्ञाननाशकं क्षणविशेषो वेत्यत्र विनिगमकाभावादनन्तोत्तरोत्तरशक्तिकार्येष्वनन्तपूर्वपूर्वशक्तीनां प्रतिबन्धकत्वस्य, चरमशक्तिकार्ये चरमशक्तेः, तन्नाशे च चरमज्ञानस्य हेतुत्वकल्पने महागौरवात्, पूर्वशक्तिनाश इव चरमशक्तिनाशेऽपि षण्डमूलाज्ञानानुवृत्त्यापत्त्यनुद्धाराच्चेति न किञ्चिदेतत्।

एतेन "जागरादिभ्रमेण स्वप्नादिभ्रमतिरोधानमात्रं क्रियते, सर्पभ्रमेण रज्ज्वां धाराभ्रमतिरोधानवत्, अज्ञाननिवृत्तिस्तु ब्रह्मात्मैक्यविज्ञानादेव" इत्यपि निरस्तम्। एवं सति ज्ञानस्याज्ञाननिवर्तकतायां प्रमाणानुपलब्धेस्तन्निवृत्तिमूलमोक्षानाश्वासाद् माभूदुदाह-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रणोपलम्भः, श्रुतिः श्रुतार्थापत्तिश्चैतदर्थे प्रमाणतामवगाहेते एव। तत्र श्रुतिस्तावत्–"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति" मृत्युरविद्येति शास्त्रे प्रसिद्धं, तथा "तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः" स्मृतिश्च–(गीता अ०७) "दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया॥ मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते॥१४॥ (अ० ५) ज्ञानेन तु तदज्ञानं, येषां नाशितमात्मनः॥ तेषामादित्यवज्ज्ञानं, प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥" इत्यादि। एवं "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "तरति शोकमात्मवित्," "तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते॥ योगी मायाममेयाय, तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥१॥" इति "अविद्यायाः परं पारं तारयसि" इत्यादिः, श्रुतार्थापत्तिश्च–"ब्रह्मज्ञानाद् ब्रह्मभावः श्रूयमाणस्तद्व्यवधायकाज्ञाननिवृत्तिमन्तरेण नोपपद्यत इति ज्ञानादज्ञाननिवृत्तिं गमयति"। "अनृतेन हि प्रत्यूढाः" "नीहारेण प्रावृताः," "अन्यद्युष्माकमन्तरं," (गीता अ०५) "अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥" इत्यादि श्रुतिस्मृतिशतेभ्योऽज्ञानमेव मोक्षव्यवधायकत्वेनावगतम्, एकस्यैव तत्त्वज्ञानेनाज्ञाननिवृत्त्यभ्युपगमाच्च, नान्यत्र व्यभिचारदर्शनेन ज्ञानस्याज्ञाननिवर्तकत्वबाधोऽपीति चेत्, न, एतस्यैकजीवमुक्तिवादस्य श्रद्धामात्रशरणत्वात्, अन्यथा जीवान्तरप्रातिभासस्य स्वाप्निकजीवान्तरप्रतिभासवद्विभ्रमत्वे जीवप्रतिभासमात्रस्यैव तथात्वं स्यादिति चार्वाकमतसाम्राज्यमेव वेदान्तिना प्राप्तं स्यात्। उक्तश्रुतयस्तु कर्मण एव व्यवधायकत्वं क्षीणकर्मात्मन एव च ब्रह्मभूयं प्रतिपादयितुमुत्सहन्त इति किं शशशृङ्गसहोदराज्ञानादिकल्पनया तदभिप्रायविडम्बनेन। निर्विकल्पकब्रह्मबोधोऽपि शुद्धद्रव्यनयादेशतामेवावलम्बताम्, सर्वपर्यायनयविषयव्युत्क्रम एव तत्प्रवृत्तेः, न तु सर्वथा जगदभावपक्षपातितामिति सम्यग्दृशां वचनोद्गारः॥ शाब्द एव स इत्यत्र तु नाग्रहः, यावत्पर्यायोपरागासम्भवविचारसहकृतेन मनसैव तद्ग्रहसम्भवात्, न केवलमात्मनि, किं तु सर्वत्रैव द्रव्ये पर्यायोपरागानुपपत्तिप्रसूतविचारे मनसा निर्विकल्पक

केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डने ज्ञानस्याज्ञाननिवर्त्तकत्वे प्रमाणतया वेदान्त्युपदर्शितयोः श्रुतिश्रुतार्थापत्त्योरेकजीववादखण्डनेन जैनेष्टकर्मगतमुक्तिव्यवधायकपरतयानयनम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एव प्रत्ययोऽनुभूयते । उक्तं च सम्मतौ–"पज्जवणयवुक्कंतं, वत्थू दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं ॥ जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्पानिव्वयणो ॥१–८॥ इति"। पर्यायनयेन व्युत्क्रान्तं गृहीत्वा विचारेण मुक्तं, वस्तु द्रव्यार्थिकस्य वक्तव्यं, यथा घटो द्रव्यमित्यत्र घटत्वविशिष्टस्य परिच्छिन्नस्य द्रव्यत्वविशिष्टेनापरिच्छिन्नेन सहाभेदान्वयासम्भव इति मृदेव द्रव्यमिति द्रव्यार्थिकप्रवृत्तिः, तत्रापि सूक्ष्मेक्षिकायामपरापरद्रव्यार्थिकप्रवृत्तिर्यावद्द्रव्योपयोगः, न विद्येते पश्चिमे उत्तरे विकल्पनिर्वचने सविकल्पकधीव्यवहारौ यत्र स तथा शुद्धसङ्ग्रहावसान इति यावत्, ततः परं विकल्पवचनाप्रवृत्तेः इत्येतस्या अर्थः ॥ "तत्त्वमसि" इत्यादावप्यात्मनस्तत्तदन्यद्रव्यपर्यायोपरागासम्भवविचारशतप्रवृत्तावेव शुद्धद्रव्यविषयं निर्विकल्पकमिति शुद्धदृष्टौ घटज्ञानाद्ब्रह्मज्ञानस्य को भेदः। एकत्र सदद्वैतमपरत्र च ज्ञानाद्वैतं विषय इत्येतावति भेदे त्वौत्तरकालिकं सविकल्पकमेव साक्षीति सविकल्पकाविकल्पकत्वयोरप्यनेकान्त एव श्रेयान्। तदुक्तम्–" सविअप्पणिव्विअप्पं, इय पुरिसं जो भणेज्ज अविअप्पं ॥ सविअप्पमेव वा णि–च्छएण ण स णिच्छिओ समए ॥१–३५॥ इति"। न च निर्विकल्पको द्रव्योपयोगोऽवग्रह एवेति तत्र विचारसहकृतमनोजन्यत्वानुपपत्तिः, विचारस्येहात्मकत्वेनेहाजन्यस्य व्युपरताकाङ्क्षस्य तस्य नैश्चयिकापायरूपस्यैवाभ्युपगमात्, अपाये नामजात्यादियोजनानियमस्तु शुद्धद्रव्यादेशरूपश्रुतानिश्रितातिरिक्त एवेति विभावनीयं स्वसमयनिष्णातैः। ब्रह्माकारबोधस्य मानसत्वे "नावेदविन्मनुते तं बृहंतं वेदेनैव तद्वेदितव्यं" "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"इत्यादिश्रुतिविरोध इति चेत्, शाब्दत्वेऽपि "यद्वाचानभ्युदितं," "न चक्षुषा गृह्यते, नापि वाचा," "यतो वाचो निवर्तन्ते" इत्यादिश्रुतिविरोधस्तुल्य एव। अथ वागगम्यत्वनिषेधकश्रुतीनां मुख्यवृत्त्याविषयत्वावगाहित्वेनोपपत्तिर्जहदजहल्लक्षणयैव ब्रह्मणि महावाक्यगम्यत्वप्रतिपादनात्, मनसि तु मुख्यामुख्यभेदाभावात्

केवलज्ञान-निरूपणे वेदान्तिमतखण्डने निर्विकल्पकब्रह्मबोधस्य शुद्धद्रव्यनयादेशतासमर्थनेसाक्षितयादर्शिता। याःसम्मतिगाथाया अर्थः, निर्विकल्पकद्रव्योपयोगस्य मानसत्वसमर्थनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

" यन्मनसा न मनुते " इत्यादिविरोध एव ॥ " सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति स मानसीन आत्मा मनसैवानुद्रष्टव्यः " इत्यादि-
श्रुतौ मानसीनत्वं तु मनस्युपाधावुपलभ्यमानत्वं, न तु मनोजन्यसाक्षात्कारत्वं, मनसैवेति तु कर्तरि तृतीया आत्मनोऽकर्तृत्व-
प्रतिपादनार्था मनसो दर्शनकर्तृत्वमाह, न करणतां, औपनिषदसमाख्याविरोधात् । " कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा
धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव" इति श्रुतौ मृद्घट इतिवदुपादानकारणत्वेन मनःसामानाधिकरण्यप्रतिपादनात् , तस्य
निमित्तकारणत्वविरोधाच्चेति चेत्, न, कामादीनां मनोधर्मत्वप्रतिपादिकायाः श्रुतेर्मनःपरिणतात्मलक्षणभावमनोविषयताया एव
न्याय्यत्वात्, "मनसा ह्येव पश्यति, मनसा शृणोति" इत्यादौ मनःकरणस्यापि श्रुतेर्दीर्घकालिकसंज्ञानरूपदर्शनग्रहणेन चक्षुरा-
दिकरणसत्त्वेऽपि तत्रैवकारार्थान्वयोपपत्तेः, त्वन्मतेऽपि ब्रह्मणि मानसत्वविधिनिषेधयोर्वृत्तिविषयत्वतदुपरक्तचैतन्याविषयत्वा-
भ्यामुपपत्तेश्च । शब्दस्य त्वपरोक्षज्ञानजनकत्वे स्वभावभङ्गप्रसङ्ग एव स्पष्टं दूषणम् । न च प्रथमं परोक्षज्ञानं जनयतोऽपि शब्द-
स्य विचारसहकारेण पश्चादपरोक्षज्ञानजनकत्वमिति न दोष इति वाच्यम्, अर्धजरतीयन्यायापातात् । न खलु शब्दस्य परोक्षज्ञा-
नजननस्वाभाव्यं सहकारिसहस्रेणाप्यन्यथाकर्तुं शक्यं, आगन्तुकस्य स्वभावत्वानुपपत्तेः । न च संस्कारसहकारेण चक्षुषा प्रत्यभि-
ज्ञानात्मकप्रत्यक्षजननवदुपपत्तिः, यदंशे संस्कारसापेक्षत्वं तदंशे स्मृतित्वापातो यदंशे च चक्षुःसापेक्षत्वं तदंशे प्रत्यक्षापात इति
भियैव प्रत्यभिज्ञानस्य प्रमाणान्तरत्वमिति जैनैः स्वीकारात् । "स्वे स्वे विषये युगपज्ज्ञानं जनयतोश्चक्षुःसंस्कारयोरार्थसमाजे-
नैकज्ञानजनकत्वमेव पर्यवस्यति, अन्यथा रजतसंस्कारसहकारेणासन्निकृष्टेऽपि रजते चाक्षुषज्ञानापत्तेरन्यथाख्यात्यस्वीकारभङ्गप्र-
सङ्ग" इति वदंस्तपस्वी तूभयात्मकैकज्ञानाननुव्यवसायादेव निराकर्तव्यः, अन्यथा रजतभ्रमेऽप्युभयात्मकतापत्तेः, पर्वतो वह्निमा-

केवलज्ञान-
निरूपणे
वेदान्तमत-
खण्डने ब्रह्म-
ज्ञानस्य न
मानसत्वं
किन्तु शा-
ब्दत्वमेवेति
वेदान्तिप्र-
ज्ञप्तिवि-
धाने तस्य
मानसत्व-
स्थापनं श-
ब्दस्य परो-
क्षज्ञानजन-
कत्वमेवेति
स्थापनञ्च ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नित्यनुमितावपि उभयसमाजादंशे प्रत्यक्षानुमित्यात्मकतापत्तेश्च । अथ मनस इव शब्दस्य परोक्षापरोक्षज्ञानजननस्वभावाङ्गीकाराददोषः, मनस्त्वेन परोक्षज्ञानजनकता, इन्द्रियत्वेन चापरोक्षज्ञानजनकतेत्यस्ति मनस्यवच्छेदकभेद इति चेत्, शब्दस्यापि विषयाजन्यज्ञानजनकत्वेन वा ज्ञानजनकत्वेन वा परोक्षज्ञानजनकता योग्यपदार्थनिरूपितत्वम्पदार्थाभेदपरशब्दत्वेन चापरोक्षज्ञानजनकतेति कथं नावच्छेदकभेदः । धार्मिकस्त्वमसीत्यादौ व्यभिचारवारणाय निरूपितान्तं विशेषणं, इतरव्यावर्त्यं तु स्पष्टमेव ।

एतच्च ' दशमस्त्वमसि ' 'राजा त्वमसि' इत्यादिवाक्याद्दशमोऽहमस्मि राजाहमस्मीत्यादिसाक्षात्कारदर्शनात्कल्प्यते, नाहं दशम इत्यादिभ्रमनिवृत्तेरत इत्थमेव सम्भवात् । साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात्कारिविरोधिज्ञानत्वेनैव विरोधित्वकल्पनात् । न च तत्र वाक्यात्पदार्थमात्रोपस्थितौ मानसः संसर्गबोध इति वाच्यम्, सर्वत्र वाक्ये तथा वक्तुं शक्यत्वेन शब्दप्रमाणमात्रोच्छेदप्रसङ्गादिति चेत्, मैवम्, दशमस्त्वमसीत्यादौ वाक्यात्परोक्षज्ञानानन्तरं मानसज्ञानान्तरस्यैव भ्रमनिवर्तकत्वकल्पनात्, धार्मिकस्त्वमसीत्यादौ विशेष्यांशस्य योग्यत्वादेव योग्यपदार्थनिरूपितेत्यत्र योग्यपदार्थतावच्छेदकविशिष्टेत्यस्यावश्यवाच्यत्वेन महावाक्यादपि तत्पदार्थतावच्छेदकस्यायोग्यत्वेनापरोक्षज्ञानासम्भवाच्च, अयोग्यांशत्यागयोग्यांशोपादानाभिमुखलक्षणावत्त्वमेव योग्यपदार्थत्वमित्युक्तौ च धार्मिकस्त्वमसीत्यादावपि शुद्धापरोक्षविषयत्वे तद्व्यावर्तकविशेषणदानानुपपत्तिः,तथा च योग्यलक्ष्यपरत्वग्रहे उदाहरणस्थानदौर्लभ्यं । अयं च विषयोऽस्माकं पर्यायविनिर्मोकेण शुद्धद्रव्यविषयतापर्यवसायकस्य द्रव्यनयस्येत्यलं ब्रह्मवादेन ॥

किञ्च त्वम्पदार्थाभेदपरशब्दत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वोक्तौ 'यूयं राजान' इत्यतोऽखिलसम्बोध्यविशेष्यकराजत्वप्रकारकापरोक्षशाब्दापत्तिः, तत्र तादृशमानसाभ्युपगमे चान्यत्र कोऽपराधः । एतेन" एकवचनान्तत्वम्पदार्थग्रहणेऽपि न निस्तारः,"एकस्मिन्नेव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यूयमिति प्रयोगेऽगतेश्च,एकाभिप्रायकत्वम्पदग्रहणे च तत्तदभिप्रायकशब्दत्वेन तत्तच्छाब्दबोधहेतुत्वमेव युक्तम्। अत एव 'वाक्यादपि द्रव्यार्थादेशादखण्डः,पदादपि च पर्यायार्थादेशात् सखण्डः शाब्दबोध'इति जैनी शास्त्रव्यवस्था। तस्मान्न शब्दस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वम्।एतेन "अपरोक्षपदार्थाभेदपरशब्दत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वं,अत एव शुक्तिरियमिति वाक्यादाहत्य रजतभ्रमनिवृत्तिः, एवं च चैतन्यस्य वास्तवापरोक्षत्वादपरोक्षज्ञानजनकत्वं महावाक्यस्य" इत्यपि निरस्तम्, वास्तवापरोक्षस्वरूपविषयत्वस्य त्वन्नीत्या तत्त्वमस्यादिवाक्ये सम्भवेऽपि 'दशमस्त्वमसि'इत्यादावसम्भवात्,निवृत्ताज्ञानविषयत्वस्य च शाब्दबोधात्पूर्वमभावात् यदा कदाचिन्निवृत्ताज्ञानत्वग्रहणे पर्वतो वह्निमानित्यादिवाक्यानामप्यपरोक्षस्वरूपविषयतयाऽपरोक्षज्ञानजनकत्वप्रसङ्गात् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "सत्यं ज्ञानमनन्तं" इत्यादिवाक्यानामपरोक्षस्वरूपविषयतयाऽपरोक्षज्ञानजनकत्वे महावाक्यवैयर्थ्यापाताच्च ॥ किञ्चैवं घटोऽस्तीतिशाब्दे चाक्षुषत्वमप्यापतेत्,अपरोक्षपदार्थाभेदपरशब्दादिवापरोक्षपक्षसाध्यकानुमितिसामग्रीतोऽपरोक्षानुमितिरपि च प्रसज्येत। एवं च भिन्नविषयत्वाद्यप्रवेशेनैवानुमितिसामग्र्या लाघवाद्बलवत्त्वमिति विशेषदर्शनकालीनभ्रमसंशयोत्तरप्रत्यक्षमात्रोच्छेद इति बहुतरं दुर्घटम्। एतेन "प्रमात्रभेदविषयत्वेनापरोक्षज्ञानजनकत्वम्" इत्यपि निरस्तम्,'सर्वज्ञत्वादिविशिष्टोऽसि'इत्यादिवाक्यादपि तथाप्रसङ्गात्, ईश्वरो मदभिन्नः, चेतनत्वाद्, मद्वद्, इत्यनुमानादपि तथाप्रसङ्गाच्चेति। "महावाक्यजन्यमपरोक्षं शुद्धब्रह्मविषयमेव केवलज्ञानम्" इति वेदान्तिनां महानेव मिथ्यात्वाभिनिवेश इति विभावनीयं सूरि(सुधी)भिः ॥

इदमिदानीं निरूप्यते–'केवलज्ञानं स्वसमानाधिकरणकेवलदर्शनसमानकालीनं न वा,' 'केवलज्ञानक्षणत्वं स्वसमानाधिकरणदर्शनक्षणाव्यवहितोत्तरत्वव्याप्यं न वा?' एवमाद्याः क्रमोपयोगवादिनां जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यपादानां,

केवलज्ञाननिरूपणे वेदान्तिमतखण्डनेऽपरोक्षाभेदपरत्वेन प्रमात्रभेदविषयत्वेन च शब्दस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वमितितत्प्रश्नप्रतिविधानं वेदान्तिमतखण्डनसमाप्तिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युगपदुपयोगवादिनां च मल्लवादिप्रभृतीनां, 'यदेव केवलज्ञानं तदेव केवलदर्शनम्' इतिवादिनां च महावादिश्रीसिद्धसेनदिवाकराणां साधारण्यो विप्रतिपत्तयः ॥ यत्तु युगपदुपयोगवादित्वं सिद्धसेनाचार्याणां नन्दिवृत्तावुक्तं तदभ्युपगमवादाभिप्रायेण, न तु स्वतन्त्रसिद्धान्ताभिप्रायेण, क्रमाक्रमोपयोगद्वयपर्यनुयोगानन्तरमेव स्वपक्षस्य सम्मतावुद्भावितत्वादिति द्रष्टव्यम्। एतच्च तत्त्वं सयुक्तिकं सम्मतिगाथाभिरेव प्रदर्शयामः-"मणपज्जवनाणंतो, नाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो॥केवलनाणं पुण दं-सणंति नाणंति य समाणं॥काण्ड२-३॥"युगपदुपयोगद्वयाभ्युपगमवादोऽयम्-मनःपर्यायज्ञानमन्तः पर्यवसानं यस्य स तथा, ज्ञानस्य दर्शनस्य च विश्लेषः पृथग्भाव इति साध्यम्।अत्र च छद्मस्थोपयोगत्वं हेतुर्द्रष्टव्यः,

तथा च प्रयोगः-चक्षुरचक्षुरवधिज्ञानानि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनेभ्यः पृथक्कालानि, छद्मस्थोपयोगात्मकज्ञानत्वात्, श्रुतमनःपर्यायज्ञानवत् । वाक्यार्थविषये श्रुतज्ञाने, मनोद्रव्यविशेषालम्बने मनःपर्यायज्ञाने चादर्शनस्वभावे मत्यवधिज्ञाद्दर्शनोपयोगाद्भिन्नकालत्वं प्रसिद्धमेवेति टीकाकृतः । दर्शनत्रयपृथक्कालत्वस्य कुत्राप्येकस्मिन्नसिसाधयिषितत्वात् , स्वदर्शनपृथक्कालत्वस्य च सिसाधयिषितस्योक्तदृष्टान्तयोरभावात्सावरणत्वं हेतुः, व्यतिरेकी च प्रयोगः, तज्जन्यत्वं वा हेतुः, 'यद्यज्जन्यं तत्ततः पृथक्कालम्' इति सामान्यव्याप्तौ यथा दण्डात् घट इति च दृष्टान्त इति तु युक्तं, केवलज्ञानं पुनर्दर्शनं दर्शनोपयोग इति वा ज्ञानं ज्ञानोपयोग इति वा समानं तुल्यकालं तुल्यकालीनोपयोगद्वयात्मकमित्यर्थः, प्रयोगश्च-केवलिनो ज्ञानदर्शनोपयोगावेककालीनौ, युगपदाविर्भूतस्वभावत्वात्, यावेवं तावेवं, यथा रवेः प्रकाशतापौ । अयमभिप्राय आगमविरोधीति केषाञ्चिन्मतं, तानधिक्षिपन्नाह (सम्मतिः)-" केई भणंति जइया, जाणइ तइआ ण पासइ जिणो त्ति ॥ सुत्तमवलंबमाणा, तित्थयरासायणाभीरू ॥ २-४ ॥ "

केवलज्ञान-दर्शनयोर्भेदाभेदविचारे भेदेऽपि क्रमवादि पूज्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणानां यौगपद्यवादिमल्लवादिप्रभृतीनाम्, अभेद एव तयोरिति तदैक्यवादि सिद्धसेनदिवाकराणां विचारास्तत्र सम्मतितात्पर्यम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

केचिज्जिनभद्रानुयायिनो भणन्ति–'यदा जानाति तदा न पश्यति जिन' इति। सूत्रं–"केवली णं भंते इमं रयणप्पभं पुढविं आयारेहिं पमाणेहिं हेऊहिं संठाणेहिं परिवारेहिं जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ ?, हंता गोयमा! केवली णं" इत्यादिकं अवलम्बमानाः। अस्य च सूत्रस्य किलायमर्थस्तेषामभिमतः–'केवली सम्पूर्णबोधः, णमिति वाक्यालङ्कारे। भंते इति भगवन्! इमां रत्नप्रभामन्वर्थाभिधानां पृथ्वीमाकारैः समनिम्नोन्नतादिभिः,प्रमाणैर्दैर्घ्यादिभिः, हेतुभिरनन्तानन्तप्रदेशिकैः स्कन्धैः,संस्थानैः परिमण्डलादिभिः, परिवारैर्घनोदधिवलयादिभिः। जं समयं णो तं समयमिति च 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा. २-३-५.) इति द्वितीया सप्तमीबाधिका,तेन यदा जानाति न तदा पश्यतीति भावः। विशेषोपयोगः सामान्योपयोगान्तरितः, सामान्योपयोगश्च विशेषोपयोगान्तरितः,तत्स्वाभाव्यादिति प्रश्नार्थः।उत्तरं पुनः'हंता गोयमा!'इत्यादिकं प्रश्नानुमोदकं हंतेत्येतन्निगमनप्रकारेण, गौतमेति गोत्रेणामंत्रणं प्रश्नानुमोदनार्थं पुनस्तदेव सूत्रमुच्चारणीयं हेतुप्रश्नस्य चात्र सूत्रे उत्तरं। "सागारे से नाणे हवइ, अणागारे से दंसणे" इति,साकारं विशेषावलम्बि अस्य केवलिनो ज्ञानं भवति, अनाकारमतिक्रान्तविशेषं सामान्यावलम्बि दर्शनं। न चानेकप्रत्ययोत्पत्तिरेकदा निरावरणस्यापि तत्स्वाभाव्यात्। न हि चक्षुर्दर्शनकाले श्रोत्रज्ञानोत्पत्तिरुपलभ्यते। न चावृतत्वात्तदा तदनुत्पत्तिः, स्वसमयेऽप्यनुत्पत्तिप्रसङ्गात्। न चाणुना मनसा यदा यदिन्द्रियसंयोगस्तदा तज्ज्ञानमिति क्रमः परवाद्यभिमतोऽपि युक्तिमान्?, सर्वाङ्गीणसुखोपलम्भाद्युपपत्तये मनोवर्गणापुद्गलानां शरीरव्यापकत्वस्यैव कल्पनात् सुषुप्तौ ज्ञानानुत्पत्तये त्वङ्मनोयोगस्य ज्ञानसामान्ये हेतुत्वेन रासनकाले त्वाचरासनोभयोत्पत्तिवारणस्येत्थमप्यसम्भवाच्च। ततो युगपदनेकप्रत्ययानुत्पत्तौ स्वभाव एव कारणं नान्यत्, सन्निहितेऽपि च द्व्यात्मके विषये सर्वविशेषानेव केवलज्ञानं गृह्णाति, सर्वसामान्यानि च केवलदर्शनमिति स्वभाव

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनोपयोगविषये क्रमोपयोगवाद्यभिमतप्रज्ञापनाविस्तितमपदसूत्रार्थः, क्रमोपयोगसाधकोपपत्त्युपदर्शनं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एवानयोरिति । एते च व्याख्यातारस्तीर्थकराशातनाया अभीरवः तीर्थकरमाशातयन्तो न बिभ्यतीति यावत् । एवं हि निःसामान्यस्य निर्विशेषस्य वा वस्तुनोऽभावेन न किञ्चिज्जानाति केवली न किञ्चित्पश्यतीत्यधिक्षेपस्यैव पर्यवसानात् । न चान्यतरमुख्योपसर्जनविषयतामपेक्ष्योभयग्राहित्वेऽप्युपयोगक्रमाविरोधः, मुख्योपसर्जनभावेनोभयग्रहणस्य क्षयोपशमविशेषप्रयोज्यत्वात्, केवलज्ञाने छद्मस्थज्ञानीययावद्विषयतोपगमेऽवग्रहादिसङ्कीर्णरूपप्रसङ्गाद्, उक्तसूत्रस्य तु न भवदुक्त एवार्थः, किं त्वयं, 'केवलीमां रत्नप्रभां पृथिवीं यैराकारादिभिः समकं तुल्यं जानाति, न तैराकारादिभिस्तुल्यं पश्यतीति किमेवं ग्राह्यं ?, हंता—एवमित्यनुमोदना, ततो हेतौ पृष्टे सति तत्प्रतिवचनं भिन्नालम्बनप्रदर्शकं तज्ज्ञानं साकारं भवति यतो दर्शनं पुनरनाकारमित्यतो भिन्नालम्बनावेतौ प्रत्ययाविति' टीकाकृतः । अत्र यद्यपि जं समयं इत्यत्र जं इति अमूभावः प्राकृतलक्षणात्, यत्कृतमित्यत्र जं कयमिति प्रयोगस्य लोकेऽपि दर्शनादिति वक्तुं शक्यते, तथापि तृतीयान्तपदवाच्यैराकारादिभिर्लुप्ततृतीयान्तसमासस्थयत्पदार्थस्य समकपदार्थस्य चान्यूनानतिरिक्तधर्मविशिष्टस्य रत्नप्रभायां भिन्नलिङ्गत्वादनन्वय इति यत् समकमित्यादिक्रियाविशेषणत्वेन व्याख्येयम् । रत्नप्रभाकर्मकाकारादिनिरूपितयावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकज्ञानवान् न तादृशतावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकदर्शनवान् केवलीति फलितोर्थः । यदि च तादृशस्य विशिष्टदर्शनस्य निषेध्यस्याप्रसिद्धेर्न तन्निषेधः "असतो णत्थि णिसेहो" (विशे. १५७४) इत्यादिवचनादिति सूक्ष्ममीक्ष्यते, तदा 'क्रियाप्रधानमाख्यातम्' इति वैयाकरणनयाश्रयणेन रत्नप्रभाकर्मकाकारादिनिरूपितयावदन्यूनानतिरिक्तविषयताकं ज्ञानं, न तादृशं केवलिकर्तृकं दर्शनमित्येव बोधः, सर्वनयात्मके भगवत्प्रवचने यथोपपन्नान्यतरनयग्रहणे दोषाभावादिति तु वयमालोचयामः । हेतुयौगपद्यादपि बलेनोपयोगयौगपद्यमापततीत्याह—"केवलनाणा-

केवलज्ञान-निरूपणे केवलज्ञान-दर्शनोपयोग-विषये युगपदुपयोगद्वय-वादि-तद-भेदवादिमतेनोक्तसूत्रार्थः,तद्विषयारेकाप्रतिविधानं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वरण–क्खयजायं केवलं जहा नाणं। तह दंसणं पि जुज्जइ,णियआवरणक्खयस्संते ॥२–५॥" स्पष्टा,नवरं निजावरणक्षयस्यान्त इति दर्शनावरणक्षयस्यानन्तरक्षण इत्यर्थः । न चैकदोभयावरणक्षयेऽपि स्वभावहेतुक एवोपयोगक्रम इत्युक्तमपि साम्प्रतं, एवं सति स्वभावेनैव सर्वत्र निर्वाहे कारणान्तरोच्छेदप्रसङ्गात्, कार्योत्पत्तिस्वभावस्य कारणेनैव तत्क्रमस्वभावस्य तत्क्रमेणैव निर्वाह्यत्वाच्च । एतेन "सर्वव्यक्तिविषयकत्वसर्वजातिविषयकत्वयोः पृथगेवावरणक्षयकार्यतावच्छेदकत्वादर्थतस्तदवच्छिन्नोपयोगद्वयसिद्धिः" इत्यप्यपास्तम् । तत्सिद्धावपि तत्क्रमासिद्धेरावरणद्वयक्षयकार्ययोः समप्राधान्येनार्थगतेरप्रसराच्च । न च मतिश्रुतज्ञानावरणयोरेकदा क्षयोपशमेऽपि यथा तदुपयोगक्रमस्तथा ज्ञानदर्शनावरणयोर्युगपत्क्षयेऽपि केवलिनामुपयोगक्रमः स्यादिति शङ्कनीयं, तत्र श्रुतोपयोगे मतिज्ञानस्य हेतुत्वेन शाब्दादौ प्रत्यक्षादिसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वेन च तत्सम्भवात् । अत्र तु क्षीणावरणत्वेन परस्परकार्यकारणभावप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावाद्यभावेन विशेषात् । एतदेवाह–"भण्णइ खीणावरणे, जह मइनाणं ।जिणे ण संभवइ ॥ तह खीणावरणिज्जे, विसेसओ दंसणं णत्थि ॥२–६॥" भण्यते निश्चित्योच्यते, क्षीणावरणे जिने यथा मतिज्ञानं मत्यादिज्ञानं अवग्रहादिचतुष्टयरूपं वा ज्ञानं न सम्भवति, तथा क्षीणावरणीये विश्लेषतो ज्ञानोपयोगकालान्यकाले दर्शनं नास्ति क्रमोपयोगत्वस्य मत्याद्यात्मकत्वव्याप्यत्वात्सामान्यविशेषोभयालम्बनक्रमोपयोगत्वस्य चावग्रहाद्यात्मकत्वव्याप्यत्वात्केवलयोः क्रमोपयोगत्वे तत्त्वापत्तिरित्यापादनपरोऽयं ग्रन्थः । प्रमाणं तु–"केवलदर्शनं केवलज्ञानतुल्यकालोत्पत्तिकं, तदेककालीनसामग्रीकत्वात्, तादृशकार्यान्तरवत्", इत्युक्ततर्कानुगृहीतमनुमानमेवेति द्रष्टव्यम् । न केवलं क्रमवादिनोऽनुमानविरोधः, अपि त्वागमविरोधोऽपीत्याह–"सुत्तंमि चेव साइ–अपज्जवसियं ति केवलं वुत्तं । सुत्तासायणभीरू–हि तं च दट्ठव्वयं

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनयोरुपयोगयौगपद्यसमर्थनं क्रमवादिनोनुमानामादिविरोधप्रदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होइ ॥२–७॥" साद्यपर्यवसिते केवलज्ञानदर्शने सूत्रे प्रोक्ते, क्रमोपयोगे तु द्वितीयसमये तयोः पर्यवसानमिति कुतोऽपर्यवसितत्ता ? तेन सूत्राशातनाभीरुभिः क्रमोपयोगवादिभिस्तदपि द्रष्टव्यं। चोऽप्यर्थः। नु केवलं "केवली णं भंते इमं रयणप्पभं पुढविं" इत्याद्युक्तसूत्रयथाश्रुतार्थानुपपत्तिमात्रमिति भावः। न च द्रव्यापेक्षयाऽपर्यवसितत्वं समाधेयं, द्रव्याविषयप्रश्नोत्तरा श्रुतेः। न च 'अर्पितानर्पितसिद्धेः' इति तत्त्वार्थ (५अ० ३१) सूत्रानुरोधेन द्रव्यार्पणयाऽश्रुतयोरपि तयोः कल्पनं युक्तं, अन्यथा पर्यायाणामुत्पाद-विगमात्मकत्वाद् भवतोऽपि कथं तयोरपर्यवसानतेति पर्यनुयोज्यम्?, यद्धर्मावच्छिन्ने क्रमिकत्वप्रसिद्धिः तद्धर्मावच्छिन्ने ऽपर्यवसितत्वान्वयस्य निराकांक्षत्वात्, अन्यथा ऋजुत्ववक्रत्वे अपर्यवसिते इति प्रयोगस्यापि प्रसङ्गात्, मम तु रूपरसात्मकैकद्रव्यवदक्रम-भाविभिन्नोपाधिकोत्पादविगमात्मकत्वेऽपि केवलिद्रव्यादव्यतिरेकतस्तयोरपर्यवसितत्वं नानुपपन्नम्। अथ पर्यायत्वावच्छेदकधर्म-विनिर्मोकेण शुद्धद्रव्यार्थादेशप्रवृत्तेः क्रमैकान्तेऽपि केवलयोरपर्यवसितत्वमुपपत्स्यते, अत एव पर्यायद्रव्ययोरादिष्टद्रव्यपर्यायत्वं सिद्धान्ते गीयते। तत्तदवच्छेदकविनिर्मोकस्य विवक्षाधीनत्वादिति चेत्, किमयमुक्तधर्मविनिर्मोकस्तत्तत्पदार्थतावच्छेदकाविशिष्टयो-रभेदान्वयानुपपत्त्या शुद्धद्रव्यलक्षणया, उत उक्तधर्मस्य विशेषणत्वपरित्यागेनोपलक्षणत्वमात्रविवक्षया ?। आद्ये आद्यपद एव लक्षणायां शुद्धद्रव्यं शुद्धात्मद्रव्यं वाऽपर्यवसितमित्येव बोधः स्यात्, सादित्वस्यापि तत्रान्वयप्रवेशे तु केवलिद्रव्यं साद्यपर्य-वसितमित्याकारक एव, उभयपदलक्षणायां तु शुद्धद्रव्यविषयको निर्विकल्पक एव बोध इति केवलज्ञानदर्शने साद्यपर्यवसिते इति बोधस्य कथमप्यनुपपत्तिः। अन्त्ये च केवलत्वोपलक्षितात्मद्रव्यमात्रग्रहणे तत्र सादित्वान्वयानुपपत्तिः, केवलिपर्यायग्रहणे च नवविधोपचारमध्ये 'पर्याये पर्यायोपचार' एवाश्रयणीयः स्यादिति समीचीनं द्रव्यार्थादेशसमर्थनं। नियतोपलक्ष्यतावच्छेदकरूपा-

केवलज्ञान-निरूपणे केवलज्ञान-दर्शनयोः साद्यनन्त-स्थितिकत्वे-नापि युगप-दुपयोगव्यव-स्थापनं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भात्रेऽपि सम्मुग्धोपलक्ष्यविषयकतादृशबोधस्वीकारे च 'पर्यायोऽपर्यवसित' इत्यादेरपि प्रसक्तिः। द्रव्यार्थतया केवळज्ञानकेवलदर्शनयोरपर्यवसितत्वाभ्युपगमे द्वितीयक्षणेऽपि तयोः सद्भावप्रसक्तिः, अन्यथा द्रव्यार्थत्वायोगात्। तदेवं क्रमाभ्युपगमे तयोरागमविरोध इत्युपसंहरन्नाह– " संतंमि केवले दं-सणम्मि नाणस्स संभवो णत्थि । केवलनाणम्मि य दं-सणस्स तम्हा अनिहणाइं ॥२-८॥" स्वरूपतो द्वयोः क्रमिकत्वेऽन्यतरकालेऽन्यतराभावप्रसङ्गः, तथा चोक्तवक्ष्यमाणदूषणगणोपनिपातः, तस्माद् द्वावप्युपयोगौ केवलिनः स्वरूपतोऽनिधनावित्यर्थः । इत्थं ग्रन्थकृदक्रमोपयोगद्वयाभ्युपगमेन क्रमोपयोगवादिनं पर्यनुयुज्य स्वपक्षं दर्शयितुमाह– " दंसणनाणावरण-क्खए समाणम्मि कस्स पुव्वयरो(रं) ॥ होज्ज व समओप्पाओ, हंदि दुवे णत्थि उवओगा ॥ २–९ ॥ " सामान्यविशेषपरिच्छेदावरणापगमे कस्य प्रथमतरमुत्पादो भवेत् ? अन्यतरोत्पादे तदितरस्याप्युत्पादप्रसङ्गात्, अन्यतरसामग्र्या अन्यतरप्रतिबन्धकत्वे चोभयोरप्यभावप्रसङ्गात् " सव्वाओ लद्धीओ सागारोवओगोवउत्तस्सेति " वचनप्रामाण्यात्प्रथमं केवलज्ञानस्य पश्चात्केवलदर्शनस्योत्पाद इति चेत्, न, एतद्वचनस्य लब्धियौगपद्य एव साक्षित्वादुपयोगक्रमाक्रमयोरौदासीन्यात्। यौगपद्येनापि निर्वाहेऽर्थाद्दर्शनेऽनन्तरोत्पत्त्यसिद्धेः एकक्षणोत्पत्तिककेवलज्ञानयोरेकक्षणन्यूनाधिकायुष्कयोः केवलिनोः क्रमिकोपयोगद्वयधारायां निर्वाहयितुमशक्यत्वाच्च । अथ ज्ञानोपयोगसामान्ये दर्शनोपयोगत्वेन हेतुतेति निर्विकल्पकसमाधिरूपच्छद्मस्थकालीनदर्शनात् प्रथमं केवलज्ञानोत्पत्तिः केवलदर्शने केवलज्ञानत्वेन विशिष्य हेतुत्वाच्च द्वितीयक्षणे केवलदर्शनोत्पत्तिः, ततश्च क्रमिकसामग्रीद्वयसम्पत्त्या क्रमिकोपयोगद्वयधारानिर्वाह इति, एकक्षणन्यूनाधिकायुष्कयोस्त्वेकक्षणे केवलज्ञानोत्पत्त्यस्वीकार एव गतिरिति चेत्, न, "दंसणपुव्वं नाणं (२–२२)" इत्यादिना तथाहेतुत्वस्य प्रमाणाभावेन निरसनीयत्वात्, उत्पन्नस्य केवलज्ञानस्य

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनयोरुपयोगाक्रमवादिमतेन क्रमवादिमतनिरस्य ज्ञानदर्शनयोः केवलिन्यैक्यमिति स्वसिद्धान्तसमर्थनमेकक्षणविषमायुर्दृष्टान्तेन क्रमपक्षनिरासश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षायिकभावत्वेन नाशायोगाच्च । न च मुक्तिसमये क्षायिकचारित्रनाशवदुपपत्तिः क्षायिकत्वेऽपि तस्य योगस्थैर्यनिमित्तकत्वेन निमित्तनाशनाश्यत्वात्, केवलज्ञानस्य चानैमित्तिकत्वादुत्पत्तौ ज्ञप्तौ चावरणक्षयातिरिक्तनिमित्तानपेक्षत्वेनैव तस्य स्वतन्त्रप्रमाणत्वव्यवस्थितेः, अन्यथा 'सापेक्षमसमर्थम्' इति न्यायात्तत्राप्रामाण्यप्रसङ्गात् । एतेन 'केवलदर्शनसामग्रीत्वेन स्वस्यैव स्वनाशकत्वमिति केवलज्ञानक्षणिकत्वम्' इत्यप्यपास्तम्, अनैमित्तिके क्षणिकत्वायोगात्, अन्यथा तत्क्षण एव तत्क्षणवृत्तिकार्ये नाशक इति सर्वत्रैव सूक्ष्मर्जुसूत्रनयसाम्राज्यस्य दुर्निवारत्वादिति किमतिपल्लवितेन ? । नन्वियमनुपपत्तिः क्रमोपयोगपक्ष एवेत्यक्रमौ द्वावुपयोगौ स्तामित्याशङ्कते मल्लवादी, "भवेद्वा समयमेककालमुत्पादस्तयोरिति" तत्रैकोपयोगवादी ग्रन्थकृत् सिद्धान्तयति, हंदि ज्ञायतां, द्वावुपयोगौ नैकदेति, सामान्यविशेषपरिच्छेदात्मकत्वात्केवलज्ञानस्य, यदेव ज्ञानं तदेव दर्शनमित्यत्रैव निर्भरः, उभयहेतुसमाजे समूहालम्बनोत्पादस्यैवान्यत्र दृष्टत्वान्नात्रापरिदृष्टकल्पनाक्लेश इति भावः । अस्मिन्नेव वादे केवलिनः सर्वज्ञतासम्भव इत्याह–"जइ सव्वं सायारं, जाणइ एक्कसमएण सव्वण्णू॥जुज्जइ सया वि एवं, अहवा सव्वं न जाणाइ॥२-१०॥" यदि सर्वं सामान्यविशेषात्मकं जगत्, साकारं तत्तज्जातिव्यक्तिवृत्तिधर्मविशिष्टं। साकारमिति क्रियाविशेषणं वा । निरवच्छिन्नतत्तज्जातिप्रकारतानिरूपिततत्तद्व्यक्तिविशेष्यतासहितं परस्परं यावद्द्रव्यपर्यायनिरूपितविषयतासहितं वा यथा स्यात्तथेत्यर्थः । जानात्येकसमयेन सर्वज्ञः पश्यति चेति शेषः, तदा सदापि सर्वकालं युज्यते,एवं सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं चेत्यर्थः । अथवेत्येतद्विपरीत्ये, सर्वं न जानाति सर्वं न जानीयादेकदेशोपयोगवर्त्तित्वान्मतिज्ञानवदित्यर्थः । तथा च केवलज्ञानमेव केवलदर्शनमिति स्थितम्। अव्यक्तत्वादपि पृथग्दर्शनं केवलिनि न सम्भवतीत्याह–"परिसुद्धं सायारं, अविअत्तं दंसणं अणायारं॥ ण य खीणा-

केवलज्ञान-निरूपणे केवलज्ञान-दर्शनयोरैक्यमित्यस्मिन्यक्ष एव सर्वज्ञतासम्भवस्य युक्तितः साधनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वरणिज्जे, जुज्जइ स(सु)वियत्तमविअत्तं ॥२-११॥" ज्ञानस्य हि व्यक्ततारूपं, दर्शनस्य पुनरव्यक्तता । न च क्षीणावरणेऽर्हति व्यक्तताऽव्यक्तते युज्येते, ततः 'सामान्यविशेषज्ञेयसंस्पर्श्युभयैकस्वभाव एवायं केवलिप्रत्ययः', न च ग्राह्यद्वित्वाद्ग्राहकद्वित्वमिति सम्भावनापि युक्ता, केवलज्ञानस्य ग्राह्यानन्त्येनानन्ततापत्तेः, विषयभेदकृतो न ज्ञानभेद इत्यभ्युपगमे तु दर्शनपार्थक्ये का प्रत्याशा, आवरणद्वयक्षयादुभयैकस्वभावस्यैव कार्यस्य सम्भवात् । न चैकस्वभावप्रत्ययस्य शीतोष्णस्पर्शवत्परस्परविभिन्नस्वभावद्वयविरोधः, दर्शनस्पर्शनशक्तिद्वयात्मकैकदेवदत्तवत्स्वभावद्वयात्मकैकप्रत्ययस्य केवलिन्यविरोधात् । ज्ञानत्वदर्शनत्वधर्माभ्यां ज्ञानदर्शनयोर्भेदः, न तु धर्मिभेदेनेति परमार्थः । अत एव तदावरणभेदेऽपि स्याद्वाद एव, तदुक्तं स्तुतौ ग्रन्थकृतैव (निश्चयद्वात्रिंशिका) "चक्षुर्दर्शनविज्ञानं, परमाणावौष्ण्यरौक्ष्यवत् । तदावरणमप्येकं, न वा कार्यविशेषतः ॥ ८ ॥" इति । परमाणावुष्णरूक्षस्पर्शद्वयसमावेशवच्चाक्षुषे ज्ञानत्वदर्शनत्वयोः समावेश इत्यर्थः ॥ इत्थं च चाक्षुषज्ञानदर्शनावरणकर्मापि परमार्थत एकं, कार्यविशेषत उपाधिभेदतो वा नैकमिति सिद्धम् । एवमवधिकेवलस्थलेऽपि द्रष्टव्यम् । तदाह–"चक्षुर्वद्विषयाख्याति–रवधिज्ञानकेवले ॥शेषवृत्तिविशेषात्तु, ते मते ज्ञानदर्शने ॥२०॥ इति" । चक्षुर्वच्चाक्षुषवद्विषयाख्यातिः स्पृष्टज्ञानाभावः अस्पृष्टज्ञाने इति यावत्, भावाभावरूपे वस्तुन्यभावत्वाभिधानमपि दोषानावहं, शेषा वृत्तयोऽस्पृष्टज्ञानानि ताभ्यो विशेषः, स्पृष्टताविशेषेण वक्ष्यमाणरीत्या स्पृष्टाविषयवृत्तित्वव्यङ्ग्येन, तस्मात्ते अवधिकेवले ज्ञानपदेन दर्शनपदेन च वाच्ये इत्येतदर्थः ॥ क्रमाक्रमोपयोगद्वयपक्षे भगवतो यदापद्यते तदाह–" अद्दिट्ठं अण्णायं, च केवली एव भासइ सया वि ॥ एगसमयम्मि हंदी, वयणविगप्पो ण संभवइ॥२-१२॥" आद्यपक्षे ज्ञानकालेऽदृष्टं, दर्शनकाले चाऽज्ञातं, द्वितीयपक्षे च सामान्यांशेऽज्ञातं विशेषांशे चादृष्टं, एवमुक्तप्रकारेण केवली सदा

॥ केवलज्ञाननिरूपणे ज्ञानदर्शनयोर्व्यक्ताऽव्यक्तरूपत्वेन भेदवादिमतं केवलिनि तदनुपपत्तिप्रदर्शनेन निराकृतम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाषते तत "एकस्मिन् समये ज्ञातं दृष्टं च भगवान् भाषते," इत्येष वचनस्य विकल्पो विशेषो भवद्दर्शने न भवतीति गृह्यतां। न चान्यतरकालेऽन्यतरोपलक्षणादुपसर्जनतया विषयान्तरग्रहणाच्चोक्तवचनविकल्पोपपत्तिः, एवं सति भ्रान्तच्छद्मस्थेऽपि तथाप्रयोगप्रसङ्गात्। यदा कदाचित् शृङ्गग्राहिकया ज्ञानदर्शनविषयस्यैव पदार्थस्य तद्बुद्धावनुप्रवेशादिति स्मर्तव्यम्। तथा च सर्वज्ञत्वं न सम्भवतीत्याह–"अण्णायं पासंतो, अद्दिट्ठं च अरहा वियाणंतो॥ किं जाणइ किं पासइ, कह सव्वण्णू त्ति वा होइ॥२–१३॥" अज्ञातं पश्यन्नदृष्टं च जानानः किं जानाति किं वा पश्यति? न किञ्चिदित्यर्थः। कथं वा तस्य सर्वज्ञता भवेत्? न कथमपीत्यर्थः। ज्ञानदर्शनयोर्विषयविधयैकसंख्याशालित्वादप्येकत्वमित्याह–"केवलनाणमणंतं, जहेव तह दंसणं पि पण्णत्तं॥ सागारग्गहणाहि य, णियमपरित्तं अणागारं॥२–१४॥" यद्येकत्वं ज्ञानदर्शनयोर्न स्यात्तदाऽल्पविषयत्वाद्दर्शनमनन्तं न स्यादिति "अणंते केवलनाणे अणंते केवलदंसणे" इत्यागमविरोधः प्रसज्येत, दर्शनस्य हि ज्ञानाद्भेदे साकारग्रहणादनन्तविशेषवर्तिज्ञानादनाकारं सामान्यमात्रावलम्बि केवलदर्शनं, यतो नियमेनैकान्तेनैव परीतमल्पं भवतीति कुतो विषयाभावादनन्तता?। न च उभयोस्तुल्यविषयत्वाविशेषेऽपि मुख्योपसर्जनभावकृतो विशेष इति वाच्यं, विशेषणविशेष्यभावेन तत्त्वनयजनितवैज्ञानिकसम्बन्धावच्छिन्नविषयतया वा तत्र कामचारात्। आपेक्षिकस्य च तस्यास्मदादिबुद्धावेवाधिरोहात्। एतच्च निरूपितं तत्त्वं "जं जं जे जे भावे" इत्यादि(आवश्यक)निर्युक्ति(२८२)गाथाया नयभेदेन व्याख्याद्वयेऽनेकान्तव्यवस्थायामस्माभिः(पत्र ८ पृ०२)॥ अक्रमोपयोगद्वयवादी तु प्रकृतगाथायां साकारे यद्ग्रहणं दर्शनं तस्य नियमोऽवश्यम्भावो यावन्तो विशेषास्तावन्त्यखण्डसखण्डोपाधिरूपाणि जातिरूपाणि वा सामान्यानीति हेतोस्तेनापरीतमनन्तमित्यकारप्रश्लेषेण व्याचष्टे, क्रमवादे ज्ञानदर्शनयोरपर्यवसितत्वादिकं नोपपद्यत इति

केवलज्ञाननिरूपणे क्रमतोऽक्रमतो वोपयोगद्वयाभ्युपगमे भगवतो ज्ञातदृष्टभाषित्वासंभवदोषस्य निरूपणम्॥ विषयसंख्याविचारेणापि ज्ञानदर्शनयोरैक्यसमर्थनम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदुक्तं तत्राक्षेपमुद्दङ्क्य समाधत्ते–" भण्णइ जह चउनाणी, जुज्जइ णियमा तहेव एयं पि। भण्णइ ण पंचनाणी, जहेव अरहा तहेयं पि ॥ २–१५ ॥ " भण्यते आक्षिप्यते यथा क्रमोपयोगप्रवृत्तोऽपि मत्यादिचतुर्ज्ञानी तच्छक्तिसमन्वयादपर्यवसितचतुर्ज्ञानो ज्ञातदृष्टभाषी ज्ञाता द्रष्टा च नियमेन युज्यते। तथैतदप्येकत्ववादिना यदपर्यवसितत्वादिक्रमोपयोगे केवलिनि प्रेर्यते, तदपि सार्वदिककेवलज्ञानदर्शनशक्तिसमन्वयादुपपद्यत इत्यर्थः। भण्यतेऽत्रोत्तरं दीयते–यथैवार्हन्न पञ्चज्ञानी, तथैवैतदपि क्रमवादिना यदुच्यते, 'भेदतो ज्ञानवान् दर्शनवांश्च,' तदपि न भवतीत्यर्थः। मत्याद्यावरणक्षयेऽप्येकदेशग्राहिणो मतिज्ञानादेरिव, दर्शनावरणक्षयेऽपि तादृशदर्शनस्य केवलिनि भेदेनानुपपत्तेरिति भावः। इयांस्तु विशेषः–यदभेदेनापि केवलज्ञाने दर्शनसंज्ञा सिद्धान्तसम्मता, न तु मतिज्ञानादिसंज्ञेति, तत्र हेतू अन्वर्थोपपत्त्यनुपपत्ती एव द्रष्टव्ये। अयं च प्रौढिवादः, वस्तुतः क्रमवादे यदा जानाति तदा पश्यतीत्यादेरनुपपत्तिरेव, आश्रयत्वस्यैवाख्यातार्थत्वात्। लब्धेस्तदर्थत्वे तु घटादर्शनवेलायामपि घटं पश्यतीतिप्रयोगप्रसङ्गात्, घटदर्शनलब्धेस्तदानीमपि विद्यमानत्वात्। 'चक्षुष्मान् सर्वं पश्यति, न त्वन्ध' इत्यादौ त्वगत्या लब्धेर्योग्यताया वाऽऽख्यातार्थत्वमभ्युपगम्यत एव, न तु सर्वत्राप्ययं न्यायः, अतिप्रसङ्गात्। न च सिद्धान्ते विना निक्षेपविशेषमप्रसिद्धार्थे पदवृत्तिरवधार्यते, षट्षष्टिसागरोपमस्थितिकत्वादिकमपि मतिज्ञानादेर्लब्ध्यपेक्षयैवेति दुर्वचं, एकस्या एव क्षयोपशमरूपलब्धेस्तावत्कालमनवस्थानात्, द्रव्याद्यपेक्षया विचित्रापरापरक्षयोपशमसन्तानस्यैव प्रवृत्त्युपगमात्। किं त्वेकजीवावच्छेदेनाज्ञानाविरिक्तविरोधिसामग्र्यसमवहितषट्षष्टिसागरोपमक्षणत्वव्याप्यस्वसजातीयोत्पत्तिकत्वे सति तदधिकक्षणानुत्पत्तिकस्वसजातीयत्वरूपं तत्पारिभाषिकमेव वक्तव्यं, एवमन्यदप्यूह्यम्। क्रमेण युगपद्वा परस्परनिरपेक्षस्वविषयपर्यवसितज्ञानदर्शनोपयोगौ केवलिन्यसर्वा-

केवलज्ञाननिरूपणे उपयोगक्रमवादिविहितस्य दोषोद्धारस्य साक्षेपं परिहरणं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थत्वान्मत्यादिज्ञानचतुष्टयवन्न स्त इति दृष्टान्तभावनापूर्वमाह–"पण्णवणिज्जा भावा, समत्तसुअनाणदंसणाविसओ। ओहिमणपज्जवाण य, अण्णोण्णविलक्खणाविसओ ॥ २–१६ ॥ तम्हा चउव्विभागो, जुज्जइ ण उ नाणदंसण जिणाणं। सयलमणावरणमणंतमक्खयं केवलं जम्हा ॥ २–१७॥" प्रज्ञापनीया शब्दाभिलाप्या भावा द्रव्यादयः समस्तश्रुतज्ञानस्य द्वादशाङ्गवाक्यात्मकस्य दर्शनाया दर्शनप्रयोजिकायास्तदुपजाताया बुद्धेः विषय आलम्बनं, मतेरपि त एव शब्दावसिता विषया द्रष्टव्याः, शब्दपरिकर्मणाहितक्षयोपशमजनितस्य ज्ञानस्य यथोक्तभावविषयस्य मतित्वान्मतिश्रुतयोरसर्वपर्यायसर्वद्रव्यविषयतया तुल्यार्थत्वप्रतिपादनाच्च, अवधिमनःपर्याययोः पुनरन्योन्यविलक्षणा भावा विषयः, अवधे रूपिद्रव्यमात्रं, मनःपर्यायस्य च मन्यमानानि द्रव्यमनांसीत्यसर्वार्थान्येतानि ॥ तस्माच्चतुर्णां मत्यादीनां विभागो युज्यते तत्तत्क्षयोपशमप्रत्ययभेदात्, न तु जिनानां ज्ञानदर्शनयोः। 'नाणदंसण त्ति' अविभक्तिको निर्देशः सूत्रत्वात्। कुतः पुनरेतदित्यत आह, यस्मात् केवलं सकलं परिपूर्णं। तदपि कुतः? यतोऽनावरणं, न ह्यनावृतमसकलविषयं भवति। न च प्रदीपेन व्यभिचारः, यतोऽनन्तमनन्तार्थग्रहणप्रवृत्तं। तदपि कुतः? यतोऽक्षयं, क्षयो हि विरोधिसजातीयेन गुणेन स्यात्तदभावे तस्याक्षयत्वं, ततश्चानन्तत्वमनवद्यमिति भावः। तस्मादक्रमोपयोगद्वयात्मक एक एव केवलोपयोगः। तत्रैकत्वं व्यक्त्या, द्वयात्मकत्वं च नृसिंहत्ववदांशिकजात्यन्तररूपत्वमित्येके। माषे स्निग्धोष्णत्ववद्व्याप्यवृत्तिजातिद्वयरूपमित्यपरे। केवलत्वमावरणक्षयात्, ज्ञानत्वं जातिविशेषो, दर्शनत्वं च विषयताविशेषो, दोषक्षयजन्यतावच्छेदक इति तु वयम्। ननु भवदुक्तपक्षे 'केवली णं' इत्यादिसूत्रे 'जं समयं' इत्यादौ यत्समकमित्याद्यर्थो न सर्वस्वरससिद्धः, तादृशप्रयोगान्तरे तथाविवरणाभावात्, तथा (भगवतीशतक १८ उद्देश १०) 'नाणदंसणट्ठयाए दुवे अहं' इत्याद्या-

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनयोरनावरणत्वादिसमस्वरूपत्वेनाऽैक्यमितिसमर्थितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गमविरोधोऽपि, यद्धर्मविशिष्टविषयावच्छेदेन भेदनयार्पणं तद्धर्मविशिष्टापेक्षयैव द्वित्वादेः साकांक्षत्वात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गादित्याशङ्क्य युक्तिसिद्धः सूत्रार्थो ग्राह्यस्तेषां स्वसमयपरसमयादिविषयभेदेन विचित्रत्वादित्यभिप्रायवानाह–" परवत्तव्वयपक्खा, अविसुद्धा तेसु तेसु अत्थेसु । अत्थगइओ अ तेसिं, विअंजणं जाणओ कुणइ ॥ २–१८ ॥" परेषां वैशेषिकादीनां यानि वक्तव्यानि तेषां पक्षा अविशुद्धास्तेषु तेष्वर्थेषु सूत्रे तत्तन्नयपरिकर्मणादिहेतोर्निबद्धाः। अर्थगत्यैव सामर्थ्येनैव तेषामर्थानां व्यक्तिं सर्वप्रवादमूलद्वादशाङ्गाविरोधेन ज्ञको ज्ञाता करोति। तथा च 'जं समयं' इत्यादेर्यथाश्रुतार्थे केवली श्रुतावधिमनःपर्यायकेवल्यन्यतरो ग्राह्यः, परमावधिकाधोवधिकच्छद्मस्थातिरिक्तविषये स्नातकादिविषये वा तादृशसूत्रप्रवृत्तौ तत्र परतीर्थिकवक्तव्यताप्रतिबद्धत्वं वाच्यमेवमन्यत्रापीति दिक्। ' केवलनाणे केवलदंसणे ' इत्यादिभेदेन सूत्रनिर्देशस्यैकार्थिकपरतैवेत्यभिप्रायेणोपक्रमते–" जेण मणोविसयगया–ण दंसणं णत्थि दव्वजादाणं ॥ तो मणपज्जवनाणं, नियमा नाणं तु णिद्दिट्ठं ॥ २–१९ ॥" यतो मनःपर्यायज्ञानविषयगतानां तद्विषयसमूहानुप्रविष्टानां परमनोद्रव्यविशेषाणां बाह्यचिन्त्यमानार्थगमकतौपयिकविशेषरूपस्यैव सद्भावाद् दर्शनं सामान्यरूपं नास्ति, तस्मान्मनःपर्यायज्ञानं ज्ञानमेवागमे निर्दिष्टं,ग्राह्यसामान्याभावे मुख्यतया तद्ग्रहणोन्मुखदर्शनाभावात्। केवलं तु सामान्यविशेषोभयोपयोगरूपत्वादुभयरूपकमेवेति भावः। सूत्रे उभयरूपत्वेन परिपाठितत्वादप्युभयरूपं केवलं, न तु क्रमयोगादित्याह(द्विषयभेदाद्वेत्यभिप्रायवानाह)–" चक्खुअचक्खुअवाधिके–वलाण समयम्मि दंसणविअप्पा ॥ परिपठिआ केवलना–णदंसणा तेण विय(ते) अण्णा ॥२–२०॥ " स्पष्टा। चक्षुरादिज्ञानवदेव केवलं ज्ञानमध्ये पाठात् ज्ञानमपि, दर्शनमध्ये पाठाच्च दर्शनमपीति परिभाषामात्रमेतदितीति ग्रन्थकृतस्तात्पर्यम्। मतिज्ञानादेः क्रम इव केवलस्याक्रमेऽपि

केवलज्ञाननिरूपणेकेवलज्ञानदर्शनयोरभेदवादिनं प्रत्यापादितस्म भगवतीविरोधस्य सोपपत्तिकः परिहारः निर्देशभेदस्य तात्पर्यं च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामान्यविशेषाजहद्वृत्त्यैकोपयोगरूपतया ज्ञानदर्शनत्वमित्येकदेशिमतमुपन्यस्यति–"दंसणमुग्गहमेत्तं, घडोत्ति निव्वण्णणा हवइ नाणं ॥ जह इत्थ केवलाण वि, विसेसणं इत्तियं चेव ॥२–२१॥" अवग्रहमात्रं मतिरूपे बोधे दर्शनं, इदं तदित्यव्यपदेश्यं, घट इति निश्चयेन वर्णना तदाकाराभिलाप इतियावत्। कारणे कार्योपचाराच्च घटाकाराभिलापजनकं घटे मतिज्ञानमित्यर्थः। यथाऽत्रैवं(कं) तथा केवलयोरप्येतावन्मात्रेण विशेषः। एकमेव केवलं सामान्यांशे दर्शनं विशेषांशे च ज्ञानमित्यर्थः। एकदेश्येव क्रमिकभेदपक्षं दूषयति–" दंसणपुव्वं नाणं, नाणणिमित्तं तु दंसणं णत्थि ॥ तेण सुविणिच्छयामो, दंसणनाणा ण अण्णत्तं ॥ २–२२ ॥" दर्शनपूर्वं ज्ञानमिति छद्मस्थोपयोगदशायां प्रसिद्धम्। सामान्यमुपलभ्य हि पश्चात्सर्वो विशेषमुपलभत इति, ज्ञाननिमित्तं तु दर्शनं नास्ति कुत्रापि, तथाऽप्रसिद्धेः। तेन सुविनिश्चिनुमः 'दंसणनाणा' इति दर्शनज्ञाने नान्यत्वं न क्रमापादितभेदं केवलिनि भजत इति शेषः। क्रमाभ्युपगमे हि केवलिनि नियमाज्ज्ञानोत्तरं दर्शनं वाच्यं, सर्वासां लब्धीनां साकारोपयोगप्राप्त(प्य)-त्वेन पूर्वं ज्ञानोत्पत्त्युपगमौचित्यात्। तथा च ज्ञानहेतुकमेव केवलिनि दर्शनमभ्युपगन्तव्यं, तच्चात्यन्तादर्शनव्याहतमिति भावः। यत्तु क्षयोपशमनिबन्धनक्रमस्य केवलिन्यभावेऽपि पूर्वं क्रमदर्शनात्तज्जातीयतया ज्ञानदर्शनयोरन्यत्वमिति टीकाकृद्व्याख्यानं, तत्स्व-भावभेदतात्पर्येण सम्भवदपि दर्शने ज्ञाननिमित्तत्वनिषेधानतिप्रयोजनतया कथं शोभत इति विचारणीयम्। ननु यथा परेषां कल्पितः क्रमो वर्णनिष्ठो बुद्धिविशेषजनकतावच्छेदकोऽस्माकं च भिन्नाभिन्नपर्यायविशेषरूपः, तथा केवलिज्ञानदर्शननिष्ठस्तादृशः क्रम एवावरणक्षयजन्यतावच्छेदकः स्यादिति नोक्तानुपपत्तिरिति चेत्, न, वर्णक्रमस्य क्रमवत्प्रयत्नप्रयोज्यस्य सुवचत्वेऽप्यक्र-मिकावरणक्षयप्रयोज्यस्य केवल्युपयोगक्रमस्य दुर्वचत्वादनन्यगत्याऽक्रमिकादप्यावरणद्वयक्षयात् क्रमवदुपयोगोत्पत्त्यभ्युपगमे

केवलज्ञान-दर्शनयोर्भेदाभेदविचारे एकदेशीयमतेन मतिज्ञानदृष्टान्ततो ज्ञानदर्शनयोर्भेदविचारः क्रमिकपक्षनिरासश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

च तन्नाशकारणाभावादविकलकारणात्तादृशोपयोगान्तरधाराया अविच्छेदाच्च "(सव्वस्स वि केवलिणं)जुगवं दो णत्थि उवओगा" (आव०नि०गाथा ९७९)इति वचनानुपपत्तिः। न च ज्ञानस्य दर्शनमेवार्थान्तरपरिणामलक्षणो ध्वंस इत्युपयोगाऽयौगपद्यं साम्प्रतम्, साद्यनन्तपर्यायविशेषरूपध्वंसस्यैवावस्थितिविरोधित्वादर्थान्तरपरिणामलक्षणध्वंसस्यातथात्वात् । अन्यथा तत्तत्संयोगविभागादिमात्रेणानुभूयमानघटावस्थित्युच्छेदापत्तेः । न च "जुगवं दो णत्थि उवओगा" इत्यस्योपयोगयोर्युगपदुत्पत्तिनिषेध एव तात्पर्यं, न तु युगपदवस्थानेऽपीत्युपयोगद्वयधाराणां नाशकारणाभावेन सहावस्थानेऽपि न दोष इति साम्प्रतं, अक्रमवादिनाप्येवं क्रमावच्छिन्नोपयोगद्वययौगपद्यनिषेधपरत्वस्य वक्तुं शक्यत्वात्, सूत्रासङ्कोचस्वारस्यादरे "यदेव ज्ञानं तदेव दर्शनम्" इत्यस्मदुक्तस्यैव युक्तत्वादिति दिक् ॥

मतिज्ञानमेवावग्रहात्मना दर्शनं, अपायात्मना च ज्ञानमिति यदुक्तं दृष्टान्तावष्टम्भार्थमेकदेशिना तद्दूषयन्नाह–"जइ उग्गहमित्तं दं–सणंति मण्णसि विसेसिया नाणं ॥मइनाणमेव दंसण–मेवं सइ होइ णिप्फन्नं ॥ २–२३॥" यदि मतिरेवावग्रहरूपा दर्शनं विशेषिता ज्ञानमिति मन्यसे, तदा मतिज्ञानमेव दर्शनमित्येवं सति प्राप्तं । न चैतद्युक्तं, "स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद" इति (तत्त्वार्थ अध्याय २ सूत्र ९) सूत्रविरोधान्मतिज्ञानस्याष्टाविंशतिभेदोक्तिविरोधाच्च–" एवं सेसिंदियदं–सणंमि णियमेण होइ ण य जुत्तं ॥ अह तत्थ नाणमित्तं, घेप्पइ चक्खुंमि वि तहेव ॥ २–२४ ॥" एवं शेषेन्द्रियदर्शनेष्वप्यवग्रह एव दर्शनमित्यभ्युपगमेन (गमे नियमेन) मतिज्ञानमेव तदिति स्यात्, तच्च न युक्तं, पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तेः । अथ तेषु श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु दर्शनमपि भवज्ज्ञानमेव गृह्यते, मात्रशब्दस्य दर्शनव्यवच्छेदकत्वात्, तद्व्यवच्छेदश्च तथाव्यवहाराभावात्,

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनोपयोगयौगपद्यवादिमतेन क्रमवाद्युक्तदोषपरिहारः वस्तुतोऽभेदपक्षसमर्थनं तत्र चैकदेशिमतनिरसनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रोत्रज्ञानं घ्राणज्ञानमित्यादिव्यपदेश एव हि तत्रोपलभ्यते, न तु श्रोत्रदर्शनं घ्राणदर्शनमित्यादिव्यपदेशः क्वचिदागमे प्रसिद्धः, तर्हि चक्षुष्यपि तथैव गृह्यतां चक्षुर्ज्ञानमिति. नतु चक्षुर्दर्शनमिति। अथ तत्र दर्शनम्, इतरत्रापि तथैव गृह्यतां, युक्तेस्तुल्यत्वात्। कथं तर्हि शास्त्रे चक्षुर्दर्शनादिप्रवाद इत्यत आह-"णाणमपुट्ठे जो अविसए अ अत्थंमि दंसणं होई॥ मुत्तूण लिंगओ जं, अणागया-ईयविसएसु ॥२-२५॥" अस्पृष्टेऽर्थे चक्षुषा य उदेति प्रत्ययः स ज्ञानमेव सच्चक्षुर्दर्शनमित्युच्यते, इन्द्रियाणामविषये च परमाण्वादावर्थे मनसा य उदेति प्रत्ययः स ज्ञानमेव सदचक्षुर्दर्शनमित्युच्यते। अनुमित्यादिरूपे मनोजन्यज्ञानेऽतिप्रसङ्गमाशङ्क्याऽऽह, अनागतातीतविषयेषु यल्लिङ्गतो ज्ञानमुदेति 'अयं काल आसन्नभविष्यद्वृष्टिकस्तथाविधमेघोन्नतिमत्त्वात्,' 'अयं प्रदेश आसन्नवृष्टमेघः पूरविशेषवत्त्वाद्' इत्यादिरूपं तन्मुक्त्वा। इदमुपलक्षणं, भावनाजन्यज्ञानातिरिक्तपरोक्षज्ञानमात्रस्य तस्यास्पृष्टाविषयार्थस्यापि दर्शनत्वेनाव्यवहारात्। यद्यस्पृष्टाविषयार्थज्ञानं दर्शनमभिमतं, तर्हि मनःपर्यायज्ञानेऽतिप्रसङ्ग इत्याशङ्क्य समाधत्ते-" मणपज्जवनाणं दं-सणं ति तेणेह होइ ण य जुत्तं॥ भन्नइ नाणं णोइं-दियंमि ण घडादओ जम्हा ॥२-२६॥" एतेन लक्षणेन मनःपर्यायज्ञानमपि दर्शनं प्राप्तं, परकीयमनोगतानां घटादीनामालम्ब्यानां तत्रासत्त्वेनास्पृष्टेऽविषये च घटादावर्थे तस्य भाना(वा)त्, न चैतद्युक्तं, आगमे तस्य दर्शनत्वेनापाठात्। भण्यतेऽत्रोत्तरम्-नोइन्द्रिये मनोवर्गणाख्ये मनोविशेषे प्रवर्तमानं मनःपर्यायबोधरूपं ज्ञानमेव, न दर्शनं, यस्मादस्पृष्टा घटादयो नास्य विषय इति शेषः, नित्यं तेषां लिङ्गानुमेयत्वात्। तथा चागमः (विशेषावश्यक गाथा ८१४)-" जाणइ बज्झे णुमाणाओ त्ति" मनोवर्गणास्तु परात्मगता अपि स्वाश्रयात्मस्पृष्टजातीया एवेति न तदंशेऽपि दर्शनत्वप्रसङ्गः। परकीयमनोगतार्थाकारविकल्प एवास्य ग्राह्यः, तस्य चोभ-

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनोपयोगप्रसङ्गे मतिज्ञानदर्शनदृष्टान्तेन तत्त्वनिरूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यरूपत्वेऽपि छाद्मस्थिकोपयोगस्यापरिपूर्णार्थग्राहित्वान्न मनःपर्यायज्ञाने दर्शनसम्भव इत्यप्याहुः। किं च–" मइसुअनाणणिमित्तो, छउमत्थे होइ अत्थउवलंभो ॥ एगयरंमि वि तेसिं, ण दंसणं दंसणं कत्तो ॥ २–२७ ॥ " मतिश्रुतज्ञाननिमित्तश्छद्मस्थानामर्थोपलम्भ उक्त आगमे । तयोरेकतरस्मिन्नपि न दर्शनं सम्भवति । न चावग्रहो दर्शन तस्य ज्ञानात्मकत्वात्, ततः कुतो दर्शनं ?, नास्तीत्यर्थः। ननु श्रुतमस्पृष्टेऽर्थे किमिति दर्शनं न भवेत्तत्राह–"जं पच्चक्खग्गहणं, ण इंति सुअनाणसंमिया अत्था ॥ तम्हा दंसणसद्दो, ण होइ सयले वि सुअनाणे ॥ २–२८ ॥ " यस्माच्छ्रुतज्ञानप्रमिता अर्थाः प्रत्यक्षग्रहणं न यान्ति, अक्षजस्यैव व्यवहारतः प्रत्यक्षत्वात् । तस्मात्सकलेऽपि श्रुतज्ञाने दर्शनशब्दो न भवति । तथा च ' व्यञ्जनावग्रहाविषयार्थप्रत्यक्षत्वमेव दर्शनत्वम्' इति पर्यवसन्नम् । प्रत्यक्षपदादेव श्रुतज्ञानवदनुमित्यादेर्व्यावृत्तौ परोक्षभिन्नत्वे सतीति विशेषणं न देयम् " मुत्तूण लिंगओ जं " इत्युक्तस्याप्यत्रैव तात्पर्यं द्रष्टव्यम् । इत्थं चाचक्षुर्दर्शनमित्यत्र नञः पर्युदासार्थकत्वादचक्षुर्दर्शनपदेन मानसदर्शनमेव ग्राह्यं, अप्राप्यकारित्वेन मनस एव चक्षुःसदृशत्वान्न घ्राणदर्शनादीति सर्वमुपपद्यते । तथाचावधि दर्शनमपि कथं सङ्गच्छते, तस्य व्यञ्जनावग्रहविषयार्थग्राहित्वेऽपि व्यवहारतः प्रत्यक्षत्वाभावादित्याशङ्कायाः प्रत्यक्षपदस्य व्यवहारनिश्चयसाधारणप्रत्यक्षार्थत्वात्, अवधिज्ञानस्य च नैश्चयिकप्रत्यक्षत्वाव्याहतेः परिहारमभिप्रयन्नाह–" जं अप्पुट्ठा भावा, ओहिन्नाणस्स होंति पच्चक्खा ॥ तम्हा ओहिन्नाणे, दंसणसद्दो वि उवउत्तो॥ २–२९ ॥ स्पष्टा॥ उपयुक्तः लब्धनिमित्तावकाशः॥

केवलज्ञानेऽपीदं लक्षणमव्याहतमित्याह–" जं अप्पुट्ठे भावे, जाणइ पासइ य केवली णियमा ॥ तम्हा तं नाणं दं–सणं च अविसेसओ सिद्धं ॥ २–३० ॥ " यतोऽस्पृष्टान् भावान्नियमेनावश्यन्तया केवली चक्षुष्मानिव पुरःस्थितं जानाति

केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनोपयोगप्रसङ्गे मतिज्ञानादिदृष्टान्तेनतत्त्वप्ररूपणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पश्यति चोभयप्राधान्येन, तस्मात्तत्केवलज्ञानं दर्शनं चाविशेषत उभयाभिधाननिमित्तस्याविशेषात्सिद्धं । मनःपर्यायज्ञानस्य तु व्यञ्जनावग्रहाविषयार्थकप्रत्यक्षत्वेऽपि बाह्यविषये व्यभिचारेण स्वग्राह्यतावच्छेदकावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वाभावान्न दर्शनत्वमिति निष्कर्षः ॥ अत्र यट्टीकाकृता "प्रमाणप्रमेययोः सामान्यविशेषात्मकत्वेऽप्यपनीतावरणे युगपदुभयस्वभावो बोधः, छद्मस्थावस्थायां त्वनपगतावरणत्वेन दर्शनोपयोगसमये ज्ञानोपयोगाभावादप्राप्यकारिनयनमनःप्रभवार्थावग्रहादिमतिज्ञानोपयोगप्राक्काले चक्षुरचक्षुर्दर्शने, अवधिज्ञानोपयोगप्राक्काले चावधिदर्शनमाविर्भवति"इति व्याख्यातं तदर्धजरतीयन्यायमनुहरति, प्राचीनप्रणयमात्रानुरोधे श्रोत्रादिज्ञानात् प्रागपि दर्शनाभ्युपगमस्यावर्जनीयत्वात्, व्यञ्जनावग्रहार्थावग्रहान्तराले दर्शनानुपलम्भात्तदनिर्देशाच्च, असङ्ख्येयसामयिकव्यञ्जनावग्रहान्त्यक्षणे "ताहे हुंति करेइ" इत्यागमेनार्थावग्रहोत्पत्तेरेव भणनात्, व्यञ्जनावग्रहप्राक्काले दर्शनपरिकल्पनस्य चात्यन्तानुचितत्वात् ॥ तथा सति तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षादपि निकृष्टत्वेनानुपयोगप्रसङ्गाच्च, प्राप्यकारीन्द्रियजज्ञानस्थले दर्शनानुपगमे चान्यत्रापि भिन्नतत्कल्पने न किञ्चित्प्रमाणं, 'नाणमपुट्ठे' इत्यादिना ज्ञानादभेदेनैव दर्शनस्वभावप्रतिपादनात्, "चक्षुर्वद्विषयाख्यातिः"(द्वा-१०-३०)इत्यादिस्तुतिग्रन्थैकवाक्यतयापि तथैव स्वारस्याच्च। छद्मस्थज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगत्वेन हेतुत्वे तु चक्षुष्येव दर्शनं नान्यत्रेति कथं श्रद्धेयं ? तस्माच्छ्रीसिद्धसेनोपज्ञनव्यमते न कुत्रापि ज्ञानादर्शनस्य कालभेदः, किं तु स्वग्राह्यतावच्छेदकावच्छेदेन व्यञ्जनावग्रहाविषयीकृतार्थप्रत्यक्षत्वमेव दर्शनत्वमिति फलितम् । यदि च चाक्षुषादावपि ज्ञानसामग्रीसामर्थ्यग्राह्यवर्तमानकालाद्यंशे मितिमात्राद्यंशे च न दर्शनत्वव्यवहारस्तदा विषयताविशेष एव दर्शनत्वं, स च क्वचिदंशे योग्यताविशेषजन्यतावच्छेदकः, क्वचिच्च भावनाविशेषजन्यतावच्छेदकः, केवले च सर्वांशे आवरण-

केवलज्ञान-निरूपणे केवलज्ञान-दर्शनोपयोग-प्रसङ्गे मतिज्ञानादिदृष्टान्तेन तत्त्वप्ररूपणं नव्यतार्किकमत-निष्कर्षश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षयजन्यतावच्छेदक इति प्रतिपत्तव्यं । न च 'अर्थेनैव धियां विशेष' इति न्यायादर्थाविशेषे ज्ञाने विषयताविशेषासिद्धिरिति शङ्कनीयं, अर्थेऽपि ज्ञानानुरूपस्वभावपरिकल्पनात्, अर्थाविशेषेऽपि परैः समूहालम्बनाद्विशिष्टज्ञानस्य व्यावृत्तये प्रकारिताविशेषस्याभ्युपगमाच्च । न हि तस्य तत्र भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगिज्ञानत्वमेव निरूपकविशिष्टज्ञानत्वं वक्तुं शक्यं, दण्डपुरुषसंयोगा इति समूहालम्बनेऽतिप्रसङ्गात् । न च भासमानं यद्वैशिष्ट्यप्रतियोगित्वं तद्वत् ज्ञानत्वमेव तथा, दण्डपुरुषसंयोगप्रतियोगित्वानुयोगित्वानीति ज्ञाने दण्डविशिष्टज्ञानत्वापत्तेः । न च स्वरूपतो भासमानमित्याद्युक्तावपि निस्तारः, प्रतियोगित्वादेरतिरिक्तत्वे प्रकारित्वादेर्ज्ञाननिष्ठस्य कल्पनाया एव लघुत्वात् । अनतिरेके तु दण्डदण्डत्वादिनिर्विकल्पकेऽपि दण्डादिविशिष्टज्ञानत्वापत्तेः । एतेन 'स्वरूपतो भासमानेन वैशिष्टयेन गर्भितलक्षणमपि' अपास्तम्, संयुक्तसमवायादेः सम्बन्धत्वे स्वरूपत इत्यस्य दुर्वचत्वाच्च । तस्मात्पराभ्युपगतप्रकारिताविशेषवदाकारविशेषः स्याद्वादमुद्रयाऽर्थानुरुद्धस्तदननुरुद्धो वा ज्ञाने दर्शनशब्दव्यपदेशहेतुरनाविलस्तत्समय एवार्थज्ञानयोरविनिगमेनाकाराकारिभावस्वभावाविर्भावादित्येष पुनरस्माकं मनीषोन्मेषः ॥ तस्माद्द्वयात्मक एक एव केवलावबोध इति फलितं स्वमतमुपदर्शयति–"साईअपज्जवसियं, ति दोवि ते ससमयं हवइ एवं॥परतित्थियवत्तव्वं, च एगसमयंतरुप्पाओ ॥ २–३१ ॥" साद्यपर्यवसितं केवलमिति हेतोर्द्वे अपि ज्ञानदर्शने ते उभयशब्दवाच्यं तदिति यावत् । अयं च स्वसमयः स्वसिद्धान्तः । यस्त्वेकसमयान्तरोत्पादस्तयोर्भण्यते, तत्परतीर्थिकशास्त्रं, नार्हद्वचनं, नयाभिप्रायेण प्रवृत्तत्वादिति भावः । 'एवम्भूतवस्तुतत्त्वश्रद्धानरूपं' सम्यग्दर्शनमपि सम्यग्ज्ञानविशेष एव, सम्यग्दर्शनत्वस्यापि सम्यग्ज्ञानत्वव्याप्यजातिविशेषरूपत्वाद्विषयताविशेषरूपत्वाद्वेत्याह–" एवं जिणपण्णत्ते, सद्दहमाणस्स भावओ भावे ॥ पुरिसस्सा-

॥ केवलज्ञाननिरूपणे केवलज्ञानदर्शनद्वयात्मक एक एव केवलोपयोग इति निश्चितश्री सिद्धसेन दिवाकरमतफलितप्रदर्शनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भिणिबोहे, दंसणसद्दो हवइ जुत्तो ॥२–३२॥” जिनप्रज्ञप्तभावविषयं समूहालम्बनं रुचिरूपं ज्ञानं मुख्यं सम्यग्दर्शनं तद्वासनोपनीतार्थविषयं घटादिज्ञानमपि भाक्तं तदिति तात्पर्यार्थः ॥ ननु सम्यग्ज्ञाने सम्यग्दर्शननियमवद्दर्शनेऽपि सम्यग्ज्ञाननियमः कथं न स्यादित्यत्राह–“सम्मन्नाणे णियमे-ण दंसणं दंसणे उ भयणिज्जं ॥ सम्मन्नाणं च इमं, ति अत्थओ होइ उववण्णं ॥ २–३३ ॥ ” सम्यग्ज्ञाने नियमेन सम्यग्दर्शनं, दर्शने पुनर्भजनीयं विकल्पनीयं, सम्यग्ज्ञानं एकान्तरुचौ न सम्भवति, अनेकान्तरुचौ तु समस्तीति । अतः सम्यग्ज्ञानं चेदं सम्यग्दर्शनं चेत्यर्थः, अर्थतः सामर्थ्येनै (थ्यदि)कमेवोपपन्नं भवति ।

तथा च सम्यक्त्वमिव दर्शनं ज्ञानविशेषरूपमेवेति निर्व्यूढम् । (अथ ग्रन्थकृत्प्रशास्तिः)

प्राचां वाचां विमुखविषयो–न्मेषसूक्ष्मेक्षिकायां, येऽरण्यानी–भयमधिगता नव्यमार्गानभिज्ञाः ॥
तेषामेषा समयवणिजां सम्मतिग्रन्थगाथा, विश्वासाय स्वनयविपणिप्राज्यवाणिज्यवीथी । १ ॥
भेदग्राही(हि) व्यवहृतिनयं संश्रितो मल्लवादी, पूज्याः प्रायः करणफलयोः सीम्नि शुद्धर्जुसूत्रम् ॥
भेदोच्छेदोन्मुखमधिगतः सङ्ग्रहं सिद्धसेन–स्तस्मादेते न खलु विषमाः सूरिपक्षास्त्रयोऽपि (मी) ॥२॥
चित्सामान्यं पुरुषपदभाक्केवलाख्ये विशेषे, तद्रूपेण स्फुटमभिहितं साद्यनन्तं यदेव ॥
सूक्ष्मैरंशैः क्रमवदिदमप्युच्यमानं न दुष्टं, तत्सूरीणामियममिमता मुख्यगौणव्यवस्था ॥ ३ ॥
तमोऽपगमचिज्जनुःक्षणभिदानिदानोद्भवाः, श्रुता बहुतराः श्रुते नयविवादपक्षा यथा ॥
तथा क इव विस्मयो भवतु सूरिपक्षत्रये, प्रधानपदवी धियां क नु दवीयसी दृश्यते ॥ ४ ॥

केवलज्ञान-निरूपणे-केवलज्ञान-दर्शनयोरभिन्नत्वप्ररूपकसम्मति-गाथाकदम्बोपसंहारः प्रशस्तौ च स्याद्वादमते नयभेदेन पक्षत्रयनिर्दोषताप्ररूपणमनेकान्त-माहात्म्य-प्रदर्शनञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसह्य सदसत्त्वयोर्न हि विरोधनिर्णायकं, विशेषणविशेष्ययोरपि नियामकं यत्र न ॥
गुणागुणविभेदतो मतिरपेक्षया स्यात्पदा, किमत्र भजनोर्जिते स्वसमये न सङ्गच्छते ॥ ५ ॥
प्रमाणनयसङ्गता स्वसमयेऽप्यनेकान्तधी-र्नयस्मयतटस्थतोल्लसदुपाधिकिर्मीरिता ॥
कदाचन न बाधते सुगुरुसम्प्रदायक्रमं, समञ्जसपदं वदन्त्युरुधियो हि सद्दर्शनम् ॥ ६ ॥
रहस्यं जानन्ते किमपि न नयानां हतधियो, विरोधं भाषन्ते विविधबुधपक्षे बत खलाः ॥
अमी चन्द्रादित्यप्रभृ(कृ)तिविकृतिव्यत्ययगिरा(रो), निरातङ्काः कुत्राप्यहह न गुणान्वेषणपराः ॥७॥
स्याद्वादस्य ज्ञानबिन्दोरमन्दा-न्मन्दारद्रोः कः फलास्वादगर्वः ॥
द्राक्षासाक्षात्कारपीयूषधारा- दारादीनां को विलासश्च रम्यः ॥ ८ ॥
गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः, प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयाः प्राज्ञाः परामैयरुः ॥
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशु-स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ९

॥ इति श्रीज्ञानबिन्दुप्रकरणं समाप्तम् ॥

प्रभूतावधानधारि-कूर्चालसरस्वती-न्यायविशारद-न्यायाचार्य-महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिप्रणीते अपूर्णावस्थं सविवरणं १ श्रीज्ञानार्णवप्रकरणं २ पूर्णं श्रीज्ञानबिन्दुप्रकरणं च सम्पूर्णे ॥

स्याद्वादमाहात्म्यं ग्रन्थकृतो गुरुपरम्पराप्रशस्तिश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ सूचना—पंक्त्यङ्कः चतुर्दशसंख्यां यावत् प्रथमपृष्ठस्य, तदुपरितनी च संख्या द्वितीयपृष्ठस्य ॥

॥ श्री ज्ञानार्णव-ज्ञानबिन्दु ग्रन्थद्वयशुद्धिपत्रकम् ॥

अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्रं	पंक्ति
त्वावंशषेण	त्वविशेषण	२	२३
बोधकत्वस्य	बोधिकत्वस्य	४	१६
वृति ज्ञानत्व	वृत्तिज्ञानत्व	६	९
श्रुतस्यो	श्रुतस्येव तस्यो	७	१
रे व्यव	रे व्यवस्थापितं, व्यव	७	२०
न च व्यक्त	न चाऽव्यक्त	८	३
तात्पर्यानुर	तात्पर्यानुप	९	२८
कचिद्रज्ञान	कचिद्ज्ञान	११	१५
योलब्धिः	योपलब्धिः	१२	२१
गम्य एव	गम्यमान एव	१२	२८
तत्र,	तन्न,	१३	५
तन्नेतद्	तन्न, एतद्	१३	२०
बुद्धया	बुद्ध्या	१६	१४
अनुप-	अनुपयु-	१६	२०

अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्रं	पंक्तिः
निरूपणोपयि	निरूपणौपयि	१७	२२
चङ्गिरा	चङ्गिरा(भङ्गुरा)	२१	१
हानिवृत्ति	हानिवृत्ति	२५	३
यवद्विति	यवयद्विति	३२	२७
एवेत्युक्ता	एव" इत्युक्ता	३५	२१
हङ्कोरन्द्रिय	हङ्कारेन्द्रिय	३७	१९
द्राहेपारिणाम	द्रोहपरिणाम	३८	२७
भवनादेरस	भवनोदरस	३९	८
मवे	मेव	३९	२२
योगेन	यागेन	३९	२६
त्पात्तर्यु	त्वात्तिर्यु	४१	११
जिग्मरस्स	जिग्मयस्स	४७	२७
तम	तेन	५१	१७
विशेष्याव	विशेष्यताव	६०	२५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पत्रं	पंक्तिः
बन्धमं	बन्धनं	६२	१७
निश्चितं	निश्चितं	६४	११
न्यदेत,	न्यदेतत्,	६६	२७
भ्युगम	भ्युपगम	६८	२७
विपर्रात	विपरीत	७०	२१
ज्ञानज्ञानो	ज्ञानाज्ञानो	७०	२५
घतितया	घातितया	९०	११
तथात्वाद,	तथात्वाद्,	९६	२०
नयस्याकृत्यं	नयस्य कृत्यं	९६	२१
नुपतश्चेव	नुपपत्तेश्च	१०१	४
त्तीद्विपय	त्तद्विषय	१०४	१३
अभरिवः	अभीरवः	१०९	१५
व्यङ्गयेन	व्यङ्ग्येन	११२	१२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only